सम्राट के आँसू

सम्राट के आँसू

श्री के० के० श्रीवास्तव 'केवल' द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'सम्राट के आँसू' एक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक प्रकृति का एकांकी है। इस एकांकी में सम्राट अशोक के जीवन मे हुए उतार-चढ़ाव का जिस प्रकार चित्रण किया गया है, वह अत्यन्त रोचक है।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि सम्राट अशोक का जीवन बड़ा ही रोमांचक और रहस्यपूर्ण रहा है। अशोक एक क्रूर शासक था तथा किंवदन्तियों एवं गाथाओं के अनुसार उसने अपने 99 भाइयों एवं 500 मंत्रियों का वध करके राजगद्दी पर अपना अधिकार जमाया था परन्तु इस क्रूरता के पीछे ऐसा कौन-सा कारण था, इसका उल्लेख इस एकांकी में किया गया है।

यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि कलिंग विजय के बाद सम्राट अशोक का हृदय परिवर्तित हो गया और उसके हृदय में जनता के प्रति प्रेम और वात्सल्य की भावना उमड़ पड़ी। इसी के बाद उसने बौद्ध धर्म को ग्रहण करके उसके प्रचार एवं प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। परन्तु कलिंग युद्ध के पश्चात सम्राट अशोक के हृदय परिवर्तन के लिए ऐसा कौन-सा कारण था, क्या कलिंग विजय अथवा कलिंग की जनता का बलिदान अथवा कलिंग की सेना और जनता का कत्लेआम। इन प्रश्नों का उत्तर वैज्ञानिक आधार पर ढूंढ़ने का प्रयास इस एकांकी में किया गया है।

सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म को स्वीकार करके तन-मन-धन से उसकी सेवा की, परन्तु क्या वह भगवान बुद्ध की शिक्षाओं और उपदेशों को अपने जीवन में अंगीकार कर सका, क्या वह अहिंसा का पुजारी बन सका, आदि आदि ऐसे प्रश्न हैं, जिनका मार्मिक मनोचित्रण इस एकांकी में किया गया है।

संक्षेप में आज के साम्प्रदायिक माहौल में यह एकांकी एक अनूठी कृति साबित हो सकता है, क्योंकि इस एकांकी में इस बिन्दु पर भी विचार व्यक्त किया गया है कि धर्म क्या है ? लेखक के विचार से जब सभी धर्मों का जन्मदाता मानव है और इन धर्मों का उद्देश्य मानव विकास एवं प्रगति है तब फिर धार्मिक अन्तर्द्वन्द्व का क्या तात्पर्य है ?

मेरे विचार से यह एकांकी एक उत्कृष्ट सामाजिक एकांकी है, जिसमें काम, क्रोध, माया, मोह, सुख तथा दुख आदि पर गहनतम चर्चा की गयी है। अतः इस एकांकी

मैंने श्री के० के० श्रीवास्तव 'केवल' द्वारा लिखित ऐतिहासिक एकांकी 'सम्राट के आँसू' की प्रतिलिपि का अवलोकन किया है। इस एकाकी में सम्राट अशोक के जीवन का जो संक्षिप्त चित्रण किया गया है, वह एक ऐतिहासिक महत्त्व का बिन्दु है। इस एकाकी में बड़े सजीव ढंग से यह दर्शाया गया है कि कलिंग युद्ध में सम्राट अशोक को क्या मिला, उसका हृदय परिवर्तन कैसे हुआ और उसने बौद्ध धर्म को क्यों स्वीकार किया। इन प्रश्नों के कुछ मौलिक उत्तर ढूँढने का प्रयास किया गया है।

इसके बाद में सम्राट अशोक के जीवन में क्या हुआ, क्या वह पूर्णतया बौद्ध धर्म की शिक्षाओं एवं उपदेशों को अंगीकार कर सका, यदि नहीं तो क्यों? इस धर्म की प्रगति के लिए उसने क्या-क्या किया और उसके क्या परिणाम हुए? उसके नैतिक आदर्शों का अनुसरण लोगों ने किस हद तक किया, इन समस्याओं पर भी महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह एकांकी आज के सन्दर्भ में बहुत उपादेय सिद्ध होगा।

अतः इस एकांकी के प्रकाशनार्थ आर्थिक व्यवस्था करने की संस्तुति करता हूँ, साथ ही श्री के० के० श्रीवास्तव 'केवल' से यह आशा भी करता हूँ कि वह भविष्य में भी ऐसी सामाजिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व की रचनाओं को लिखने में अपना योगदान प्रदान करते रहेंगे।

—डा० श्याम मनोहर मिश्र
रीडर
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं
पुरातत्व,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

मैंने इस सम्बन्ध मे काफी विचार किया और धर्म और अधर्म को लेकर कुछ ऐतिहासिक साक्ष्यों को एकत्रित करने की दिशा मे प्रयत्नशील हो गया। काफी प्रयासों और परिश्रम के बाद जो तथ्य प्रकाश मे आए, उसके आधार पर ही इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। इसके अन्दर सम्राट अशोक के जीवन के उस भाग को एकाकी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जहाँ से उसमें परिवर्तन होना शुरू हुआ और उसने धर्म और अधर्म की परिभाषा का विश्लेषण करने के बाद कौन-सा मार्ग अपनाया, उसी का चित्रण इस संक्षिप्त रचना में किया गया है।

जैसा कि विदित है कि सम्राट अशोक हमारे इतिहास के स्वर्णाक्षरों में लिखा गया एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसे वास्तव में न तो सम्राट की उपाधि से विभूषित किया जा सकता है और न ही एक सिद्धि प्राप्त संन्यासी की उपाधि दी जा सकती है। सम्राट अशोक ने अपने जीवन में पाप भी किए, इसलिए किए कि वह सम्राट था। वैसे भी सम्राट का यह जन्मसिद्ध अधिकार होता है कि वह युद्ध करे, अपने राज्य का विस्तार करे, अपने राजकोष में वृद्धि करे तथा अपने महल में सुन्दरियों की एक पूरी फौज रखे। इसलिए सम्राट अशोक ने पूर्व काल में राज्य प्रसार के अन्तर्गत जो कार्य किए उसे पाप नहीं कहा जा सकता। परन्तु सम्राट अशोक के जीवन पर एक सूक्ष्म दृष्टिपात करने पर यह विदित हुआ कि वास्तव में सम्राट अशोक ऐसे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया था।

सम्राट अशोक का जन्म 297 ई० पू० में हुआ था। वह राजा बिन्दुसार का पुत्र था। बचपन से ही वह अत्यन्त कुरूप था, यही कारण था कि उसके भाई उससे घृणा करते थे और उसे सदैव नीचा दिखाने का प्रयास करते रहते थे। परन्तु इन सब की परवाह न करते हुए उसने शिक्षा-दीक्षा में रुचि दिखाई और शास्त्र विद्या में निपुणता प्राप्त कर ली। परिणामत: बुद्धि के क्षेत्र मे वह अपने सभी भाइयों से श्रेष्ठ निकल गया। उसके ज्ञान एवं तर्क शक्ति से बिन्दुसार काफी प्रभावित हुए और उन्होंने उसे अवंति राष्ट्र एवं गंधार का राज्यपाल नियुक्त कर दिया।

बिन्दुसार के परम्परानुसार 101 पुत्र थे। इन सबमें सुसीम सबसे बड़ा पुत्र था। सुसीम अशोक से सबसे ज्यादा नफरत करता था। यही नहीं जब से बिन्दुसार ने उसे गवर्नर नियुक्त कर दिया था, तब से वह उसे अपने रास्ते का काँटा समझने लगा था। फलत: उसने मंत्रियों से मिलकर उसकी हत्या का षड्यन्त्र रचना शुरू कर दिया। बिन्दुसार की मृत्यु होने के कुछ समय बाद ही सुसीम ने अशोक के राज्य पर आक्रमण कर दिया और योजनानुसार उसके वध का प्रयास किया जाने लगा। परन्तु सम्राट अशोक ने न केवल बड़ी ही बुद्धिमता से अपनी रक्षा की वरन् इस युद्ध को निर्णायक मोड़ देते हुए युद्ध जीत लिया। इस युद्ध में सुसीम मारा गया। सुसीम की हार और उसकी मृत्यु का समाचार मिलने पर उसके अन्य सभी भाइयों ने इस हार का बदला लेने का निश्चय किया और अपनी विशाल सेना के साथ रणभूमि में जा पहुँचे। अशोक ने जब अपने

सभी 99 भाइयों को विशाल सेना के साथ रणभूमि में देखा तो परेशान हो उठा और उसके सामने बड़ी ही असमंजसपूर्ण स्थिति विद्यमान हो गयी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इनसे युद्ध करे अथवा आत्मसमर्पण कर दे। परन्तु जब उसके विश्वस्त मन्त्रियों ने अवगत कराया कि यह सभी उसके रक्त के प्यासे बनकर उसकी हत्या कर देना चाहते हैं तब उसके समक्ष दो प्रश्न उपस्थित हो उठे। प्रथम या तो मृत्यु को गले लगाने के लिए आत्मसमर्पण कर दे अथवा युद्ध करते हुए रणभूमि में वीरगति प्राप्त करे। उसके समक्ष हर स्थिति में मृत्यु निश्चित थी। अतएव उसने अन्त में यही निर्णय किया कि वह इस विशाल सेना से युद्ध करेगा।

इस निर्णायक युद्ध में अशोक की मुट्ठी भर सेना ने जिस साहस और बुद्धि से युद्ध किया, उसके समक्ष विपक्षियों की सेना टिक न सकी और उसके पैर उखड़ने लगे। कुछ दिनों के युद्ध के बाद ही अशोक की विजयघोष गूँज उठी और इस युद्ध में अशोक विजयी हो गया। परन्तु जब यह युद्ध समाप्त हुआ तो विदित हुआ कि उसके सभी भाई इस युद्ध में मारे गए है, तब वह अर्द्धविक्षिप्त-सा हो उठा और उसका चेहरा क्रूरता से भर उठा।

हालाँकि अशोक अपने पितामह चन्द्रगुप्त और पिता बिन्दुसार के आदर्शों एव उनके चरणचिह्नों पर चलना चाहता था और उसी के अनुरूप राज्यपाल के रूप में जनता की सेवा भी कर रहा था, परन्तु जब उसे अपने भाइयों के इरादों का पता चला तब उसने जैसे अन्तिम निर्णय किया और युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद वह एक क्रूरतम शासक के रूप में प्रख्यात हो गया। चूँकि अब वह बिन्दुसार का एकमात्र वारिस बचा था अतः उसी का राज्याभिषेक किया गया और अशोक अब सम्पूर्ण देश का सम्राट बन चुका था।

सिंहासन पर बैठने के बाद उसने अपनी हत्या के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने और अपने भाइयों को प्रोत्साहित करने के आरोप में लगभग 500 मन्त्रियों/पार्षदों को जलती आग में फिंकवा दिया। इसके साथ ही उसने देश की सीमा के विस्तार का कार्य शुरू कर दिया। देखते ही देखते कश्मीर से कन्याकुमारी तक एवं पश्चिम में हिंदुकुश से लेकर ईरान की सीमा तक उसका राज्य फैल गया। कहा जाता है कि अशोक की खूँखारता, क्रूरता और वहशीपन से पड़ोसी राज्य इतने आतंकित हो गए थे कि उन्होंने बिना किसी प्रकार का युद्ध किए ही उसकी अधीनता को स्वीकार कर लिया।

परन्तु सम्राट अशोक के देश की सीमा से लगा एक छोटा-सा राज्य था कलिंग। इस छोटे से राज्य पर सम्राट अशोक की आतंकवादी एवं खूँखार सेना ने अनेकों बार आक्रमण किया परन्तु हर बार उसे पराजय का मुख देखना पड़ा। सम्राट अशोक की समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर कलिंग में ऐसा क्या है, जो वहाँ उसे सदैव पराजय ही हाथ लगती है। इसी मध्य उसे यह जानकारी मिली कि कलिंग नरेश भृगेन्द्र के साथ ही उसकी रानी पद्मिनी अत्यन्त साहसी और बहादुर है और देश की

रक्षा के लिए सेना के साथ ही जनता भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अवश्य रूप से रानी पद्मिनी और उसके रूप-लावण्य की भूरि-भूरि प्रशंसा उसके समक्ष की गयी तो वह उसे पाने के लिए लालायित हो उठा। इसके साथ ही उसने एक विशाल सेना कलिंग की रणभूमि पर उतार दी। इस निर्णायक युद्ध में अशोक ने कलिंग पर अपनी खूँखारता और क्रूरता की तमाम सीमाओं को लाँघ कर अपनी विजय पताका फहरा दी। कहा जाता है कि इस युद्ध मे सैनिकों से अधिक देशप्रेमी जनता जनार्दन का कत्लेआम किया गया और लाखों देशप्रेमियों को गिरफ्तार करके यातनागृह मे डाल दिया गया। बहरहाल इस युद्ध में जो कुछ भी हुआ एक सम्राट होने के नाते, अशोक की भर्त्सना नही की जा सकती क्योंकि युद्ध और विजय पताका फहराना सम्राट का जन्मसिद्ध अधिकार होता है। परन्तु इस कलिंग युद्ध में जो कुछ भी हुआ, उसे यदि बुरा नही तो अच्छा भी नहीं जा सकता।

परन्तु इस कलिंग युद्ध में विजय पताका फहराने के बाद जिस वास्तविकता का ज्ञान उसे हुआ, उससे उसका सारा अभिमान चूर-चूर हो उठा और एक बार पुनः वह अर्द्धविक्षिप्त-सा हो उठा। यह आज भी एक रहस्य बना हुआ है कि कलिंग विजय के बाद सम्राट में क्यों और कैसा परिवर्तन आया। इसी बिन्दु पर मैंने इतिहास के कुछ पन्नों को पलटा और चिन्तन मनन करने के बाद जो कारण ज्ञात हुआ, उसी को एकांकी रूप मे प्रस्तुत किया है।

इस सम्बन्ध में यहाँ यह स्पष्ट कर देना समीचीन होगा कि इस एकांकी के तारतम्य में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है, इससे मेरा कोई सम्बन्ध नही है। अतः इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की ऐतिहासिक चुनौती दिए जाने का कोई प्रश्न नही उठता क्योंकि यह मात्र ऐतिहासिक साक्ष्यो के आधार पर तैयार किया गया एक काल्पनिक एकांकी है। फिर इस एकांकी को और भी उत्कृष्ट बनाने के लिए मैं अपने प्रिय पाठकों/गणमान्य विद्वानों के विचारों का स्वागत करूँगा और उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहूँगा, जिससे कि भविष्य मे ऐसी सामाजिक रचनाएँ समाज के समक्ष प्रस्तुत कर सकूँ।

चूँकि यह एक ऐतिहासिक एकांकी है अतः वर्तमान समय मे यह किसी धर्म, जाति अथवा व्यक्ति विशेष पर लागू नही होता है। यदि इस एकांकी मे किसी भी वर्ग को किसी प्रकार की ठेस पहुँचती है, तो उसके लिए लेखक जिम्मेदार नही होगा। वैसे प्रयास यही किया गया है कि इससे किसी धर्म, जाति अथवा जाति के उपवर्ग को किसी प्रकार ठेस न पहुँचे और आपस में एक सद्भावपूर्ण माहौल बनाकर एक नये धर्म की रचना मे युवावर्ग एवं प्रबुद्ध वर्ग योगदान प्रदान करे, जिससे आज की गिरती हुई नैतिकता को पुनः उठाया जा सके और धर्म/जातिवर्ग के आधार पर फैल रही सांप्रदायिकता से देश को बचाया जा सका। और यह कार्य तभी सम्भव हो सकता है जब शासक और जनता का समान रूप से योगदान प्राप्त हो। यहाँ यह कहना

अतिशयोक्ति न होगा कि धर्म/जाति/वर्ग/उपवर्ग कोई भी मानवता मे ऊपर नही उठ सकता क्योंकि सभी धर्मों/जातियों/वर्गों एवं उपवर्गों का निर्माता मानव ही है। यदि इस पृथ्वी पर मानव न होता तो न तो धर्म होता और न ही जाति और न ही वर्ग। फिर जब मानव ही समस्त धर्मों का उत्पत्तिकर्ता है, तब धर्म की दासता क्यों? क्यों न धर्म का मूल्यांकन मानव के कर्म से किया जाए और कर्म को उच्च दर्जा प्रदान किया जाए, जिससे मानव धर्म की अपेक्षा कर्म मे विश्वास करें।

खैर, यह तो आने वाला युग ही बता सकता है कि क्या भारत जैसे शांतिप्रिय देश की पावन भूमि पर पलने वाली जनता धर्म की दासता स्वीकार करेगी अथवा नहीं। यहां पर सम्राट अशोक में कलिंग युद्ध के फलस्वरूप हुए परिवर्तन की एक छोटी-सी झांकी के रूप मे इस एकांकी को आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है मेरी यह प्रथम कृति आपको निश्चय ही पसन्द आएगी। मैं अपने प्रिय पाठकों/विद्वानों के विचारो का स्वागत करूँगा, भले ही कड़ुवे वे हों या मीठे।

—के० के० श्रीवास्तव 'कोमल'

पहला दृश्य

[सम्राट अशोक राजमहल में अपने सिंहासन पर विराजमान थे। उनके दोनों ओर चार खूबसूरत दासियाँ मोर पंख से बने पंखे झल रही थी। दो दासियाँ मदिरा को गिलास में डालकर सम्राट अशोक को दे रही थी, जिन्हें सम्राट अशोक बड़ी ही बेदर्दी से पी रहा था। उनके दोनों ओर खूबसूरत नवयौवनाएँ बैठी हुई है, जिनके शरीर पर नाम मात्र के वस्त्र थे। परन्तु सम्राट अशोक अन्य दिनों की अपेक्षा आज काफी गंभीर हैं और किसी गहरे सोच विचार में डूबे हुए थे। उनको गहनतम सोच विचार मे डूबे देखकर उन नवयौवनाओं में से एक ने कहा—"राजन्, आज आपको क्या हो गया है जो आप···।"]

अशोक : कुछ नहीं। मैं सोच रहा था कि इस बार भी मुझे कलिंग पर विजय प्राप्त होगी अथवा···।

दासी : अवश्य होगी महाराज···मुझे पूरा विश्वास है कि आपके शौर्य की पताका कलिंग देश पर अवश्य फहरायेगी।

अशोक : यही तो हर बार सोचता हूँ, लेकिन हर बार मुझे पराजय का मुँह ही देखना पड़ता है। शायद तुम नहीं जानती कि कलिंग सम्राट भृगेन्द्र कितना शूरवीर है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि जितना वह सुन्दर एव शूरवीर है उससे अधिक कहीं अधिक उसकी रानी सुन्दर है। काश एक बार मुझे मिल जाती तो मैं अपने जीवन को धन्य पा जाता।

दासी : (मुस्कुराते हुए)—ओह यह बात है। क्या महाराज हममें कोई दोष है?

अशोक : नहीं·· यहाँ बात गुण दोष की नहीं बल्कि अपने शत्रु राजा की सुन्दर रानी को पाने की है।

[अभी सम्राट अशोक की यह वार्ता चल ही रही थी कि द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि सेनापति जयदत्त आपसे मिलना चाहते हैं।]

अशोक : उन्हें तुरन्त मेरे सामने हाजिर किया जाए।

[कुछ ही देर मे सेनापति जयदत्त कक्ष मे प्रवेश करता है और सम्राट अशोक के सामने जाकर अभिवादनोपरान्त एक ओर खड़ा हो जाता है।]

अशोक : कहो सेनापति क्या खबर लाए हो ?

जयदत्त : महाराजाधिराज कलिंग पर हमारा अधिकार हो गया है···अब आप वहाँ के स्वामी हैं और···।

अशोक : क्या कहा···एक बार फिर कहो···क्या हमने कलिंग पर विजयश्री हासिल कर ली है ।

जयदत्त : हाँ महाराज कलिंग पर हमने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है और कलिंग नरेश भृगेन्द्र रणभूमि छोड़कर भाग गया है ।

अशोक : विश्वास नहीं होता सेनापति, इतना शूरवीर योद्धा रणभूमि में पीठ दिखाकर भाग निकलेगा ।

जयदत्त : जो सत्य है महाराज, वह सत्य ही रहेगा । अब आपका सम्पूर्ण भारत पर एक-छत्र राज्य स्थापित हो गया है ।

अशोक : (हर्षातिरेक से) यदि सेनापति तुम्हारी बात वास्तव में सच हुई तो मैं तुम्हें इतना धन दूँगा कि तुम्हारी सात पुश्तें आराम से बैठकर खाएँगी···यह लो नील-मणि···तुम्हारा उपहार (कहते हुए सम्राट अशोक ने अपने गले में पड़ी रत्नजड़ित बहुमूल्य माला नीलमणि नामक दासी को दे दी) इसी के साथ दूसरी बाँहों में झूल रही दासी को अपने हाथ की अंगुली से रत्नजड़ित अंगूठी उपहार स्वरूप उसे देते हुए यह घोषणा कर दी कि कलिंग विजय के अवसर पर पूरे राज्य में खुशियाँ मनायी जाएँ···घर-घर दिए जलाकर हमारे वीर योद्धाओं का स्वागत किया जाए । हाँ सेनापति, हम तुम्हारी वीरता और साहस से अत्यन्त प्रसन्न हैं, बोलो तुम्हें क्या चाहिए ।

जयदत्त : महाराज मुझे बस आपका आशीर्वाद चाहिए ।

अशोक : सेनापति मेरा आशीर्वाद तो सदैव तुम्हारे साथ है । तुम आज अपने लिए भी कुछ माँग लो ।

जयदत्त : महाराज आपके आशीर्वाद से सब कुछ तो है फिर क्या माँगूँ । जब आवश्यकता होगी, आपसे माँग लूँगा ।

अशोक : खैर, तुम्हारी इच्छा···मैं इसी समय कलिंग का निरीक्षण करना चाहता हूँ ।

जयदत्त : क्या इसी समय ।

अशोक : हाँ इसी समय और अभी ।

जयदत्त : लेकिन महाराज इस समय तो रात्रि का पहला पहर व्यतीत हो चुका है ।

अशोक : हा···हा···हा···रात्रि है···तुम भूल रहे हो सेनापति इस पूरे देश का केवल मैं ही शासक हूँ···देखो···आकाश में देखो···इस विजयश्री से खुश होकर चाँद भी कलिंग भूमि के दर्शन कर रहा है···उसने हमारे लिए भी रास्ते के अन्धकार को दूर भगा दिया है···चलो सेनापति···मैं इसी समय कलिंग के दर्शन करना चाहता हूँ ।

जयदत्त : जैसी आज्ञा महाराज।
अशोक : (चौंकते हुए)—अरे सेनापति एक बात तो बताओ।
जयदत्त : आज्ञा कीजिए महाराज।
अशोक : कलिंग नरेश अकेले ही भागा है अथवा उसके साथ···।
जयदत्त : जी महाराज मेरे शूरवीर सैनिकों ने इतना मौका ही नही दिया कि वह महल में जाकर धन सम्पदा ले सकता।
अशोक : तब तो उसकी रानी स्वप्न सुन्दरी पद्मिनी महल में ही होगी।
जयदत्त : अवश्य होनी चाहिए महाराज।

[रणभूमि में चारों ओर लाशों का अम्बार नजर आ रहा था। रात्रि के 1 बजे थे। आकाश में चाँद अपना पीला प्रकाश चारों ओर बिखेर रहा था। कहीं-कहीं से चमगादड़ों की खूंखार कर्कश आवाजें गुंजरित हो रही थी तो कभी-कभी सियार तथा अन्य हिंसक जन्तुओं की भयावनी कर्कश आवाजें वातावरण को दहला रही थी। उन लाशों में कुछ ऐसे भी अभागे थे, जिनको अभी तक मौत ने अपने आगोश में नही समेटा था। फलतः उनकी कराहती दर्दनाक आवाज से वातावरण और भी भयावह हो उठा था। कहीं-कहीं से मरते हुए व्यक्तियों द्वारा पानी माँगने की आवाजें वातावरण मे गुंजायमान हो रही थी।

ऐसे समय में सम्राट अशोक लाशों के ऊपर खड़े होकर ठहाके पर ठहाके लगाता जा रहा था—"हा···हा···हा···है और कोई इस धरती पर जो सम्राट अशोक को चुनौती दे सके···हो···हा···हो···अब कोई नही है अब तो इस संपूर्ण धरती पर मेरा एकछत्र राज्य हो चुका है···हा···हा···हा।

इस समय सम्राट अशोक का खूंखार चेहरा तमाम पैशाचिक अलौकिक शक्तियों से भर उठा था। आँखें अंगारों की तरह दहक उठी थीं, जिसे देखकर सेनापति भी भयभीत हो उठा। कुछ देर तो वह आश्चर्यमिश्रित नजरों से खूंखार हो उठे अशोक के चेहरे को देखता रहा फिर बोला—"राजन···आपका स्वास्थ्य ठीक नही है···आपको इस समय आराम की जरूरत है।"]

अशोक : (ठहाका लगाते हुए) आराम···हा···हा···हा।
जयदत्त : महाराज इधर आपने कई दिनों से आराम नही किया है।
अशोक : सेनापति आराम तो अब जिन्दगी भर करना है···अब है भी कौन इस धरती पर जो हमारे आराम करने मे दखलन्दाजी करे···अब तो मैं आकाश में चमकने वाले चाँद सितारों और दावानल उगलते सूरज को भी आदेश देता हूँ कि वह मेरी आधीनता स्वीकार कर लें अन्यथा···हा···हा···हा।
जयदत्त : महाराज आपका विचार सही है···लेकिन
अशोक : लेकिन···क्या···मैंने क्या कहा है सुना नही···।

जयदत्त : सुन लिया है राजन्'''।
अशोक : (उन्मादित होकर)—कलिंग नरेश भाग गया है'''क्यों सेनापति।
जयदत्त : जी महाराज।
अशोक : तुम्हें याद है मैंने क्या कहा था।
जयदत्त : मुझे याद है महाराज'''लेकिन महाराज इस समय'''
अशोक : ऐ बुजदिल पीठ दिखाकर भागने वाले कलिंग नरेश'''अब देखना मैं तेरी खूबसूरत रानी को किस तरह अपनी अंकशायिनी बनाता हूँ'''हा'''हा'''ही सेनापति कल रात्रि में कलिंग की रानी को मेरे रंगमहल मे हाजिर किया जाए।
जयदत्त : जो आज्ञा महाराज।

दृश्य परिवर्तन

[राजमहल के विशाल कक्ष में सम्राट अशोक स्वर्ण सिंहासन पर आरूढ़ थे। सिंहासन के दोनों ओर 4 दासियाँ मोर पंख झल रही थीं। कुछ ही दूरी पर चार दासियाँ एक सुन्दर सा मर्तबान लिए खड़ी थी। सिंहासन से कुछ दूरी पर दोनो दिशाओं में सैनिक हाथ मे नंगी तलवारें लिए खड़े थे। कक्ष में सेनापति जयदत्त के साथ ही अन्य पार्षद भी मौजूद थे।

अशोक : जैसाकि आप लोगों को विदित हो गया कि हमारा प्रमुख शत्रु कलिंग नरेश रणभूमि से पीठ दिखाकर भाग गया है। अब सम्पूर्ण कलिंग राज्य पर मेरा अधिकार है।

[हर्षध्वनि]

अशोक : जैसाकि आप लोगों को विदित है कि कलिंग पर काफी प्रयत्नों के बाद हमें विजय प्राप्त हुई है, अतः इस अवसर पर हमारा आदेश है कि सम्पूर्ण देश मे,खुशियाँ मनायी जाएँ और हर घर मे दीप जलाकर हमारे बहादुर सैनिकों का स्वागत किया जाए।

[हर्षध्वनि]

अशोक : आज इसी खुशी के मौके पर यहाँ भी विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया है। आप सभी गणमान्य सहयोगी इस आयोजन में भाग लेकर आनन्द उठाएँ।

अशोक की इस घोषणा के साथ ही दासियों ने गिलासो मे मदिरा ढालकर सभा मे उपस्थित पार्षदो को देना शुरू कर दिया। कुछ ही क्षणों मे कक्ष में मधुर वाद्य संगीत गूँज उठा।

इसी समय कुछ नर्तकियों ने सभाकक्ष में प्रवेश किया—और उनका पाश्चात्य नृत्य शुरू हो गया।

गाना समाप्त होने के बाद सम्राट अशोक नर्तकियों तथा अन्य लोगों को उपहार देकर विदा लेते हैं।

दृश्य परिवर्तन

[सभाकक्ष में सम्राट अशोक सिंहासनारूढ़ थे। सिंहासन की एक दिशा मे कुछ सिपाही नंगी तलवारें लिए खड़े थे तथा उनसे कुछ ही दूरी पर गणमान्य पार्षद बैठे हुए थे।]

अशोक : सेनापति कलिंग युद्ध में हुई क्षति, लाभ व हानि का पूरा ब्यौरा सभाकक्ष के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

सेनापति : सर्वप्रथम यहाँ यह बता देना उचित होगा कि कलिंग देश एक समृद्धिशाली देश है। वहाँ की धरती अत्यन्त उपजाऊ है। विशेष रूप से वहाँ पाए जाने वाले भूरे हाथी विशेष उपलब्धि होगी, जिससे न केवल राज्य की आय में वृद्धि होगी वरन् हमारे देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी।

[हर्षध्वनि]

सेनापति : युद्ध में हुई क्षति का ब्योरा रक्षा एवं अर्थ मंत्री विक्रम सिंह प्रस्तुत करेंगे।

विक्रम सिंह : महाराजाधिराज एवं सभा मे उपस्थित गणमान्य सदस्य, आप सभी को यह जानकर हर्ष होगा कि अब केवल असम राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण देश पर सम्राट अशोक का आधिपत्य हो चुका है। महाराजाधिराज के वीर सेनापति एवं उनके नेतृत्व की सेना ने जिस वीरता से कलिंग युद्ध लड़ा तथा उसमें विजयश्री हासिल की, उसके लिए सेनापति जयदत्त बधाई के पात्र हैं।

[हर्षध्वनि]

विक्रम सिंह : इस युद्ध में अब तक लड़े गए सभी युद्धों में कलिंग देश के सबसे अधिक सैनिक व जनता के व्यक्ति मारे गए। अनुमानतः 1 लाख से अधिक लोग इस युद्ध मे मारे गए तथा लगभग इतने ही व्यक्ति घायल हुए है। इसके अतिरिक्त लगभग डेढ़ लाख व्यक्तियों को गिरफ्तार करके विभिन्न कारागारों में बन्दी बनाकर रखा गया है।

[हर्षध्वनि]

अशोक : सैनिकों का कत्ले आम तो ठीक है, लेकिन जनता का कत्ले आम करने की बात समझ मे नही आयी।

विक्रम सिंह : राजन् इसमें हमारे सैनिकों का कोई दोष नही है। हमारे सैनिकों का उद्देश्य केवल कलिंग को महाराज के अधीन करना था, न कि जनता का कत्लेआम करना था। परन्तु जब हमारे बहादुर सैनिकों ने कलिंग पर विजयश्री हासिल कर

ली तो जनता ने हमारे विरुद्ध विद्रोह कर दिया और हमारे सैनिको पर ईंट व पत्थरो की वर्षा कर दी। यही नही वच्चे से लेकर बूढो तक ने हमारे सैनिको के विरुद्ध विद्रोह छेड दिया और उन्हे कलिंग भूमि से खदेडने की कसम खा ली थी। यही कारण था कि जिसके हाथ मे जो हथियार आया उससे वे युद्ध करने निकल पडे। हमारे सेनापति ने उन्हे समझाने का पूर्ण प्रयास किया परन्तु वे नाकामयाब रहे। अन्ततः हमारे सैनिकों को विद्रोह शान्त करने के लिए कत्लेआम करना पड़ा, जिसके लिए हमारे सेनापति भी कम दुखी नही हैं।

अशोक : ओह्।

विक्रम सिंह : राजन् सबसे दर्दनाक दृश्य विद्रोह शान्ति के बाद उपस्थित हुआ, जिसने कठोर से कठोर दिल इन्सान को भी मोम की तरह पिघला दिया। राजन् विलाप करती माताओ के आंसुओ से मृत बच्चो के शरीर से वहने वाले रक्त धुल गए, सुहागनो ने अपनी चूड़ियाँ तोड-तोडकर अपनी कलाइयो को लहूलुहान कर लिया वहीं बहनें अपने भाइयो की लाशो को देख आँसू बहाकर विलाप करते हुए केवल यही कहती रही···।" कहते-कहते विक्रम की आँखों से वरबस ही आँसुओं की कुछ बूँदें टपक पड़ी।

अशोक : विक्रमसिंह···यह मैं क्या देख रहा हूँ···सम्राट अशोक के मंत्री की आँखों में आँसू···।

विक्रम सिंह : हाँ सम्राट···उस दृश्य को स्मरण करते ही···।

अशोक : दृश्य चाहे जैसा भी हो, एक मंत्री होकर आँसू बहाना सम्राट अशोक का अपमान करना है।

विक्रम सिंह : सम्राट···आँसू छोटे बड़े को नहीं देखती। इन आँसुओं पर किसी का कोई अधिकार नहीं होता। फिर यही मन के भावों की अभिव्यक्ति करते हैं।

अशोक : तो यह आँसू किन भावों की अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

विक्रम सिंह : सम्राट क्षमा हो···यह आँसू उन कलिंग योद्धा बालकों के लिए हैं, जिन्होने अपनी धरती माँ की रक्षा करते-करते अपने प्राणो की आहुति दे दी।

अशोक : (विधाड़कर)—क्या बकते हो विक्रम···।

विक्रम सिंह : महाराज आप भले ही मेरी आवाज को अपनी तलवार से दबा लें, लेकिन उन सैकडों निरीह अबलाओ और वृद्धाओ की आवाज आप नही दबा सकते जिनकी आत्माएं चीत्कार कर रही हैं 'सम्राट अशोक तेरा नाश हो' कहते-कहते विक्रम सिंह फफक उठे।

अशोक : आज तुम्हें क्या हो गया है विक्रम। तुम्हारे जहरीले तीर सरीखे शब्दो से मेरा दिल छिदा जा रहा है···कही इनमे ज्वाला न भडक उठे।

विक्रम सिंह : काश महाराज इनसे ऐसी ज्वाला भड़के, जिसमें हम सब जलकर राख हो जाएँ।

अशोक : (चीखकर) विक्रम...।

विक्रम सिंह : सम्राट...इस तरह चीखने से अच्छा तो यह होता कि आप स्वयं जाकर उन दीन-दुखियों को देखें और सुनें। अगर वास्तव में आपके अन्दर हृदय नाम की चीज है तो...।

अशोक : ठीक है विक्रम तुम्हारी इस आखिरी ख्वाहिश को हम इसी समय पूर्ण करते हैं। यहाँ नहीं जो नंगा खेल कलिंग की भूमि पर खेला गया है, वही नंगा खेल वहाँ की रानी पद्मिनी के साथ उसी राजमहल में खेला जाएगा। तब देखूँगा तुम्हारी ममता, दया भावना और इस उत्तेजक भाषण का अन्त।...हा...हों...हो... सेनापति जयद्रथ हमारे इसी समय कलिंग प्रस्थान की व्यवस्था की जाए।

जयद्रथ : जैसी आज्ञा।

[कलिंग युद्ध भूमि में चारों ओर लाशें ही लाशें नजर आ रही थी। वहीं कलिंग देश की सड़कों, गली कूचों में इधर-उधर लाशों का सैलाब-सा नजर आ रहा था। जगह-जगह नवविवाहिताएँ, वृद्धाएँ और कुमारियों का हुजूम इकट्ठा होकर विलाप कर रहा था। रह रहकर उनकी उखड़ी साँसों से एक ही शब्द गूँजता है—"सम्राट अशोक तेरा नाश हो।"

ऐसे समय में सम्राट अशोक का स्वर्णजटित रथ उन सड़कों पर जा पहुँचा। और सड़कों पर बिखरे बच्चों वृद्धों के शवों को देखकर वह आश्चर्यमिश्रित स्वर में कहता है—"सेनापति यह मैं क्या देख रहा हूँ। इन बच्चों और असहाय वृद्धों की लाशें...क्या यह यथार्थ में अपनी धरती माँ की रक्षा के लिए शहीद हुए हैं।]

जयदत्त : राजन् यह युद्ध है और युद्ध में शत्रु देश के लिए देशभक्ति का कोई मूल्य नहीं होता। आप बेकार परेशान न हों। इन लोगों ने सम्राट अशोक के विरुद्ध विद्रोह करके उनके सैनिकों से संघर्ष किया था, जिसका परिणाम भी तो इन्हें भुगतना था।

अशोक : यह तो मैं भी जानता हूँ जयदत्त...लेकिन इन वृद्धाओं के मुख से निकलने वाली अभिशप्त वाणी...नवविवाहितों की लहूलुहान कलाइयाँ...सेनापति मेरा मन डूबता-सा जा रहा है...मुझे तत्काल कलिंग नरेश के महल ले चलो...वहाँ मैं इसी समय रानी पद्मिनी से मिलना चाहता हूँ।

जयदत्त : जो आज्ञा महाराज!

यह सायंकाल का समय था और सूर्य पश्चिम दिशा की गहराइयों में आराम करने के लिए प्रवेश कर चुका था। सुदूर आकाश में लाल रंग बिखेरती किरणें किसी खूनी आपदा की परिचायक-सी बन उठी थी। रह-रहकर सम्राट अशोक की नजरें पश्चिम दिशा के डूबते सूरज की ओर जा टिकती थी। धीरे-धीरे कलिंग की रणभूमि में देखा गया दृश्य वह भूलता-सा गया और पश्चिम दिशा में विद्यमान

खूनी आभा को देखकर उसकी आँखें भी रक्तिम हो उठी और बरबस ही खूबसूरत पद्मिनी का चेहरा उसकी आंखों के सामने नाच उठा। कुछ ही देर में उसका रथ कलिंग नरेश के महल में जा पहुँचा। महल पहुँचकर उसने जो दृश्य देखा उससे उसे एक बार पुनः चौंकना पड़ा।

महल के बीचोबीच में एक चिता जल रही थी। उस चिता के पास सजी-सँवरी एक स्त्री खड़ी थी, जिसकी आंखों से अविरल आंसुओं की धारा बहती जा रही थी। उसके निकट ही कुछ और भी स्त्रियाँ सजी-सँवरी खड़ी थीं, जिनकी आँखों से भी आंसू बह रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो यह सभी स्त्रियाँ किसी विवाह-संस्कार में उपस्थित होकर किसी की विदाई कर रही हों।

अशोक : सेनापति यह क्या हो रहा है···।

जयदत्त : मुझे खुद भी आश्चर्य हो रहा है सम्राट !

अशोक : कहीं ऐसा तो नहीं कि रानी पद्मिनी आत्मदाह करने जा रही हो।

जयदत्त : उनका सजा-संवरा रूप···जलती हुई चिता·· सम्राट यह तो इसी तथ्य की पुष्टि कर रहा है।

अशोक : लेकिन यह चिता किसकी हो सकती है···जबकि तुमने तो कहा था कि कलिंग नरेश भृगेन्द्र रणभूमि छोड़कर भाग निकला है।

जयदत्त : मैंने सच कहा था सम्राट् ! मुझे खुद भी आश्चर्य है कि यह चिता किसकी हो सकती है।

[इसी समय स्वप्न सुन्दरी पद्मिनी की नजर महल में प्रविष्ट हो गए रथ एवं उस पर सवार सम्राट अशोक एवं सेनापति पर पड़ती है। सम्राट अशोक को देखते ही उसके होंठ हिल उठते हैं।]

पद्मिनी : आ गए अशोक···सम्राट के नाम पर कलंक का बदनुमा धब्बा···।

अशोक : (चीखते हुए) ऐ बदजुबान रानी पद्मिनी, अपनी जुबान को लगाम दे अन्यथा···।

पद्मिनी : (हँसते हुए) क्या करोगे अब तुम···जो करना था वह कर चुके···कलिंग की जनता का नरसंहार करने के बाद भी क्या अभी रक्त की प्यास नहीं भरी है जो इस महल में चले आए।

अशोक : (नम्र स्वर में) रानी पद्मिनी, जो कुछ हुआ उसके लिए मुझे स्वयं भी काफी पश्चाताप है।

पद्मिनी : जब तुम्हें पश्चाताप ही था तो यहाँ किसलिए आए हो।

अशोक : केवल तुम्हारे लिए पद्मिनी। शायद तुम नहीं जानती कि जब से मैंने तुम्हें देखा है···हर पल तुम्हीं मेरी नजरों के सामने विद्यमान रहती हो···स्वप्नसुन्दरी पता नहीं कब से मैं तुम्हें पाने के लिए तड़प रहा हूँ। अब मैं सम्राट अशोक तुम्हें

अपने दिल की रानी का खिताब देना चाहता हूँ।

पद्मिनी : (उपहास भरे स्वर में) ओहो ! सम्राट अशोक कहीं पागल तो नहीं हो गया है।

अशोक : हाँ···हाँ···मैं पागल हो गया हूँ स्वप्न सुन्दरी। बस तुम एक बार मेरे दिल की रानी बनना स्वीकार कर लो।

पद्मिनी : (एकाएक क्रोध से फुंफकारती हुई) मूर्ख सम्राट, तुम शायद यह भूल गए हो कि एक विवाहिता स्त्री अपने जीवन में किसी दूसरे को प्यार नहीं करती। शायद तुम अपनी औकात भी भूल गए हो कि तुम किस तरह से इतना बड़ा पद हासिल कर सके हो। अपने भाइयों के रक्त से टीका लगाने वाले अधर्मी सम्राट अशोक ···कलिंग की रानी में अपनी लाज बचाने की क्षमता है। तुम प्यार की बात करते हो···अगर तुममें पुरुषत्व है तो मेरे शरीर का स्पर्श मात्र कर लो···।

अशोक : रानी पद्मिनी, बेकार जिद करने से कोई फायदा नहीं है। वैसे भी अब मैं यहाँ का शासक हूँ···जहाँ तक तुम्हारे पति की बात है···अगर उसमें गैरत नाम की चीज होती तो अवश्य ही तुम्हारी रक्षा के लिए आता और इस प्रकार पीठ दिखाकर न भागता।

पद्मिनी : हाँ···मुझे अपने पति की इस क्रिया पर अफसोस तो था···लेकिन अब नहीं। जानते हो यह चिता किसकी जल रही है।

अशोक : मैं स्वयं उत्सुक हूँ रानी पद्मिनी।

पद्मिनी : नेपाल नरेश भूपेन्द्र अर्थात मेरे देवतुल्य पति की···मेरे पति ने आत्महत्या कर ली है। जहाँ तक रणभूमि से भागने की बात है···चूँकि आपके सैनिक उन्हें जिन्दा गिरफ्तार करना चाहते थे और वे उनके हाथ में आना नहीं चाहते थे, इसीलिए उन्होंने महल में आकर अपने हाथों से अपना सिर काट डाला।

अशोक : (हँसते हुए) यह तो और भी अच्छी बात है। जो काम मैं स्वयं करना चाहता था वह उसने ही कर डाला। अब तो हमारे और तुम्हारे बीच कोई दीवार नहीं रह गई है।

पद्मिनी : यही तो तुम्हारा भ्रम है सम्राट अशोक।

अशोक : भ्रम नहीं यथार्थ है रानी ! कहते हुए अशोक रथ से उतरकर उसकी ओर बढ़ने लगा।

पद्मिनी : जिसे तुम यथार्थ समझ रहे हो सम्राट अशोक···वही तुम्हारे जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप सिद्ध होगा···आ रहे हो तो आओ···हम भी देखें कि तुम्हारी भुजाओं में कितनी ताकत है कलिंग की रानी को सीने से लगाने की।

अशोक : तुम मेरे पुरुषत्व को चुनौती दे रही हो।

पद्मिनी : हा···हा···हा···बुजदिल और हत्यारे सम्राट का पुरुषत्व सुनकर तरस आता है सम्राट अशोक पर···आओ···आगे बढ़ो···हा···हा···हा।

अशोक : घबड़ाओ नहीं कलिंग, सुन्दरी मेरी बाँहों में इतनी ताकत है कि तुम जैसी सैकड़ों रानियों को अपने सीने से लगा सकूं।

पद्मिनी . ठीक है तो लगाओ सीने से। कहते हुए जैसे रानी पद्मावती ने कोई निर्णय लिया और पागलों के समान ठहाके लगाने लगी। जैसे ही सम्राट अशोक उसके निकट आए और रानी को पकड़ने का प्रयास किया, रानी पद्मिनी ने अचानक कलाबाजी खाई और देखते-ही-देखते अपने पति की जल रही चिता की गोद में जा समाई। चूंकि सम्राट अशोक उसकी इस क्रिया के लिए तैयार नहीं थे, अतः कुछ क्षणों तक तो वह हतप्रभ से देखते रहे। उन्हें यही समझ में नहीं आ रहा था कि कि वह जो कुछ देख रहे हैं वह यथार्थ है अथवा स्वप्न। इसी समय कलिंग की रानी पद्मिनी की आवाज सुनकर चौंक उठे।

पद्मिनी : सम्राट अशोक रुक क्यों गए'''आओ न'''मैं तुम्हारे लिए तैयार खड़ी हूँ''' क्या मेरी चुनौती पूरी नहीं करोगे और इसका परिणाम नहीं देखोगे। कम-से-कम एक बार तो अपने दिल की रानी को स्पर्श कर लो।

अशोक : हाँ रानी पद्मिनी, तुम्हारी बात सही है। मैं तुम्हारी चुनौती को पूरा नहीं कर सकता'''धिक्कार है मेरे जीवन पर'''मेरे यश और वैभव पर जिसने कलिंग की रानी और कलिंग की जनता को जीतने में सफलता नहीं प्राप्त की।

जयदत्त : सम्राट, अब यहाँ रुकने से कोई फायदा नहीं है'''

अशोक : नहीं जयदत्त'''यहाँ पर कलिंग की स्वप्नसुन्दरी पद्मिनी की राख है, उसकी राख जिसे मैं अपने सीने से लगाने के लिए सदियों से तड़प रहा हूँ। भले ही उसका शरीर मैं स्पर्श नहीं कर सका लेकिन उसकी राख को तो सीने से लगाऊँगा ही।

इसी समय सम्राट अशोक को पुनः चौंकना पड़ा। चारों दिशाओं से रानी पद्मिनी की कर्कश आवाज उठती हुई प्रतीत हो रही थी—'मूर्ख सम्राट, तूने यह भावना दिल में लाई कैसे। क्या तू समझता है कि मेरे शरीर की राख तू स्पर्श कर सकेगा। तेरी यह इच्छा भी पूर्ण नहीं हो सकेगी। ले देख'''।' इसी के साथ ही एकाएक तेज हवाएँ चलने लगी। धीरे-धीरे इन हवाओं ने तूफान का रूप धारण कर लिया। वहाँ उपस्थित सभी लोगों की आँखों के सामने बरबस ही अँधेरा छा गया। यह स्थिति लगभग आधे घण्टे तक रही। जब तूफान शान्त हुआ तो सम्राट अशोक के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्योंकि जिस स्थान पर चिता जल रही थी, वहाँ पर अब निर्मल हरी-हरी घास लहलहा रही थी।

अशोक : सेनापति यहाँ पर तो आश्चर्य पर आश्चर्य हो रहे हैं ! आखिर यह सब क्या है ?

जयदत्त : महान आश्चर्य। ऐसा तो मैंने जीवन में कभी नहीं देखा।

अशोक : सेनापति, जीवन में मैं पहली बार हारा हूँ और यह हार मेरे जीवन में नासूर बनकर छाती जा रही है। पता नहीं क्यों क्यों मेरी आँखों के सामने अन्धकार के

बादल छाते जा रहे हैं…ऐ कलिंग की स्वप्नसुन्दरी तूने जो हार मुझे दी है, उसे मैं कभी नही भूल सकता।

जयदत्त : राजन्, अब यहाँ रुकना बेकार है…इस समय आपको आराम की सख्त जरूरत है। अब आप वापस चलिए।

अशोक : ठीक कहते हो सेनापति। अब यहाँ क्या रखा है। जो कुछ था सब तो स्वाहा हो गया। लेकिन सेनापति आज जो कुछ इस महल के प्रांगण में हुआ है उसने मेरी आँखें खोल दी हैं। निश्चय ही जितनी महान यहाँ की रानी थी उससे कही अधिक महान यहाँ की जनता भी है। ऐ कलिंग की रानी…यदि तेरी आत्मा यहाँ मौजूद है तो सुन ले…आज से मैं सौगन्ध खाता हूँ कि अब कोई खूनी संघर्ष नही करूँगा और कलिंग की जनता को अपने पुत्रवत् प्यार करूँगा। ऐ कलिंग की रानी, भले ही तू दूसरे लोक में चली गई जहाँ पर मेरा कोई अधिकार नही है, परन्तु तेरी आत्मा सदैव तस्वीर बनकर मेरे दिल मे कैद रहेगी जिसकी पूजा मैं दिन-रात करूँगा।

[इसी के साथ सम्राट अशोक निराश भाव से कलिंग महल से वापस हो लिए। रास्ते में पुनः वही हृदय-विदारक दृश्य देखने को मिला। रणभूमि मे कहीं चील-कौओं के झुण्ड के झुण्ड मँडराते हुए दिखाई पड़ रहे थे, तो कहीं जंगली जानवर लाश को नोचते-खसोटते दिखाई दे रहे थे।]

अशोक : सेनापति, देख रहे हो…मैं कितना बड़ा विजेता बन गया हूँ…सम्पूर्ण भारत मे मेरा एकछत्र राज्य है…है न।

जयदत्त : बिल्कुल सच है महाराज…अब इस भूमि पर असम राज्य को छोड़कर सारा देश आपका है।

अशोक : नहीं सेनापति, नहीं…ऐसा नही है…क्या तुम देख नही रहे हो…चारों ओर क्षत-विक्षत लाशें क्या कह रही है…क्या तुम सुन नही रहे हो कि यह मासूम अबलाएँ क्या कह रही है…बोलो सेनापति, क्या यह विजय मुझे इन लाशों पर शासन करने के लिए मिली है…मैं पूछता हूँ सेनापति ऐसा तुमने क्यों किया ?

जयदत्त : महाराज यदि ऐसा न करता तो जीती हुई बाजी हार जाता।

अशोक : अरे अब जीत ही गया है तो क्या मिला…आत्मग्लानि…पश्चाताप…स्वप्न-सुन्दरी रानी की आत्मबलि…छोटे-छोटे मासूम देशप्रेमी बालकों के क्षत-विक्षत शव…लेकिन इसमें तुम्हारा भी दोष कहाँ है…वास्तविक दोषी मैं हूँ… खैर, अब इसका प्रायश्चित भी तो मुझे ही करना है सेनापति…तुम शासकीय स्तर पर इन लाशों का दाह-संस्कार करने की विधिवत व्यवस्था करो जिससे इनकी आत्मा को और अधिक प्रताड़ित न होना पड़े।

जयदत्त : राजन् इस प्रकार आपको पश्चाताप नही करना चाहिए। यह युद्ध है और युद्ध मे…।

अशोक : नही सेनापति, यह युद्ध है लेकिन इस युद्ध में मुझे बड़ी हार का सामना करना पड़ा है। विक्रमसिंह ठीक ही कहता था यदि मेरे हृदय में दिल नाम की चीज है तो…खैर भले ही मेरी आँखों में आँसू नही आ सके लेकिन वास्तविकता यह है कि मैं रोना चाहता हूँ लेकिन रो नही सकता क्योंकि मैं सम्राट अशोक हूँ।

जयदत्त : यह आप क्या कह रहे है…मेरी कुछ समझ मे नही आ रहा है।

अशोक : न ही समझो जयदत्त तो अच्छा है अन्यथा तुम भी मेरी तरह आत्मग्लानि और पश्चाताप की आग मे जलने लगोगे।

द्वितीय दृश्य

[सम्राट अशोक राजमहल में अपने विशेष कक्ष में लेटे हुए थे। इस समय उनका चेहरा अत्यन्त गम्भीर है एवं आँखों मे विद्यमान सूनापन इस बात का संकेत कर रहा था कि वह भावुकता के शिकार हो गए थे। उनके निकट ही उनकी रानियाँ व पुत्रगण बैठे हुए थे। उनके चेहरे पर परेशानी एवं आश्चर्य के भाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहे थे क्योंकि आज तक सम्राट अशोक इतने गम्भीर एवं भावुक कभी नही हुए थे। उनकी सबसे बड़ी रानी असन्धिमित्रा जो राजकार्य में सम्राट अशोक को सहयोग करती थी, सम्राट अशोक के चेहरे को इस प्रकार देख रही थी, मानो उनके अन्तर्मन की व्यथा को जानने का प्रयास कर रही हो।]

असन्धिमित्रा : राजन्, समझ मे नही आता कि आपको आज अकस्मात् रूप से क्या हो गया है। यदि आपका स्वास्थ्य ठीक न हो तो राजवैद्य को बुलवाकर अपना परीक्षण करवा लें।

अशोक : नही मित्रा, मेरा स्वास्थ्य खराब नही है।

असन्धिमित्रा : तब आखिर वह कौन-सा कारण है, जिससे आपकी आँखों मे सूनापन और चेहरे पर मलिनता के भाव परिलक्षित हो रहे है। ऐसा तो आज मै पहली बार देख रही हूँ।

विदिशा : आश्चर्य है, आखिर कभी निराश न होने वाले सम्राट की आँखों में सूनापन और चेहरे पर विराजमान गम्भीरता कही आने वाले किसी तूफान का द्योतक तो नही है।

तिष्यरक्षिता : आश्चर्य तो मुझे भी है…कामी-क्रोधी और मानव रक्त से अपनी प्यास

बुझाने वाले सम्राट···खून की गंगा बहाने की क्षमता रखने वाले यशस्वी सम्राट और चांद-सितारों पर अपने अधिकार का दिवास्वप्न देखने वाले सम्राट अशोक की आंखों में विराजमान गम्भीरता निश्चय ही किसी आने वाले भयानक तूफान का द्योतक है ।

अशोक : (कानों पर हाथ रखते हुए) बस करो···बस करो···तुम लोगो का विचार सही है···मेरे जीवन में भयानक तूफान प्रवेश कर चुका है मित्रा, जिसके थपेड़ों ने मेरे दिलो-दिमाग की चूलों को हिलाकर रख दिया है।

असन्धिमित्रा : आखिर ऐसा कौन-सा तूफान है, जिसके कारण···।

अशोक : मित्रा, मैं आज अपने जीवन की सबसे बडी हार का मुंह देखकर पश्चाताप की अग्नि मे जल रहा हूँ।

असन्धिमित्रा : (आश्चर्य से) हार···यह आप क्या कह रहे है ?

अशोक : मैं सच कह रहा हूँ मित्रा···कलिंग युद्ध ने जो करारी मात मुझे दी है, उसने मेरे अन्तर्मन को झिझोर कर रख दिया है···।

असन्धिमित्रा : लेकिन हमें मिली सूचना के अनुसार तो हमारी सेना ने कलिंग पर विजय प्राप्त करके आपके नाम की पताका फहरा दी है और वहां का नरेश रणभूमि छोडकर भाग निकला है।

तिष्यरक्षिता : यही नहीं वहां एक लाख से अधिक व्यक्तियों का कत्ल किया गया एवं डेढ-दो लाख व्यक्ति गिरफ्तार हुए है । मुझे मिली सूचना के अनुसार तो लाखों व्यक्ति इस युद्ध में घायल हो गए हैं जो जीवन-मृत्यु के बीच संघर्ष कर रहे हैं।

अशोक : तुम लोगों को प्राप्त सूचनाएँ यद्यपि सही है, तथापि इस युद्ध में मुझे सबसे बड़ी हार का मुह देखना पडा है ।

असन्धिमित्रा : हार···हार···हार···समझ में नहीं आता कि आप किस हार की बात कर रहे हैं।

अशोक : यदि तुम जानना चाहती हो तो सुनो···कलिंग के योद्धाओं ने जहां देश की रक्षा करते हुए अपनी बलि दी वही वहां के साधारण नागरिक, यहां तक कि अल्पायु के बच्चे भी देश-रक्षा का दायित्व अपने ऊपर लेकर शहीद हो गए···जहां तक मृगेन्द्र के भागने की बात है···वह हमारे सैनिकों की आँख मे धूल झोंककर राजमहल में पहुँच गया जहां उसने आत्महत्या कर ली । यही नही मृगेन्द्र की स्वप्नसुन्दरी रानी पद्मिनी ने, जिसे मैं पाना चाहता था, मेरे सामने ही मुझे चुनौती देते हुए अपने आपको जलती चिता में झोक दिया।

तिष्यरक्षिता : ओह···तो रानी पद्मावती का प्यार राजा को ले डूबा···।

असन्धिमित्रा : लेकिन राजन् इसमें तो कोई विशेष बात नही हुई···यह तो युद्ध है और युद्ध मे खून की नदियां बहती ही है । इतिहास गवाह है कि कोई भी युद्ध बिना रक्त बहाए समाप्त नहीं हुआ है । मेरे विचार से तो रणभूमि की रक्तपिपासा की

पूर्ति के लिए युद्ध होता है और इस युद्ध के कारण ही खून की नदियाँ बहती है।

अशोक : मित्रा, सवाल यहाँ रक्त का नही है···वल्कि···उफ कुछ समझ में नही आता क्या कहूँ···फिलहाल मुझे आराम की सख्त जरूरत है। (कहते हुए सम्राट अशोक ने आँखे बन्द कर लीं।)

सम्राट अशोक की इस क्रिया से सभी लोग बाहर चले गए परन्तु रानी पद्मावती जो अभी तक शान्त बैठी हुई थी, वही बैठी रही और सम्राट अशोक के पैर दबाने लगी। सम्राट अशोक अपनी सभी रानियो मे रानी पद्मावती को बहुत अधिक चाहते थे। जब सभी लोग बाहर चले गए तो सम्राट अशोक ने पद्मावती से कहा—मुझे शराब पिलाओ, शायद उससे मन को कोई शान्ति प्राप्त हो।

रानी पद्मावती ने एक दासी को शराब लाने तथा नृत्यगान की व्यवस्था करने का आदेश दिया तथा सम्राट अशोक का सिर दबाने लगी।

कुछ ही देर मे कुछ दासियाँ मदिरा लिए हुए कक्ष मे दाखिल हुईं तथा कुछ नर्तकियों एव वाद्य संगीतज्ञों ने कक्ष मे प्रवेश किया। रानी पद्मावती अपने हाथों से सम्राट अशोक को मदिरा पिलाने लगी। देखते-ही-देखते वाद्य संगीत की मधुर ध्वनि के साथ ही नृत्य शुरू हो गया।

परन्तु मदिरा पान व मनोरजन से भी सम्राट अशोक की मनःस्थिति ठीक न हो सकी। फलतः उन्होने इसे बन्द करने का आदेश दे दिया।

कुछ ही देर में कक्ष खाली हो गया और वहां शांति हो गई।

पद्मावती : राजन् ऐसा प्रतीत होता है कि आपके दिल को काफी ज्यादा आघात पहुँचा है। ऐसी स्थिति में आपको आराम करने की सख्त जरूरत है। अब आप कृपया सो लें। इससे अपकी मनःस्थिति स्वस्थ हो जाएगी।

अशोक : तुम ठीक कहती हो पद्मावती।

तृतीय दृश्य

[राज दरबार मे गणमान्य सदस्यों के साथ पार्षद (मंत्रिगण) भी उपस्थित थे। सभी केवल एक ही विषय पर चर्चा कर रहे थे, जिसका शीर्षक था कलिंग विजय। सभी लोग सम्राट अशोक और उनके बहादुर सेनापति की बहादुरी की प्रशंसा कर रहे थे, जिन्होने कलिंग भूमि पर विजय पताका फहराया थी। अभी वहाँ चर्चा चल ही रही थी कि चोबदार की कर्कश आवाज दरबार में गूँज उठी—"महाराजाधिराज सम्राट अशोक राज दरबार मे पधार रहे हैं।"

चोबदार की आवाज सुनते ही सम्पूर्ण सभा में शान्ति छा गयी और सबकी निगाहें प्रमुख द्वार की ओर उठ गईं। प्रमुख द्वार [illegible] पहने हुए प्रवेश किया। परन्तु सदैव की तरह [illegible] गम्भीरता ने ले रखा था। सम्राट अशोक धीरे-धीरे चलते हुए राज सिंहासन के निकट पहुँचे और फिर उस पर बैठकर कुछ सोचने लगे।]

विक्रम : महाराजाधिराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं प्रतीत होता है। यदि आज्ञा हो तो आज की कार्यवाही स्थगित कर दी जाए।

अशोक : नहीं···नहीं···सभा की कार्यवाही शुरू की जाए।

विक्रम : जैसा कि महाराज अवगत ही हैं कि हमने कलिंग पर विजय पताका फहरा दी है। इसी के साथ हम उस दिन के अपने कृत्य के लिए अपना खेद व्यक्त करते हैं, जिसके कारण महाराज को···।

अशोक : नहीं विक्रम···उस दिन तुम्हारे कृत्य से ही मेरी आँखें खुली है इसलिए खेद प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। जहाँ तक कलिंग विजय का प्रश्न है, निश्चय ही हमने पूरे कलिंग पर अपना राज्य स्थापित कर लिया है लेकिन मुझे मिला क्या···केवल लाशों के ढेर, देश प्रेमियों की सिसकती आवाजें···विधवाओं के श्राप···माँ-बहनों की दर्दनाक चीत्कारें···क्या तुम चाहते हो कि सम्राट अशोक इन लाशों पर शासन करे···उन दुःखी और निराश बेसहारा औरतों पर अपना पुरुषत्व दिखाए···।

विक्रम : लेकिन महाराज युद्ध में तो यही सब होता रहा है···आज तक जितने भी युद्ध लड़े गए हैं, सभी में ऐसे ही दृश्य देखने को मिलते हैं।

अशोक : हाँ मिला है···लेकिन ऐसी अभिमानी जनता नहीं मिली और न ही ऐसी स्वाभिमानी महारानी जिसने मेरे सामने ही अपने जिन्दा शरीर को जलती चिता में झोंक दिया हो। विक्रम उस समय तुम मौजूद नहीं थे लेकिन जयदत्त से पूछो उसने वहाँ क्या देखा। उस स्वाभिमानी स्वप्न सुन्दरी के शरीर की बात छोड़ो··· उसकी राख तक हम स्पर्श नहीं कर सके। मैं पूछता हूँ आखिर ऐसा क्यों हुआ··· जबकि हमने वहाँ अपनी विजय पताका फहरा दी।

जयदत्त : महाराज! यह जो कुछ हुआ था, वह एक करिश्मा था। लेकिन इस छोटे से प्रकृति के करिश्मे के कारण अपनी हार स्वीकार लें, यह उचित नहीं है।

अशोक : ठीक है यथार्थ में मैंने कलिंग पर विजय पा ली है लेकिन इसके साथ ही मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि अब पुनः ऐसी स्थिति न दोहराई जाए जिससे उन घटनाओं की पुनरावृत्ति हो।

विक्रम : मैं समझा नहीं महाराज!

अशोक : अब मैंने यह निश्चय किया है कि हमारे राज्य में न तो अब कोई युद्ध होगा और न ही नरसंहार होगा।

विक्रम : लेकिन यह निर्णय लेने के पूर्व अभी इस बात पर भी निर्णय लेना है कि हमारा

एक शत्रु और है और उस पर विजय पताका फहराना हमारा अन्तिम लक्ष्य है।

अशोक : मैं जानता हूँ, आसाम ही एक ऐसा राज्य है, जिस पर हमें विजय प्राप्त करना है, लेकिन अब मैं इसकी आवश्यकता नही समझता।

विक्रम : महाराज के इस निर्णय का तात्पर्य यह है कि अब राज्य मे सैनिकों की कोई आवश्यकता नहीं है।

अशोक : विक्रम, बिना सैनिक के राज्य नही चला करता। मैंने केवल यह कहा है कि अब हम कोई युद्ध अथवा नरसंहार नही करेंगे, लेकिन यदि हमारी ओर कोई आँख उठाकर भी देखेगा तो उसका जवाब देने के लिए क्या तुम कम हो।

विक्रम : वह तो ठीक है महाराज, लेकिन इस तरह हमारी तलवारों मे जंग लग जाएगी।

अशोक : नहीं विक्रम तलवारों में यदि जंग लग भी गई तो कोई बात नही परन्तु यदि इससे हमारे दिलो में लगी जंग घुल जाती है तो यही सबसे बडे युद्ध की विजय है। विक्रम अब हम केवल वही कार्य करेंगे जो जन सेवा से सम्बन्धित हों और इसके लिए हमें अपने कर्मरूपी तलवार को चमकाना है, जिससे जनता के हृदय में व्याप्त भय व नफरत रूपी जंग को धोकर उनके प्रति अपने प्रेम मे परिणत कर सकें।

विक्रम : जैसी आज्ञा महाराज ! हम सभी मंत्रिगण आपको विश्वास दिलाते हैं कि आज से ही आपके आदेशों का पालन सुनिश्चित कर दिया जाएगा।

दृश्य परिवर्तन

[राजमहल के कक्ष मे सम्राट अशोक आराम कर रहे थे परन्तु उनके चेहरे पर व्याप्त चिन्ता के लक्षण स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहे थे। रह-रहकर वह उठकर कक्ष में टहलने लगते थे और बार-बार एक ही बात उनके मुख से निकलती थी—"रानी पदमिनी तुम्हारा यह बलिदान मैं कभी भी भूल नही सकता।

चलते-चलते जब वह थक जाते तो पुनः मसहरी पर जा बैठते। अभी उन्हें बैठे हुए कुछ ही देर हुई थी कि उनके कानों में एक मधुर सुगम संगीत की धारा प्रवाहित होती चली गयी। इस संगीत में इतनी मधुर मिठास घुली हुई थी कि वह कुछ क्षण के लिए अपना सारा दुःख-दर्द भूल से गए। बरबस ही वह मसहरी से उठ खडे हुए और खिड़की की ओर बढ लिए। खिड़की के निकट पहुँचकर उन्होने बाहर जो कुछ देखा उससे वह आश्चर्य से उछल पड़े और शीघ्रता से राजमहल से बाहर जाने के लिए बढ लिए।]

दृश्य परिवर्तन

[राजमहल के सामने कुछ साधू कतार में खड़े हुए मृदंग व वीणा बजा रहे थे। अग्र पंक्ति मे खड़ा युवक (साधू) एक सुन्दर-सा गीत गा रहा था तथा पीछे के अन्य

साधू मृदंग व वीणा बजाते हुए नृत्य कर रहे थे। उन साधुओं ने गेरुआ वस्त्र धारण कर रखा था तथा सिर के बाल बिल्कुल साफ थे।

सम्राट अशोक बाहर आकर उस अग्रपंक्ति में खड़े एक साधू के पास जो पहले और निर्विभाव एकाग्र मुद्रा में गीत गा रहे आश्चर्य से उस युवक के चेहरे को देखने लगे।]

अशोक : अरे वीतशोक, क्या तुम अपने भाई को नहीं पहचानते।

वीतशोक : भाई नहीं, सम्राट अशोक कहिए राजन। सभी भाइयों को तो आपने मरवा दिया था, केवल मैं ही किसी प्रकार बच निकला था।

अशोक : लेकिन यह साधू की वेशभूषा…हाथ में वीणा…मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता रहा है कि…

वीतशोक : यह सब आपके समझने की चीजें नहीं हैं सम्राट अशोक। हम एक साधू हैं और हमारा लक्ष्य भगवान बुद्ध की शिक्षा का प्रचार घर-घर जाकर करना है।

अशोक : लेकिन एक क्षत्रिय होकर साधू बनना…!

वीतशोक : क्यों क्षत्रिय होकर अपने क्रूर भाई के हाथों अपने को बलि चढ़वा देता।

अशोक : क्यों बार-बार इस तरह थप्पड़ मार रहे हो वीतशोक…मैं तो खुद ही पश्चाताप की आग में जला जा रहा हूँ।

वीतशोक : आप और पश्चाताप…संसार का महान आश्चर्य (कहते हुए वह ठठाकर हँस पड़ा।)

अशोक : हाँ भाई यह सत्य है, जबसे कलिंग का युद्ध हुआ है…।

वीतशोक : मैं सब जानता हूँ सम्राट अशोक…जब से कलिंग का युद्ध जीता है और जबसे वहाँ की महारानी ने अपनी बलि दे दी है तभी से आपके मन में एक तूफान हल-चल मचाए हुए है…हा…हा…हा।

अशोक : क्या तुम ज्योतिषी हो।

वीतशोक : सम्राट अशोक साधू बनने के लिए अनेक विद्याओं का ज्ञाता होना पड़ता है फिर हम तो भगवान बुद्ध के उपासक हैं, जिसे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सभी का ज्ञान होता है।

अशोक : लेकिन तुम्हारा इस प्रकार हँसना…!

वीतशोक : हाँ सम्राट अशोक…हँस रहा हूँ अपने उस तथाकथित क्रूर और चाण्डाल भाई पर, जिसने अपने सभी भाइयों को मरवा दिया…हँस रहा हूँ उस निरंकुश और आत्मघाती भाई पर जिसने अपने 500 मंत्रियों को जिन्दा आग में झोंक दिया…हँस रहा हूँ उस नरसंहारक भाई पर जो अपने आतंक से जनता को भयभीत करके उसके रक्त से अपनी प्यास बुझाता है…हा…हा…हा।

अशोक : बस करो…बस करो…नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगा वीतशोक।

वीतशोक : नहीं राजन, आप पागल कैसे होंगे···सम्राट कभी भी पागल नहीं हो सकता।

अशोक : चलो भाई·· मेरी कुटिया को पवित्र करो और भगवान बुद्ध के बारे में मुझे भी कुछ बताओ।

वीतशोक : नहीं राजन्, यह नहीं हो सकता।

अशोक : क्यों नहीं हो सकता मेरे भाई।

वीतशोक : मैं जानता हूँ कि आपको इस भाई को जीवित देखकर आश्चर्य हो रहा होगा। और ऐसी अवस्था में आप उसका वध करवाना चाहते होंगे। वैसे महाराज आप निश्चित रहें···मुझे शासन और गद्दी से कोई लगाव नहीं है···यह खून-खराबा हमारी धर्मनीति के विरुद्ध है···मुझे तो अब मौत से भी कोई खौफ नहीं है···मैंने केवल जो व्रत लिया है उसको पूर्ण करने में ही···।

अशोक : वीतशोक·· तेरे यह शब्द जहरीले तीर बनकर मेरे हृदय को छेदे दे रहे हैं। यदि तुझे सन्देह है तो यह ले तलवार और अपने भाइयों की मौत का बदला अपने इस क्रूर और निरंकुश शासक भाई से ले। चिन्ता मत कर यहाँ कोई भी मेरे तेरे बीच में नहीं बोलेगा।

वीतशोक : राजन्, हमने अहिंसा का व्रत ले रखा है जो भगवान बुद्ध का प्रमुख संदेश है। इसके अतिरिक्त हमारी शिक्षा में बदले की भावना रखने को सबसे बड़ा पाप माना गया है।

अशोक : तब तुम्हें मेरा विश्वास करना चाहिए वीतशोक। यदि तू कहेगा तो मैं तेरे स्थान पर साधु बन जाऊँगा और तुझे राजगद्दी सौंप दूँगा।

वीतशोक : राजगद्दी···हा···हा···हा···राजन उस राजगद्दी पर जिस पर लाखों विधवाओं की आहें भरी हुई हैं, कितनी ममताओं का अभिशाप प्राप्त है···कितनी बहनों के श्रापों से ग्रस्त है···उस राजगद्दी के लिए मैं तुम्हें अपना स्थान दूंगा··· क्षमा करें महाराज वह राजगद्दी आप ही को मुबारक हो। हाँ अगर आपकी इच्छा है तो चलिए मैं आपके राजमहल में चलकर भिक्षा अवश्य ग्रहण करूँगा।

दृश्य परिवर्तन

अशोक : आओ मेरे भाई···इस गद्दी पर बैठकर···!

वीतशोक : क्षमा करें राजन्··मैंने पहले ही बता दिया है कि इस गद्दी से मुझे कोई मोह नहीं है। मेरा स्थान तो यह है—कहते हुए वीतशोक जमीन पर बैठ जाता है। उसके पीछे ही अन्य साधु भी बैठ जाते हैं।

अशोक : जैसी इच्छा। आप लोगों के लिए भोजनादि···!

वीतशोक : राजन्, हमारा तो धर्म ही भिक्षा प्राप्त करके पेट भरना है। लेकिन हम लोग केवल फल ही भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं।

[सम्राट अशोक एक सैनिक को फलादि लाने का आदेश देता है।]

वीतशोक : महाराज, आपमें इस प्रकार का आकस्मिक परिवर्तन मेरी समझ में नहीं आ रहा है। वैसे भी मुझे आश्चर्य है कि आपमें केवल एक नारी के कारण इतना भारी परिवर्तन आया है जबकि मेरी जानकारी के अनुसार आपके पास एक से एक बढ़कर सुन्दरियाँ दासी के रूप में कार्यरत हैं।

अशोक : हाँ···वह नारी नहीं बल्कि देवी थी। उसके पतिव्रता धर्म और त्याग की कहानी मेरे दिलोदिमाग पर छा गई है। विशेष रूप से वहाँ की जनता के मातृ-भूमि के लिए बलिदान ने मुझ पर काफी प्रभावी परिवर्तन लाकर रख दिया है। अब तो राजकाज से मन इतना खिन्न हो चुका है कि कभी-कभी यही इच्छा होती है कि आत्महत्या करके इस जीवन से मुक्ति पा लूँ।

वीतशोक : मुझे प्राप्त जानकारी के अनुसार तो आप कलिंग की रानी पद्मिनी को अपनी अंकशायिनी बनाना चाहते थे परन्तु अब इसमें सफल न होने के कारण आप रोग-ग्रस्त हो गए हैं।

अशोक : हाँ भाई, तुम्हारा विचार सही है। मैं उसे कई वर्षों से पाना चाहता था परन्तु वहाँ का नरेश इस कार्य में अत्यन्त बाधक सिद्ध हो रहा था। उसने सदैव मेरी सैनिक शक्ति का मखौल उड़ाया परन्तु इस बार मैंने विजय तो प्राप्त कर ली परन्तु ऐन मौके पर जब मैं उसे पाने को लालायित हो उठा था, तभी उसने मेरे पुरुषत्व को चुनौती देते हुए आत्मदाह कर लिया। सबसे आश्चर्यजनक घटना तो उस समय घटित हुई, जब उसकी चिता की राख को आकस्मिक रूप से आए तूफान अपने साथ उड़ा ले गए और उसके स्थान पर वहाँ निर्मल हरी घास पैदा हो गई।

वीतशोक : राजन्, आपके इस रोग का कारण स्पष्ट रूप से कलिंग की रानी है। आपको उसे अपने हृदय से निकाल देना चाहिए।

अशोक : मैंने बहुत प्रयास किया वीतशोक लेकिन···!

[इसी समय सैनिक फलों से भरा थाल लाकर वीतशोक के आगे रख देते हैं। सभी साधू मिलकर एक साथ फलों का भोजन ग्रहण करते हैं, उसके बाद शर्बत पीते हैं।]

अशोक : मेरा अन्तर्मन बहुत व्यथित हो उठा था, परन्तु जब से आपके गीत के मधुर स्वर मेरे कानों में पड़े तो मुझे अजीब-सी शान्ति की अनुभूति हुई।

वीतशोक : यह सब भगवान बुद्ध की कृपा है राजन्।

अशोक : वीतशोक, अब मेरा मन राजगद्दी से ऊब चुका है और मैं शान्तिमय जीवन-यापन करना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मैं भी तुम्हारी तरह ही साधू बनकर भिक्षाटन करके शेष जीवन भगवान बुद्ध की सेवा में अर्पित कर दूँ।

वीतशोक : इसका निर्णय हम आप नहीं कर सकते। वैसे भी राजा और साधू का सम्बन्ध परस्पर विरोधी है।

अशोक : लेकिन···।

वीतशोक : राजन्, क्षणिक भावावेश में कोई निर्णय लेना राजहित में नहीं है। आप राजा हैं और आपके ऊपर पूरे देश का भविष्य निर्भर है। इसके विपरीत साधू पर न तो कोई भविष्य निर्भर होता है और न ही उसके भूतकाल का कोई महत्त्व होता है। यदि होता है तो केवल वर्तमान में हो रही घटनाओं का जनहित में मूल्यांकन।

अशोक : लेकिन अपने मन को कैसे समझाऊँ।

वीतशोक : आप भगवान बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण करें। वही आपको शान्ति प्रदान करेंगे।

अशोक : मैं भी उनकी शिक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ वीतशोक। तुम आज से ही मुझे भगवान बुद्ध के उपदेशों की शिक्षा देने का कार्य शुरू कर दो।

वीतशोक : राजन्, मेरे लिए तो यह सम्भव नहीं है। आपको इसकी उत्तम शिक्षा गुरु तिस्स मोगलिपुत्त ही दे सकेंगे। मैं आपका सन्देश उन तक पहुंचा दूंगा। आशा है वे शीघ्र ही आपको दर्शन देंगे।

अशोक : लेकिन उनके आने में तो काफी समय लग सकता है तब तक···!

वीतशोक : इस उद्देश्य के लिए मैं अपने शिष्य बाल पण्डित को छोड़े जा रहा हूँ। वह आपको बौद्ध धर्म की शिक्षा एवं उपदेशों से अवगत कराएँगे।

अशोक : (बाल पण्डित को देखते हुए)···क्या इतना छोटा लड़का हमें शिक्षा दे सकेगा।

वीतशोक : राजन्, शिक्षा के क्षेत्र में छोटे बड़े का महत्त्व नहीं होता बल्कि उसके ज्ञान से उसकी विद्वत्ता का मूल्यांकन किया जाता है। जब आप इसके उपदेशों को सुनेंगे तो आप स्वयं समझ जाएँगे कि यह आपको शिक्षा दे सकता है अथवा नहीं।

अशोक : जैसी आज्ञा !

वीतशोक : राजन् हम लोग आज्ञा नहीं बल्कि परामर्श देते हैं। आज्ञा देने का कार्य तो आपका है।

अशोक : मानना पड़ेगा भाई, बौद्ध धर्म के ज्ञान ने तुझे बड़ा ही चापलूस बना दिया है।

वीतशोक : यह सब गुरु तिस्स की कृपा है राजन् अन्यथा मैं किस योग्य हूँ।

अशोक : खैर बहुत देर हो गई है, अब तुम्हें आराम की आवश्यकता होगी।

वीतशोक : निःसन्देह अगर आपकी आज्ञा हो।

अशोक : बहुत खूब···अरे भाई···तुम्हारे लिए तो अब मैं जान तक देने को तैयार हूँ··· फिर आज्ञा कैसी। (इसके साथ एक सैनिक की ओर देखते हुए) रामसिंह इनके आराम की व्यवस्था कर दी जाए।

दृश्य परिवर्तन

[सम्राट अशोक बाल पण्डित, जिसकी उम्र लगभग 12 वर्ष थी, के साथ देवालय में बैठे हुए। बाल पण्डित योगासन की मुद्रा में ध्यानमग्न बैठा हुआ था, उसके शरीर पर मात्र गेरुए रंग एक चोंगा है तथा सर के बाल मुंडे हुए थे। इसके विपरीत सम्राट अशोक उत्सुकता के साथ बाल पण्डित के चेहरे पर आते-जाते भावों को देख रहा था।]

अशोक : बाल पण्डित जी, यह अवस्था कब तक रहेगी। कब तक हमें आपके उपदेशों के लिए इन्तजार करना पड़ेगा।

बाल पंडित : मैं सोच रहा हूँ कि आपको नये मार्ग में प्रवेश करने के लिए कहाँ से उपदेश दूँ। मेरे विचार से सबसे पहले भगवान बुद्ध के जीवन पर कुछ प्रकाश डाल दूँ, क्योंकि आज आपकी भी वही अवस्था है, जो भगवान बुद्ध के बचपन में थी। भगवान बुद्ध का वास्तविक नाम सिद्धार्थ था, और वह क्षत्रिय घराने से सम्बन्धित थे। उनके पिता लुंबिनी के राजा थे। उन्होंने सिद्धार्थ का पालन पोषण बड़े ही उत्तम ढंग से किया परन्तु सिद्धार्थ का अन्तर्मन मानव दुःखों को देखकर व्यथित हो उठता था। अक्सर वह सुख, दुख और जीवन मृत्यु के सम्बन्ध में ही सोचा करते थे। उसकी उस स्थिति से राजा चिन्तित हो उठे और उन्होंने उसका विवाह कर दिया। परन्तु इसका भी कोई विशेष असर सिद्धार्थ पर न पड़ा और एक रात्रि में उन्होंने सब कुछ छोड़कर माया मोह से मुक्ति पा ली और अज्ञात वास को चले गए। वह कहाँ गए, किसी को कुछ पता ही न लग सका। परन्तु जब वह पुनः प्रकाश में आए तो बुद्ध के नाम से प्रख्यात हो चुके थे। उनकी शिक्षा और उपदेशों के फलस्वरूप ही उन्हें भगवान बुद्ध की उपाधि से विभूषित किया गया।

अशोक : आश्चर्य है, सम्पूर्ण राजकाज छोड़कर उन्होंने अल्पायु में ही एकान्तवास ले लिया। इतनी अवधि तक वह कहाँ रहे और उनके उपदेश क्या हैं।

बालपंडित : जहाँ तक उनके एकान्तवास की अवधि में रहने का प्रश्न है, इसकी संक्षेप में व्याख्या कर सकना सम्भव नहीं है। हाँ उनके उपदेश के मुख्य मार्ग हैं। राजन् वैसे तो जीवन के दो प्रमुख मार्ग हैं, प्रथम अत्यन्त भोग विलास और दूसरा अत्यन्त क्लेशपूर्ण तपस्या। यदि इन दोनों मार्गों को देखा जाए तो यह स्पष्ट रूप से विदित होगा कि अब तक आप प्रथम मार्ग को प्रशस्त करते रहे, परन्तु अब आपको दूसरे मार्ग से होकर गुजरना है। यह मार्ग अत्यन्त दुःखदायी, क्लेशपूर्ण होता है, अतः इस अवस्था मे अनेकानेक बीमारियाँ पीछे लग जाती हैं। राजन् यह मार्ग इतना कष्ट-दायी होता है कि इस अवस्था मे आदमी जीना नही चाहता। परतु इस श्रेणी मे भी दो प्रकार के लोग होते हैं। प्रथम वर्ग के लोग न जीना चाहते हुए भी जीने की अभिलाषा रखते है क्योंकि वह माया मोह के जाल से मुक्त नही हो पाते परन्तु

दूसरे वर्ग के लोग इस अवस्था को सहन न कर सकने के कारण आत्महत्या करके इस कष्टमय जीवन से मुक्ति पाने का प्रयास करते हैं।

अशोक : निश्चय ही तुम्हारा ज्ञान असीमित है। हाँ इस मार्ग से मुक्ति का भी तो कोई उपाय होगा।

बाल पण्डित : अवश्य है राजन्। भगवान बुद्ध ने इसी मार्ग की खोज में अपना सम्पूर्ण जीवन बिता दिया था। अन्ततः जब उन्हें ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हुआ तब उन्हें विदित हुआ कि इन दोनों मार्गों के अतिरिक्त तीसरा मार्ग भी है, जिसे मध्यम कहा जाता है। मध्यम मार्ग ही जीवन का ऐसा मार्ग है, जिसको अपनाने के बाद न तो सुख बोध होना है और न ही दुःख का पश्चाताप। भगवान बुद्ध ने इस मार्ग को अपनाने के लिए 8 उपमार्ग बताए हैं।

(1) सम्यक दृष्टि (2) सम्यक संकल्प
(3) सम्यक वचन (4) सम्यक कर्म
(5) सम्यक जीविका (6) सम्यक प्रयत्न
(7) सम्यक स्मृति, तथा (8) सम्यक समाधि

अशोक : लेकिन आपके इन मार्गों तथा उपमार्गों से मेरी समस्या का समाधान नहीं हो पा रहा है। मैं राजा हूँ और इस स्थिति में इन मार्गों को अपनाने में सफल हो पाऊँगा, इसमें सन्देह है।

बाल पण्डित : आपका कथन कुछ हद तक सही है। लेकिन यह भी सत्य है कि आपके अन्दर दुःख, क्षोभ, आक्रोश और व्यथा भी है और उसका कारण भी है। यदि दुःख का परिहार है तो दुःख परिहार के उपाय भी हैं। भगवान बुद्ध ने कहा था—"इन्द्रियों का अत्यन्त सन्तप्त होना और अत्यन्त लालच करना, दोनों ही अत्यन्त बुरे हैं। सन्तप्त से जहाँ चेतना का ह्रास होता है, वहीं लालच से लिप्सा का आवरण चेतना को ढक लेता है। यह दोनों ही स्थितियाँ अत्यन्त दुःखदायी हैं। ऐसी स्थिति में यदि आपको मध्यम मार्ग अपनाना है तो उसके लिए सन्तप्त और लालच दोनों का ही त्याग करना होगा और इसके लिए यह आवश्यक है कि अपनी इन्द्रियों को अपने अधीन रखें न कि इन्द्रियों की दासता को स्वीकार करें।

अशोक : इसका मतलब अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित करने के लिए अपनी चेतना को जागृत करना होगा।

बाल पण्डित : चेतना सोयी ही कब है राजन्। यदि चेतना विलुप्त हो जाए अथवा सो जाए तो समस्त जीवन अचेतन अवस्था में आकर मिट्टी के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। आपको केवल उस पर सन्तप्त और लालच से ढके आवरणों को हटाकर स्वच्छ करना है और तभी मध्यम मार्ग को अपनाना सम्भव हो सकेगा।

अशोक : धन्य हैं आप, जिसने इतनी अल्पायु में ही जीवन को सही मार्ग में ढालने का मार्ग खोज निकाला।

बाल पण्डित : राजन् यह मार्ग भगवान बुद्ध ने घोर तपस्या और कष्टकारक जीवन यापन के बाद खोजे है। मैं तो एक तुच्छ सेवक हूं, जो उनके बताए मार्ग के महत्त्व को प्रचारित कर रहा हूं।

अशोक : मेरे मन में एक जिज्ञासा है।

बाल पण्डित : कैसी जिज्ञासा राजन्।

अशोक : तुम्हारे माता पिता···।

बालपण्डित : ओह ··मैं समझ गया राजन्···मेरे पिता व्यापारी हैं और माँ गृहिणी। उन्होंने बौद्ध धर्म की शिक्षाओं से प्रभावित होकर न केवल इसे अपनाया वरन् इसके प्रचार के लिए 100 सहस्र मुद्राएँ दान में प्रदान की। बौद्ध धर्म के प्रचार की प्रेरणा उन्हीं से मुझे प्राप्त हुई है। जब मैं मात्र 4 वर्ष का था, तभी उन्होंने मुझे गुरु मोगलिपुत्त तिस्स की सेवा के लिए मुझे भी दान में दे दिया। गुरु जी की छत्रछाया मे पलकर जो ज्ञान मैंने अर्जित किया, अब उसी का प्रचार कर रहा हूँ।

अशोक : आश्चर्य है···100 सहस्र मुद्राएँ दान देने के बाद भी···।

बालपण्डित : राजन् यह सच है कि अब हमारे पिता के पास धन नहीं है, लेकिन इसका कोई दुःख उन्हें नहीं है। भगवान बुद्ध की शिक्षा के प्रताप से न ही अब धन पाने की लालसा है और न ही धन जाने का दुःख है। उन्हें अब पहले से ज्यादा शान्ति है। मेरे माता-पिता दोनो ही प्रेमपूर्ण शान्तिपूर्वक जीवन यापन कर रहे हैं।

अशोक : सच ही कह रहे हो भिक्षु। मेरे मन से भी माया मोह का पर्दा हटता जा रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों मन के अन्दर धर गया दुःखों का विशाल पहाड़ पिघलता जा रहा है। चारो ओर शान्ति ही शान्ति नजर आ रही है। अब मेरी भी यही इच्छा हो रही है कि मैं अपना सब कुछ भगवान बुद्ध की सेवा में अर्पित करके भिक्षु बनकर भगवान बुद्ध के उपदेशो का अनुसरण करते हुए जीवन यापन करूँ। बोलो बाल पण्डित क्या मैं भी भिक्षु बन सकता हूँ।

बालपण्डित : इस सम्बन्ध मे उचित परामर्श गुरु तिस्स ही दे सकते हैं।

अशोक : ठीक है, मैं उनसे मिलने के लिए उत्सुक हूँ। बोलो तुम्हारे इस उपकार के लिए क्या पुरस्कार दूं।

बालपण्डित : राजन् मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार यही होगा कि आप भगवान बुद्ध के उपदेशों का प्रचार अपने स्तर से करें।

अशोक : धन्य हं आप, जो इतनी अल्पायु में ही माया-मोह के जाल से मुक्त हो गए। मैं तो अभी तक इसी चक्कर में पड़ा रहा। ठीक है बाल पण्डित मैं तुम्हारी इस इच्छा की पूर्ति अवश्य करूँगा।

चतुर्थ दृश्य

[राजदरबार में सम्राट अशोक सिंहासनारूढ़ थे। उनके चेहरे पर विद्यमान गम्भीरता ने राजदरबार में उपस्थित पार्षदों एवं गणमान्य सदस्यों को चौंका-सा रखा है। वह किसी गहनतम सोच-विचार में डूबे हुए थे।]

विक्रम सिंह : महाराज हम लोग यह जानने को उत्सुक हैं कि ऐसी कौन-सी बात है, जिसके कारण महाराज के चेहरे पर मलिनता के बादल गहराते जा रहे हैं।

अशोक : विक्रम सिंह पता नहीं क्यों मेरा मन डूबता सा प्रतीत हो रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे मुझमें कोई बहुत बड़ा परिवर्तन हो रहा है। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ।

विक्रम सिंह : आप फिलहाल राजवैद्य से अपनी चिकित्सा करवाइएँ और आराम कीजिए।

अशोक : लेकिन जब मुझे कोई बीमारी हो तब न। मेरा मन अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति से गुजर रहा है। मेरा हृदय युद्ध से नफरत करता जा रहा है, बहते हुए रक्त बिन्दुओं को देखकर मन ममता से परिपूर्ण सा हो उठा है, आखिर ऐसा क्यों हो रहा है ?

विक्रम सिंह : इस सम्बन्ध में मैं राजवैद्य से जानकारी चाहूँगा।

राजवैद्य : मैंने महाराज का अच्छी तरह परीक्षण किया है। इन्हें कोई बीमारी नहीं है, जिसका आयुर्वेदिक दवाओं से इलाज किया जा सके। मेरे विचार से इनके अन्तर्मन पर कोई ऐसा आघात हुआ है, जिसके कारण इनका हृदय परिवर्तित हो रहा है। यह परिवर्तन किस रूप में होगा यह तो आने वाला समय ही बता सकता है।

विक्रम सिंह : महाराज मैं जानता हूँ कि कलिंग की रानी का बलिदान ही आपके दिल का सबसे बड़ा आघात है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उससे सुन्दर नारी आपके चरणों पर लाकर डाल दूँगा।

अशोक : सवाल कलिंग की स्वप्नसुन्दरी का नहीं है विक्रम। सवाल तो उन मासूम अबोध बालकों का है—सवाल उन पीड़ित माताओं का है जिन्होंने युद्ध की विभीषिका में अपनी गोद सूनी कर डाली है'''सवाल उन बहनों का है, जिन्होंने इस युद्ध में अपने भाइयों को खो दिया है'''और सवाल उन नव यौवनाओं का है, जिन्होंने अपने पति की अकाल मौत के साथ ही अपने को भी अग्नि देवता की शरण में अर्पित कर दिया है या फिर रो-रोकर एक ही शब्द कहती हैं—"सम्राट अशोक तेरा नाश हो।"

विक्रम सिंह : महाराज सवालों की शृंखला तो कभी खत्म होने की नहीं। आप एक शासक हैं अर्थात युद्ध के पुजारी। ऐसे युद्ध के पुजारी का इस तरह गमगीन होना

शोभा नही देता। यदि महाराज की इस कमजोरी का भान असम राज्य को हो गया तो वह इसका पूरा लाभ उठा सकता है।

अशोक : यही सोच-विचार कर मैंने यह निर्णय लिया है कि अब मुझे राजगद्दी को त्याग देना चाहिए।

विक्रम सिंह : यह आप क्या कह रहे हैं राजन्।

अशोक : मैं ठीक कह रहा हूं विक्रम। अब मुझे इस गद्दी से कोई मोह नही है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इस गद्दी से रक्तबीजों की उत्पत्ति हो रही है, ऐसे रक्त-बीज, जिनसे लहू की गंगा बह रही है। नही विक्रम अब मैं इस पद का भार वहन करने में अपने को असमर्थ पा रहा हूँ।

विक्रम सिंह : लेकिन महाराज ऐसी अवस्था में एक योग्य शासक का तलाशना संभव नहीं है।

अशोक : विक्रम यह कोई कठिन कार्य नहीं है। मुझे विश्वास है कि मेरा पुत्र महेन्द्र राजकाज को भली प्रकार सम्भाल सकने में समर्थ है। मैं शीघ्र ही उसे राजगद्दी का भार सौंपकर सन्यास ले लूंगा और इसके बाद एकान्तवास में रहकर अपने पापों का प्रायश्चित करूंगा।

विक्रम सिंह : लेकिन महाराज अभी महेन्द्र की उम्र ही क्या है।

अशोक : विक्रम राजा उम्र के आधार पर नहीं बल्कि अपनी बुद्धि के आधार पर होता है और यह बुद्धि उसके पार्षद और सेनापति होते हैं। तुम जैसे योग्य पार्षद और जयदत्त जैसे योग्य सेनापति के रहते महेन्द्र को कोई परेशानी हो ऐसी तो मैं कल्पना भी नही कर सकता।

विक्रम सिंह : राजन् यह आपकी महानता है जो हम लोगों को इस योग्य समझा है, अन्यथा हम जो कुछ बने हैं, वह सब आपकी बदौलत ही बने है।

अशोक : मेरी बदौलत नही विक्रम बल्कि अपनी योग्यता और साहस की बदौलत। हाँ मैं इतना अवश्य चाहता हूँ कि अब हमारे राज्य में खूनी होली न खेली जाए बल्कि ऐसी होली खेली जाए जिसमें आपसी प्रेम और बन्धुत्व की भावना का विकास हो। जनता मे भाईचारे की नीति को अपनाया जाए तथा जनता को पुत्रवत समझकर उसके सुख-दुःख में अपने को समर्पित कर दिया जाए। आम जनता की शिक्षा व्यवस्था एवं अन्य सुविधाएँ राज्य की ओर से निःशुल्क प्रदान की जाए। यह मेरी अन्तिम और आखिरी इच्छा है।

विक्रम सिंह : जैसी आज्ञा।

अशोक : हाँ एक बात और'''कल हमारे राज दरबार में गुरु महाराज तिस्स मोगलि-पुत्त पधार रहे हैं। वह बौद्ध धर्म के बहुत बड़े ज्ञाता है और मैं चाहता हूँ कि उनके आगमन के अवसर पर उनका भव्य स्वागत किया जाए। जगह-जगह पर भगवान बुद्ध के उपदेशों को लिखकर टाँगा जाए और उनके उपदेशों का प्रवचन

किया जाए। जगह-जगह गेरुए रंग की पताकाएँ फहराई जाएँ।

विक्रम सिंह : महाराज के आदेशों का पालन सुनिश्चित कर दिया जाएगा।

दृश्य परिवर्तन

[राजधानी पाटलीपुत्र को बड़े ही सुन्दर ढंग से सजाया गया था। जगह-जगह फूलों के स्वागत द्वार बनाए गए थे, जिन पर गेरुए रंग की पताकाएँ फहरा रही हैं। इन द्वारों पर भगवान बुद्ध के उपदेशों को सूचीबद्ध करके लगाया गया था, जिसे साधारण जनता पढ़ रही थी। इसके अतिरिक्त जगह-जगह बौद्ध भिक्षु भगवान बुद्ध के उपदेशों एवं उनकी शिक्षाओं का प्रवचन कर रहे थे। कहीं-कहीं गीतों व वाद्य संगीतों के स्वर गुंजरित हो रहे थे।]

दृश्य परिवर्तन

[राजधानी से बाहर दूर-दूर तक खुला मैदान पड़ा था। उसके एक ओर एक छोटी सी पगडंडी निकटवर्ती जंगल में जाकर समाप्त हो जाती थी। कुछ बौद्ध भिक्षुओं का दल उन जंगलों से बाहर आता हुआ दिखाई दे रहा था। भगवान बुद्ध के उपदेशों को गीतबद्ध करके एवं वाद्य यंत्रों की मधुर गुंजन के साथ यह दल शनैः शनैः पाटलीपुत्र की ओर बढ़ता जा रहा था। इस दल की अग्रपंक्ति में गुरु महाराज तिस्स मोगलिपुत्त मौजूद थे और उनके दाएँ-बाएँ दो बौद्ध भिक्षु हाथ में वीणा लिए हुए मधुर स्वर में बजा रहे थे। उनके पीछे लगभग 10 अन्य भिक्षु पंक्तिबद्ध होकर आगे बढ़ रहे थे।]

दृश्य परिवनर्त

[राजधानी के मुख्य द्वार के बाहरी प्रांगण में सम्राट अशोक एक सुन्दर से फूल से सजे रथ पर सवार थे। उन्होंने आज राजसी वस्त्र के स्थान पर गेरुए रंग के वस्त्र धारण कर रखे थे और कमर में तलवार के स्थान पर हाथ में फूलों की माला ले रखी थी। गले में कीमती रत्नजटित हार एवं मालाओं का स्थान आज रुद्राक्ष माला ने ले रखा था। जैसे ही गुरू मोगलिपुत्त रथ के निकट आए, सम्राट अशोक ने रथ से उतरकर उनके चरण स्पर्श करते हुए उनके गले में माला डालकर उनका अभिनन्दन किया। इसके बाद उन्होंने तिस्स मोगलिपुत्त को रथ पर बैठने का अनुरोध किया। उनके रथ पर बैठते ही रथ राजमहल की ओर तीव्र गति से भाग लेता है।]

दृश्य परिवर्तन

[राजमहल के एक विशेष रूप से सजाए गए कक्ष में सम्राट अशोक तिस्स

मोगलिपुत्त के साथ प्रविष्ट हुए। राजगद्दी के निकट पहुंचकर सम्राट अशोक खड़े हो गए।]

अशोक : विराजिए गुरु महाराज।

तिस्स : राजन् ! मुझ साधू सन्यासी का राजगद्दी से क्या वास्ता। मुझे तो बैठने के लिए शेर की खाल अथवा मृग चर्म ही काफी है। राजन् आप ही इस पर विराजिए।

अशोक : लेकिन गुरु महाराज अब इस गद्दी का मालिक कोई राजा नही बल्कि आप ही की तरह एक साधू है। कल का राजा आज साधू के रूप मे आपके सामने खड़ा है।

तिस्स : (हँसते हुए) राजन् अभी तो राजा ही है, इसलिए आप ही गद्दी की शोभा बढ़ाइए। जब कोई दूसरा राजा बन जाएगा तो···।

अशोक : लेकिन गुरु के समक्ष मैं राजगद्दी पर बैठूं यह···।

तिस्स : राजन् अभी न तो मैं गुरु हूँ और न ही आप शिष्य। अभी तो केवल यह मेरी औपचारिक भेंट है। यह सत्य है कि आप बौद्ध धर्म की नीतियों से प्रभावित हैं लेकिन अभी इस बात का निर्णय नहीं हुआ है कि आप उन नीतियों को अपनाने में कहाँ तक समर्थ हो सकेंगे। अतएव अभी से कोई रिश्ता स्थापित करना उचित नहीं है।

अशोक : जैसी आपकी इच्छा।

हृदय परिवर्तन

[राजमहल के विशेष कक्ष में सम्राट अशोक और गुरु मोगलिपुत्त तिस्स बैठे हुए आपस में विचार-विमर्श कर रहे थे।]

अशोक : गुरु महाराज इस कलिंग युद्ध के दर्दनाक अंत एवं करुण दृश्य के बाद से मेरे हृदय में परिवर्तन होना शुरू हुआ है। पहले तो मेरी इच्छा थी कि इस पाप से मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या कर लूं परन्तु इसी समय मुझे अपने बिछुड़े हुए भाई वीतशोक ने जो नई किरण प्रदान की है, उसी से मैं आपके दर्शनों के लिए लालायित हो उठा था। फिर भी मैंने निश्चय किया है कि अब इस राजगद्दी को त्याग कर अपना शेष जीवन भगवान बुद्ध के चरणों में अर्पित कर दूंगा।

तिस्स : विचार तो शुभ है राजन्, लेकिन यह संदेह की बात है कि एक क्रूर और लोभी शासक के रूप विख्यात विश्व विजेता बनने की लालसा रखने वाला राजा साधू बनकर अपना शेष जीवन भगवान बुद्ध की सेवा मे व्यतीत कर भी सकेगा अथवा नही।

अशोक : आप विश्वास कीजिए, मैंने ऐसा ही निश्चय कर लिया है और इस कार्य हेतु अपने पुत्र महेन्द्र को राजा बनाने की अनुमति भी अपने पार्षदो से प्राप्त कर ली है।

तिस्स : (कुछ देर तक वह सम्राट अशोक की आँखों में कुछ पढ़ते रहे)—राजन् आपकी आँखों से तो यही विदित हो रहा है कि आपने दृढ़ निश्चय किया है, लेकिन मुझे सन्देह है कि आपने जो धारणा बनायी है, वह आपके लिए लाभकारी सिद्ध होगी अथवा हानिकारक।

अशोक : मैं आपका मतलब नहीं समझा।

तिस्स : राजन् मतलब साफ है। एक राजा साधू नहीं बन सकता और न ही एक-एक साधू राजगद्दी का भार सम्हाल सकता है। साधू का जीवन बड़ा ही विकट और कष्टकारी होता है। मुझे तो सन्देह है कि कहीं आप न तो शासक ही रहें और न ही साधू बन पाए। यह भी हो सकता है कि...।

अशोक : आप सम्पूर्ण स्थिति स्पष्ट कर दें तो समीचीन होगा।

तिस्स : राजन् साधू बनने के लिए साधना चाहिए, नंगी जमीन चाहिए और भोजन के रूप में भिक्षा और फलादि चाहिए। स्पष्ट है कि एक शासक कभी भी न तो नंगी जमीन पर सो सकता है और न ही भिक्षा माँगकर पेट भर सकता है।

अशोक : आपके दृष्टिकोण में मैं साधू नहीं बन सकता।

तिस्स : हाँ...एक कारण इसका और भी है। आप एक उग्र स्वभाव के क्रोधी शासक रह चुके हैं। इसके विपरीत साधू नम्र स्वभाव का होता है। तमाम वैदिक ग्रंथों एवं पुराणों का ज्ञाता होता है। समाज सेवा ही उसका सर्वप्रथम धर्म होता है। समाज को शिक्षित करके उसके रोग का निवारण करना ही एक साधू का जीवन लक्ष्य होता है।

अशोक : लेकिन मेरी जानकारी के अनुसार भगवान बुद्ध भी तो क्षत्रिय थे और राजकुमार थे। फिर उन्होंने कैसे साधू के रूप में अपना जीवन व्यतीत किया।

तिस्स : आपकी जिज्ञासा उचित है राजन्। जिस समय भगवान बुद्ध अल्पायु के थे, वह मानव दुःख के कारणों को जानने व उनके दूर करने के उपाय के सम्बन्ध में सोचा करते थे। किसी दुर्बल को देखकर उनका हृदय तड़प उठता था तो किसी रोगी को देखकर उनका मन व्यथित हो उठता था। किसी मृत व्यक्ति को देखकर उनका मन करुणा से चीत्कार कर उठता था कि आखिर इन्सान इतने दुःख क्यों पाता है और इनके निवारण के उपाय क्या हैं। यही कारण था कि वह इन विचारधाराओं में डूबे रहते थे और राजकाज में रुचि नहीं लेते थे। प्रायः एकान्त में रहकर इन्हीं विषयों पर चिन्तन मनन किया करते थे। उनके पिता ने इसी कारण उनका विवाह भी कर दिया और कुछ ही समय बाद वह एक बालक पिता भी बन गए परन्तु इसके बावजूद समस्त माया मोह से मुक्त होकर एकान्तवास में चले गए। राजन्, किसी को भी यह पता ही नहीं चला कि वह कहाँ गए और किस स्थिति में रहे। वर्षों तक वह बिना अन्न जल के साधना करते रहे तब कहीं उन्हें इस समस्या के समाधान के रूप में निर्वाण प्राप्त हुआ। राजन् यदि वह राजगद्दी ग्रहण करने के

बाद जाते तो शायद वह कभी भगवान का दर्जा न प्राप्त कर पाते। यदि वह सबकी जानकारी में जाते तो उनके शत्रु इसका पूरा फायदा उठाते और सम्भव था कि वह उन्हें बहुत पहले ही समाप्त कर देते।

अशोक : ओह।

तिस्स : राजन्, आप एक राजा हैं और निश्चय ही आपके हजारों शत्रु होंगे। जब उन्हें इस बात की जानकारी मिलेगी कि सम्राट अशोक साधू हो गया है तो वह आपके राज्य में विद्रोह भड़काने का प्रयास करेंगे। इसके साथ ही मौका पाते ही आपको भी समाप्त कर देंगे। अतः इस दृष्टि से भी आपका साधू बन सकना नितान्त असम्भव है और इस अवस्था में जिस उद्देश्य से आप साधू बनना चाहते हैं, वह भी पूर्ण नहीं हो सकेगा।

अशोक : यह बात सत्य है कि हमारे शत्रुओं की कमी नहीं है। लेकिन यह भी सत्य है कि मैं इस गद्दी को अपनाना नहीं चाहता। चूँकि मैं साधू बन नहीं सकता अतः एक मार्ग ही शेष बचता है और वह है आत्महत्या।

तिस्स : राजन् आत्महत्या करना सबसे बड़ा पाप है। यदि आप आत्महत्या करना ही चाहते हैं तो इसके कारणों पर भी विचार करना जरूरी होगा। एक तो इसका फायदा आपके विपक्षी उठाएँगे और उन्हें यह कहने का मौका मिल जाएगा कि सम्राट अशोक पागल हो गया था, अतः उसके पुत्रों ने राजगद्दी के लोभ में उसकी हत्या कर दी। दूसरे राजगद्दी पाने के लिए आपके पुत्रों में होड़ लगेगी और पुनः वही कत्लेआम शुरू होगा जो आप कर चुके हैं। तीसरा यह है कि जिस उद्देश्य से आप आत्महत्या करना चाहते है, वह आपको मृत्योपरान्त भी नहीं मिल सकेगा। केवल आपकी आत्मा कलिंग राजमहल के इर्द-गिर्द मंडराती रहेगी और उस स्थिति में आपको मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकेगा।

अशोक : उफ। मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता क्या करूँ।

तिस्स : राजन् आपके हृदय में कलिंग की महारानी के लिए जो स्थान है, उससे मैं परिचित हूँ और यही आपके दुःख का मूल कारण है। जैसाकि आप स्वयं कहते हैं, वह आपसे नफरत करती थी और इसीलिए उसने अपने को अग्नि देव को समर्पित कर दिया। राजन् मेरे विचार में तो रानी पद्मावती का यह बलिदान निरर्थक नहीं जाना चाहिए और आपको कुछ बनाने में सहायक होना चाहिए।

अशोक : नहीं गुरु महाराज अब मैं कुछ नहीं बनना चाहता। मैं केवल कलिंग की महारानी के पास जाना चाहता हूँ उससे माफी माँगने के लिए…।

तिस्स : राजन् मृतात्मा के पास जाना कदापि सम्भव नहीं है। यदि महारानी से तुम्हें इतना ही लगाव है तो उसका प्रायश्चित तुम्हें इसी जन्म में करना होगा।

अशोक : वही तो मैं जानना चाहता हूँ। साधू बनना सम्भव नहीं, आत्महत्या करना पाप

है, राजगद्दी पर बैठना अभिशाप है, फिर आप ही बताइए किस प्रकार प्रायश्चित करूँ।

तिस्स : (मुस्कराते हुए) राजन् बहुत से माध्यम हैं। परम पिता परमेश्वर ने यदि पाप का माध्यम बनाया है तो उससे मुक्ति का रास्ता भी बताया है। भगवान बुद्ध ने भी इसी समस्या के निदान पर अपना सम्पूर्ण जीवन बिता दिया और अन्ततः उन्होंने वह मार्ग तलाश ही लिया जिसे मध्यम मार्ग कहा जाता है। इस मार्ग को अपनाने के बाद काम, क्रोध व दुःख का विनाश हो जाता है और मानव देवतुल्य बन जाता है।

अशोक : इस बात का उल्लेख बाल पण्डित ने भी किया था, परन्तु उन उपदेशों को सुनकर भी अपने मन को मायाजाल से मुक्त नही कर पा रहा हूँ।

तिस्स : केवल उपदेश सुनने से ही दुःख का निवारण नही हो जाता बल्कि इनको यथार्थ जीवन मे उतारना एवं उनका पालन करना पड़ता है।

अशोक : इसीलिए तो मैंने साधू बनने की जिज्ञासा व्यक्त की थी। इससे न दुःख का कारण रहेगा और न ही दुःख। लेकिन आपके अनुसार यह भी सम्भव नही है। एक दूसरा मार्ग आत्महत्या है, उसे भी आप स्वीकार नही कर रहे है।

तिस्स : राजन् इसके अतिरिक्त एक अन्य मार्ग भी है, जिसे आप पूर्ण करने मे सक्षम है तथा इस मार्ग में आप भगवान बुद्ध की सेवा भी ज्यादा कर सकते हैं।

अशोक : बताइए गुरु महाराज, मैं जानने को उत्सुक हूँ।

तिस्स : राजन् इस तीसरे मार्ग के अन्तर्गत आपको राजगद्दी पर अपना अधिकार बरकरार रखना है। दूसरा यह कि पूरे देश में खून की होली खेलना, युद्ध करना आदि बन्द करवा दें।

अशोक : इसे तो पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ तथा आदेश भी दे दिया है।

तिस्स : अतिशुभ। चूंकि आप पूरे देश में एक क्रूर और लोभी शासक के रूप मे विख्यात हैं और जनता मे आपके प्रति अविश्वास, भय एवं उत्तेजना की भावना व्याप्त है। अतः आप जनहित के ऐसे काम करें, जिससे जनता में आपकी छवि उत्तम हो तथा वे अपने दुःख दर्द को आप तक पहुँचाने में सक्षम हों।

अशोक : आपके परामर्शानुसार आज ही आदेश दे दूँगा।

तिस्स : इसके साथ ही आप जनकार्यों को करने का बीड़ा उठा लें। इस हेतु जगह-जगह धर्मशालाएँ, चिकित्सालय, वाचनालय, विद्यालय, गौशालाएँ, आदि बनवाएँ, जिससे आने जाने वाले यात्रियों को सुविधा हो एवं शिक्षा के प्रसार के साथ भगवान बुद्ध की शिक्षाओं एवं उपदेशों का प्रसार हो। इसके साथ ही जगह-जगह छायादार वृक्षों, फलदार वृक्षों आदि का युद्धस्तर पर आरोपण करवाएँ। इसके साथ ही जनता को इस बात का पूर्ण अवसर दें कि वह आपसे किसी भी समय निःसंकोच मिलकर अपने दुःख दर्द को आप तक पहुँचा सके।

अशोक : ऐसा ही होगा।

तिस्स : सबसे अहम कार्य अपने अन्दर विद्यमान काम, क्रोध एवं [illegible] मोह को पूर्णतया नष्ट कर दें। उत्तम तो यह होगा कि यदि आप यह समझें [illegible] कलिंग की चिता में ही आपकी वह भावनाएँ जलकर राख हो चुकी है। विशेष रूप से कलिंग की जनता को पुत्रवत प्यार देकर उसके मन में व्याप्त भय, क्रोध एवं आवेश पर विजय प्राप्त करें। यही सही रूप में कलिंग की विजय होगी। इसके साथ ही तीर्थस्थलो के निर्माण एव उनके पुनरुद्धार के कार्य मे विशेष रुचि लें।

अशोक : इस सम्बन्ध में भी आपके परामर्श के अनुसार आदेश प्रसारित कर दूंगा।

तिस्स : अब यदि आपके हृदय में भगवान बुद्ध के प्रति प्रेम, आदर व श्रद्धा है तो आप भगवान बुद्ध के उपदेशों का प्रचार राजकीय स्तर से करवाएँ। यदि आपका राजकोष सक्षम हो तो आप देश-विदेश में बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ ही 84000 स्तूपों का निर्माण करवाएँ। इसके अतिरिक्त भगवान बुद्ध के उपदेशों को जगह-जगह चिह्नित करवाकर शिलालेखो के रूप में स्थापित करवाने का कष्ट करें।

अशोक : मैं इस सम्बन्ध मे शीघ्र ही उचित कार्यवाही करने का पूरा आश्वासन देता हूँ।

तिस्स : मैं एक बात को विनय के रूप मे स्पष्ट करना चाहता हूँ। जैसाकि आपको भी विदित है कि तीर्थ स्थलों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। विशेष रूप से बौद्ध गया के विकास एवं पुनरुद्धार पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में यदि राजकोष से उचित दान दे दें तो ज्यादा उपयुक्त होगा।

अशोक : कितना दान देना होगा।

तिस्स : इसका मूल्यांकन तो आपको ही करना है।

अशोक : तथास्तु।

[इसी समय कक्ष में एक सैनिक प्रवेश करता है।]

सैनिक : महाराज उप सेनापति वीरगुप्त जी आपसे मिलना चाहते हैं।

अशोक : ठीक है, उन्हें भेज दो।

[वीरगुप्त प्रवेश करता है और सम्राट अशोक के समक्ष अभिवादनोपरांत खड़ा हो जाता है।]

अशोक : क्या कोई विशेष खबर है ?

वीरगुप्त : महाराजाधिराज पाटलीपुत्र में कुछ उग्रवादी लोगो ने विद्रोह की स्थिति पैदा कर दी है, जगह-जगह सभाएँ करके उत्तेजक भाषण दिए जा रहे हैं, स्थिति किसी भी समय विस्फोटक हो सकती है। आपके आदेश को ध्यान में रखते हुए अभी तक हम लोगों ने किसी प्रकार की कार्यवाही नहीं की है।

अशोक : आश्चर्य है, राजधानी में विद्रोह।

तिस्स : ऐसा प्रतीत होता है कि आपके शत्रुओं को इस बात की जानकारी प्राप्त हो गयी है कि आप राजगद्दी छोडने जा रहे है।

अशोक : लेकिन अभी गद्दी छोड़ी तो नहीं है। हां आप ही बताइए कि जब मैंने भगवान बुद्ध के अहिंसा का व्रत ले रखा है तो फिर कैसे विद्रोह को रोका जाए।

[अशोक की बात सुनकर तिस्स हँस पड़े और कुछ देर तक हँसते रहे।]

तिस्स : राजन् आपने अहिंसा पालन का व्रत लिया है। लेकिन ऐसे भी उपाय है जिससे आप शत्रुओं को नाको चने चबवा सकते हैं।

अशोक : आप ही बताएँ, मुझे क्या करना चाहिए।

तिस्स : राजन् मैं आपको इसी क्रम में एक कहानी सुनाता हूँ :

एक जंगल में एक साधू था। उसने भगवान बुद्ध के उपदेश का पालन करते अहिंसा का व्रत ले रखा था। जिस पेड़ के नीचे वह साधना करता था, उसी पेड़ पर एक सांप रहता था। जब साधू साधना में लीन हो जाता तो सांप उसे काट लेता था जिससे साधू की साधना भग हो जाती थी। बार-बार उपचार करने के बावजूद उसकी हालत मृतप्राय हो गयी। एक दिन भगवान बुद्ध जब उधर से गुजरे तो साधू ने अपनी समस्या बतायी। इस पर भगवान बुद्ध कहा—"मैंने जीव को मारना पाप बताया है न कि उसको डराने को। यदि सांप को आते हुए या जाते हुए आप देखते हैं तो उसे मारें नही बल्कि लाठी की ठक ठक करके उसे भगा दें। दो तीन बार ऐसा करोगे तो वह सांप डरकर भाग जाएगा और फिर कभी नहीं आएगा।' इसके बाद साधू ने वैसा ही किया। इससे न तो उसको हत्या का पाप मोल लेना पड़ा और न ही दुबारा सांप उसके निकट आया।

अशोक : ओह समझ गया गुरु महाराज। हां सुनो वीरगुप्त तुम सैनिकों की टुकड़ियो को जगह-जगह तैनात कर दो तथा विद्रोहियों के नेताओं को गिरफ्तार करके कारागार में डाल दो।

वीरगुप्त : जैसी आज्ञा सम्राट।

दृश्य परिवर्तन

[राजदरबार में पार्षदगण एवं अन्य सम्मानित सदस्यगण मौजूद हैं। इसी समय सम्राट अशोक सभाकक्ष मे प्रवेश करते हुए और चलते हुए सीधे राजसिंहासन पर जा बैठे। राजदरबार मे पूर्ण सन्नाटा छाया हुआ था। कुछ ही देर में सेनापति जयदत्त कुछ बन्दियों को लेकर राजदरबार मे प्रवेश करते हैं।]

सेनापति : महाराजाधिराज की जय'''महाराज के आदेशों को ध्यान में रखते हुए बिना किसी प्रकार का रक्तपात किए हुए पाटलीपुत्र के विद्रोह को शान्त कर दिया

गया है तथा इन लोगों को गिरफ्तार किया गया है। यह इस विद्रोह के संचालक अमरजीत हैं। इन्होंने ही विद्रोह को फैलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

अशोक : क्यों अमरजीत सेनापति का आरोप क्या सही है।

अमरजीत : जी हाँ।

अशोक : क्या तुम इनके परिणाम से परिचित नहीं थे ?

अमरजीत : जी हाँ परिचित था। लेकिन राजन् मौत का भय दिखाकर हमारी जनता के उद्देश्य का समाधान नहीं किया जा सकता। वैसे भी इस कार्य में कूदने के बाद हम लोगों को मौत का कोई भय नहीं रह गया है।

अशोक : आश्चर्य है ''लेकिन तुम्हारा और तुम्हारी जनता का उद्देश्य क्या है।

अमरजीत : राजन् हमें अपने क्रूर शासक और उनके क्रूर सैनिकों की क्रूरता के कारण यह रास्ता अख्तियार करना पड़ा है। जनता के प्रति हो रहे अन्याय को समाप्त करना मेरा परम् कर्त्तव्य है, बहू बेटियों की इज्जत बचाना ही हमारा परम धर्म है।

अशोक : तो इसका मतलब यह है कि तुम्हें जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त होगा।

अमरजीत : निश्चय ही जनता ने मुझे इसीलिए अपना नेता चुना है और जब तक इस पद पर रहूँगा अथवा जीवित रहूँगा, तब तक इस विद्रोह की आग को शान्त करना नामुमकिन है। मुझे विश्वास है कि यदि मुझे फाँसी हो भी जाती है, तो मेरा स्थान कोई दूसरा अमरजीत लेगा। हाँ मैं इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि जनता आपकी प्रजा है और प्रजा के सुख-दुःख का मूल्यांकन करना ही राजा का कर्त्तव्य होता है, यदि राजा का यह कर्त्तव्य न होता तो हमारा मानव समाज कभी भी विकसित नहीं होता और आज भी हम लोग जानवरों की तरह ही अपना जीवन निर्वाह कर रहे होते।

अशोक : बहुत खूब अमरजीत। हम तुम्हारी बातों से प्रसन्न हैं और तुम्हें यह सूचित करना चाहता हूँ कि मैंने पहले ही घोषणा कर दी है कि हमारे देश की सम्पूर्ण जनता पुत्रवत है और अब उस पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया जाएगा। साथ ही यह भी आदेश दे दिया है कि यदि कोई सैनिक अथवा कर्मचारी जनता के साथ, उनकी बहू-बेटियों के साथ कोई अश्लील, आपत्तिजनक कार्य करते हुए पाया जाता है तो उसे तत्काल फाँसी पर लटका दिया जाए।

अमरजीत : आश्चर्य है राजन् ! मुझे तो विश्वास नहीं होता।

अशोक : विश्वास करना ही पड़ेगा अमरजीत। पहले वाला अशोक मर चुका है और अब जो अशोक तुम्हारे सामने खड़ा है वह दूसरा है।

[अशोक की बात सुनकर अमरजीत व उसके साथी सम्राट अशोक की जय-जयकार करने लगते हैं।]

अशोक : मैं अपने देश की सम्पूर्ण जनता को विश्वास दिलाता हूँ कि अब उनके साथ कोई अत्याचार न होगा और उन्हें जीने का समान हक मिलेगा। हमारे वीर सैनिकों की योग्ता की कहानी जग जाहिर है किन अब जो जनसेवा का व्रत लिया गया है, उसके लिए उन्हें युद्धस्तर पर काम करके जनता का विश्वास प्राप्त करना होगा। मुझे विश्वास है कि सेनापति, पार्षदगण एवं सैनिक मेरे उद्देश्यों की पूर्ति युद्धस्तर पर करेंगे।

सेनापति : महाराज आपके आदेश का पालन करने का पूरा प्रयास किया जाएगा।

अशोक : सेनापति, सबसे पहला कार्य तो यह करना है कि अब जनता के प्रति कोई अन्याय न होने पाए। रणयुद्ध के स्थान पर जनसेवा का कार्य युद्धस्तर पर किया जाए। इसके लिए जगह-जगह धर्मशालाएँ, वाचनालय, गोशाला, विद्यालय, चिकित्सालय आदि का निर्माण युद्धस्तर पर कराया जाए। इसके साथ छायादार एवं फलदार वृक्षों का आरोपण करके उनकी देखरेख के लिए कर्मचारियों की नियुक्ति की जाए। जहाँ सूखा, अतिवृष्टि एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त क्षेत्र हैं, वहाँ की कर वसूली स्थगित कर दी जाए तथा जनता को इस बात का पूरा अवसर प्रदान किया जाए कि वह अपनी बात हम तक पहुँचा सके।

[सम्राट अशोक के इस निर्णय को सुनकर सभा कक्ष में पुनः जय-जयकार के स्वर गूँज उठे।]

अशोक : सेनापति, जैसा कि तुम्हें विदित है कि मैंने भगवान बुद्ध की दासता को स्वीकार कर लिया है। इस हेतु भी तुम्हें युद्धस्तर पर कार्य करना है। सर्वप्रथम इसके लिए 84000 स्तूपों का निर्माण देश के विभिन्न भागों में कराना हमारा प्रमुख लक्ष्य है। इसके अतिरिक्त जगह-जगह, पहाड़ों, पठारों, पत्थरों एवं अन्य जगहों पर भगवान बुद्ध के उपदेशों को खुदवाया जाए, जिससे भगवान बुद्ध के उपदेशों का अधिक-से-अधिक प्रचार किया जा सके। इस कार्य में तुम्हे मेरे अन्य पार्षदगण पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे।

सेनापति : आपके आदेश का पालन युद्धस्तर पर किया जाएगा।

अशोक : अमरजीत, क्या मैं अब आशा करूँ कि तुम विद्रोही कार्य करना बन्द कर दोगे।

अमरजीत : महाराज, अब तो आपके लिए सब कुछ बन्द कर सकता हूँ। यदि किसी शुभ कार्य के लिए मेरी जान भी जाती है, तो मुझे खुशी होगी।

अशोक : नहीं अमरजीत, जान देने की आवश्यकता नहीं है। मैं चाहता हूँ कि तुम अपने नेतृत्व में शिक्षा-दीक्षा का कार्य शुरू कर दो।

अमरजीत : यह तो मेरे लिए खुशी की बात है। मैं निश्चय ही इसे पूर्ण करूँगा।

अशोक : इस कार्य के लिए जो धन की आवश्यकता पड़, उसे तुम राजकोष मे ले सकते हो।

अमरजीत : राजन्, समस्त व्यय भार मैं एवं जनता ही वहन करेंगे। आपके आशिर्वाद से धन दौलत की कमी नहीं है।

[इसके बाद अपने पुत्र महेन्द्र व पुत्री संघमित्रा की ओर देखते हुए]

अशोक : बेटे तुम लोगों को कुछ कार्य सौंपना चाहता हूँ।

महेन्द्र : आज्ञा कीजिए पिताश्री।

अशोक : बेटे याद है तुम्हें, राजा दशरथ ने कैकेयी के कारण राम को 14 वर्ष का वनवास दिया था।

महेन्द्र : जी हां पिताश्री।

अशोक : बेटे, यहाँ कोई कैकेयी नही है, लेकिन मुझे मेरे द्वारा किए गए पापों का प्रायश्चित ही मेरे लिए कैकेयी है। मैं चाहता हूँ कि तुम और संघमित्रा श्रीलंका व चीन चले जाओ तथा वहाँ भगवान बुद्ध के उपदेशों का प्रचार करो। जगह-जगह शिलालेखो पर भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को खुदवाकर आने-जाने वाले मार्गों पर लगवाओ, जिससे जनसाधारण में इसका प्रचार हो सके।

महेन्द्र : पिताश्री, मुझे इस शुभ कार्य को करने में खुशी होगी।

अशोक : बेटे, मुझे यही आशा थी कि तुम मेरे पापो के प्रायश्चित में अपना योगदान अवश्य दोगे।

महेन्द्र : योगदान नही पिताश्री यदि आवश्यकता पड़ी तो जान भी दे सकता हूँ।

अशोक : बेटी सघमित्रा, तुम्हें कोई आपत्ति है।

संघमित्रा : नही पिताश्री, मुझे तो खुशी है कि आपने नारी को इस योग्य तो समझा।

अशोक : बेटी, नारी छोटी कब हुई है, यह तो समाज के उन ढोंगी विद्वानों की कल्पना है, जिन्होंने नारी को अपने स्वार्थ के लिए छोटी बना दिया, अन्यथा नारी में तो पुरुष से ज्यादा शक्ति होती है, फिर पुरुष की जननी भी तो नारी ही है।

संघमित्रा : पिताश्री, हम लोगों को कब जाना होगा।

अशोक : बेटी मन में छिपी ममता इस कार्य की आज्ञा नहीं दे रहे हैं कि अपनी मासूम बेटी को इतने जोखिम भरे एवं जटिल कार्य पर भेजूं परन्तु मन में छिपी कैकेयी रूपी पापिष्ठा मुझे उद्यत कर रही है कि तुम दोनों को वनवास दूं।

संघमित्रा : पिताश्री, इतनी दुर्बलता ठीक नही है। जो शुभ कार्य हाथ में लिया है, उसके लिए त्याग करना ही होगा। त्याग में ममता आदि का कोई महत्त्व नही होता पिताश्री।

अशोक : तुम ठीक ही कह रही हो। तुम दोनों कल प्रातः सूर्योदय होने के पूर्व ही रवाना हो जाओ। सेनापति तुम्हारी यात्रा का यथोचित प्रबन्ध कर देंगे।

दृश्य परिवर्तन

[सम्राट अशोक अपने कक्ष में बैठे हुए थे। रह-रहकर सामने टंगे तैल चित्र को देखकर उनके चेहरे पर गम्भीरता का आवरण छाता चला गया। यह तैल चित्र कलिंग साम्राज्ञी पद्मिनी का था।]

अशोक : कलिंग साम्राज्ञी तुम्हारे त्याग का प्रायश्चित्त मुझे कब तक करना होगा। क्या मुझे मेरे द्वारा किए गए पापों से मुक्ति मिलेगी भी या नहीं।

[एकाएक तैल चित्र साकार हो उठता है]

तस्वीर : सम्राट, हर पाप का प्रायश्चित्त है। मुझे मालूम है कि मुझे खोकर तुमने जो दुःख पाया है, उसके कारण ही तुम्हारे मन में बसी राक्षसी प्रवृत्ति का अन्त हो सका है।

अशोक : लेकिन तुमने मुझे अभी तक माफ नहीं किया है।

तस्वीर : राजन्, मैं तो कभी माफ नहीं कर सकती। तुमने एक पतिव्रता नारी पर कुदृष्टि डाली थी। यह तो अच्छा हुआ जो तुम्हारी राक्षसी नीतियों का अन्त हो गया अन्यथा सम्राट तेरा जीवन बड़ा ही कष्टमय होता, ऐसा जीवन जिससे तेरे परिवार के सदस्य ही तुमसे नफरत करने लगते।

अशोक : काश मैं आत्महत्या कर लेता तो शायद तुम्हारे पास पहुँच जाता।

तस्वीर : भ्रम है राजन् ! मृत्यु के बाद तुम्हें घोर नर्क का दण्ड मिलता और उस नर्क से निकलकर मेरे पास पहुँचना तुम्हारे लिए सम्भव नहीं था।

अशोक : देखो साम्राज्ञी, अब तुम इस दुनिया में तो हो नहीं और न ही अब तुम्हारे प्रति मेरे मन में कोई कुविचार है। कम-से-कम अब तो तुम्हें माफ कर देना चाहिए।

तस्वीर : मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि मैं तुम्हें कभी माफ नहीं करूँगी। तुम्हें माफी कलिंग की मासूम जनता से माँगनी चाहिए जो आज भी युद्ध की विभीषिका का प्रायश्चित्त कर रही है।

अशोक : मैं समझा नहीं साम्राज्ञी। मैंने तो वहाँ की जनता की सुख-सुविधा का पूरा प्रबन्ध कर दिया है।

तस्वीर : सुख-सुविधा की व्यवस्था तो कर दी है लेकिन उस युद्ध की सड़ांध से उपजी महामारी के रोकथाम की कोई व्यवस्था अभी तक नहीं की है। तुम तो यहाँ बैठे हो जबकि वहाँ की जनता महामारी की शिकार हो रही है। अब तक लगभग 70000 लोग महामारी के शिकार हो चुके हैं।

अशोक : ओह···लेकिन मुझे इस बात की कोई जानकारी नही है।

तस्वीर : इसकी जानकारी आप तक पहुँचने वाली है राजन् ! वहाँ से दूत चल चुका है।

अशोक : आश्चर्य है···तुम तो मर चुकी हो फिर सूचनाएँ···।

तस्वीर : यह सत्य है लेकिन मैं अपनी जनता का मोह त्याग न सकी। मेरे आत्मा कलिंग की जनता के आस-पास ही मण्डरा रही है और तब तक मण्डराती रहेगी जब तक वहाँ की जनता सकुशल व सानन्द नही हो जाती है।

अशोक : ओह···वहाँ की जनता को अनावश्यक रूप से हुई परेशानी के लिए मुझे खेद है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि वहाँ से महामारी का प्रकोप दूर करने के लिए मैं अपनी पूरी सेना को लगा दूंगा।

तस्वीर : राजन्, महामारी तलवार से दूर नही की जा सकती। उसके लिए सैनिक नही बल्कि वैद्यों की सेना चाहिए, जो युद्धस्तर पर इसका निराकरण कर सके।

अशोक : हाँ···हाँ···मैं भी यही कह रहा था।

तस्वीर : मैं तुम्हे विश्वास दिलाती हूँ सम्राट, जिस दिन कलिंग की जनता सुख समृद्ध व स्वस्थ हो जावेगी और जनता अपने स्वच्छ मन से तुम्हें स्वीकार कर लेगी, उसी दिन मैं तुम्हे माफ कर दूंगी।

अशोक : मैं इस बात का पूरा प्रयास करूंगा।

[इसी समय एक सैनिक कक्ष में प्रवेश करता है।]

सैनिक : महाराज, पार्षद ब्रह्मदेव सिंह आपसे तुरन्त मिलना चाहते है।

अशोक : उन्हें यहीं भेज दो।

[पार्षद ब्रह्मदेव ने कुछ ही देर में कक्ष में प्रवेश किया और सम्राट अशोक का अभिवादन करते हुए एक ओर खड़ा हो गया।

अशोक : ब्रह्मदेव मुझे अत्यन्त अफसोस है कि कलिंग की भयंकर महामारी की सूचना तुमने अभी तक मुझे उपलब्ध नहीं करायी है।

ब्रह्मदेव : महाराज, मुझे भी अभी ही दूत से जानकारी मिली है। उसने बताया कि अभी तक वह लोग प्रयत्नशील थे कि किसी तरह महामारी को समाप्त किया जा सके परन्तु जब कोई फल न निकला तो हमे सूचना भेजी गई है, जिससे वहाँ उचित सहायता पहुँचायी जा सके।

अशोक : ब्रह्मदेव यह बहुत गलत बात है। मुझे जनता की असुविधा की छोटी-से-छोटी सूचना भी तुरन्त मिलनी चाहिए।

ब्रह्मदेव : जैसी आज्ञा।

अशोक : इस समय कलिंग की क्या स्थिति है ?

ब्रह्मदेव : दूत ने अवगत कराया है कि वहाँ हैजा, कालरा, चेचक आदि जैसी महामारी तीव्र गति से फैल रही है। प्राप्त सूचना के अनुसार अब तक 70 हजार व्यक्ति अकाल मौत के शिकार हो चुके हैं।

अशोक : हाँ, मुझे भी यही सूचना मिली है। ब्रह्मदेव यदि यही स्थिति रही तो कलिंग

कंकालों का देश बनकर रह जाएगी। क्या मैं इन कंकालों पर शासन करूँगा। उफ मेरी तो कुछ समझ में नही आता कि क्या करूँ।

ब्रह्मदेव : राजन्, मैंने निश्चय किया है कि इसी समय विद्वान एवं योग्य वैद्यों का दल वहाँ भेज दूँ जो इन महामारियो पर नियंत्रण प्राप्त कर सकें।

अशोक : इसमें किसी प्रकार की देरी नहीं होनी चाहिए। ब्रह्मदेव हमें किसी भी स्थिति मे इन मौतों को तत्काल रोकना है। अभी तक हम लोगो ने मरते-तड़फते लोगों को देखा है और उन पर ठहाके लगाए हैं परन्तु अब ऐसा नही होना चाहिए। अब मरते एवं तड़फते लोगों को जीवन देना मेरा प्रमुख लक्ष्य है।

ब्रह्मदेव : महाराज प्रयास करना हमारा काम है लेकिन मौत पर विजय पाना'''।

अशोक : क्यों'''जब हम मौत दे सकते थे तो क्या अब जीवन-दान नही दे सकते। ब्रह्मदेव हर स्थिति में मुझे मौत पर विजय प्राप्त करनी ही होगी चाहे इसके लिए कुछ भी क्यो न करना पड़े।

ब्रह्मदेव : क्षमा करें महाराज, ऐसा कदापि सम्भव नही है।

अशोक : लेकिन इसे सम्भव करना होगा ब्रह्मदेव। अब तो भगवान बुद्ध हमारे साथ हैं'''उनका आशीर्वाद मेरे साथ है तब क्यों नही हम मौत पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। मुझे विश्वास है शीघ्र ही कलिंग की मरती जनता को जीवन दान प्राप्त होगा।

ब्रह्मदेव : ईश्वर करे ऐसा ही हो।

अशोक : जाओ और देश के मशहूर एवं अनुभवी वैद्यो के दल को कलिंग की ओर रवाना कर दो। उनसे यह कह दिया जाए कि उन्हें हर हालत में कलिंग की जनता को स्वस्थ करना है, भले ही इसके लिए चाहे कितना ही धन क्यों न खर्च हो जाए।

ब्रह्मदेव : महाराज मैंने पाटलीपुत्र के मशहूर व योग्य वैद्यों को बुलवा भेजा है। फिलहाल पाटलीपुत्र के योग्य एवं अनुभवी वैद्यों को कलिंग के लिए रवाना किए दे रहे हैं। शेष वैद्यों को हाजिर होने के लिए आदेश भेजे जा रहे हैं।

अशोक : ठीक है, लेकिन यह कार्य अतिशीघ्र होना चाहिए।

पाँचवाँ दृश्य

[हिमालय की तलहटी के बियावान जंगल मे एक कुटिया बनी हुई थी। उस कुटिया को चारों ओर बाँसों से घेरा बना दिया गया था, जिससे जंगली जानवर अन्दर न आ सकें। जगह-जगह क्यारियों मे सुन्दर फूलों से सुसज्जित पौधे लहलहा

रहे थे। कुटिया के एक ओर कुछ गाय और भैंसे बंधी हुई थी जिसे कामिनी नाम की एक मोटी औरत चारा पानी दे रही थी। इस कुटिया के बाहर एक छप्पर पड़ा था, जिसके नीचे 8-9 साधू बैठे हुए थे। सभी साधुओं के हाथ में चिलम थी और चिलमों से रह-रहकर वे लोग गहरे कश ले रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वे सभी किसी गहरे सोच-विचार में मग्न हों। एकाएक अभिलाष ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा—अरे अब तो घोर कलिजुग आ गयो भाई। देखो न सम्राट कैसा दान दे रहे हैं।]

ब्रह्मचारी : अरे यह छोड़ो भाइ साधु'''सम्राट अशोक है न पहिले कतल करिके आनन्द पावत रहे अब देखों न कईस चोला बदले हैं।

अभिलाष : कुछ भी हो भाई सियार रंगने से बाघ तो बनिहे नाही'''इ नाटक किते दिन चलिहै'''।

रामानुज : अरे छोड़ साधो'''भले ही ई नाटक होये'' लेकिन अपन की फिक्र कर'''।

पियारा : अपन कू काहे की फिकर'''हम तो साधो ठहरे'''जहाँ रोटी दाना मिले वहीं डेरा बनावे।

रामानुज : और जब रोटी दाना न मिले तब !

सन्तो : यह सम्भव नाही साधो'''भगवान के भक्तन का रोटी न मिलै'''!

रामानुज : घबड़ा मत साधो'''जरा शहर जाकर देख सब जगह लोगन ने साधू का दान-पुण्य करना पुण्य करना बन्द कर दिहै हैं।

सन्तो : हम तोहरी बातन का नही समझेन साधो।

रामानुज : अरे अबहीं कलै की बात है हम लोगन सेठ गरीब चन्द के पास गए रहेन। ऊ जो हमार उपासक ठहरा न। जब हम गयेन तो ऊ उल्टे हमका शिक्षा देन लगा। बोला'''हमार राजा बौद्ध बन गया है'''पुण्य के काम कर रहा है'''हमहूँ बौद्ध बन गयेन है और सम्राट अशोक को दान कई रहेन हैं। जब हम पूछेन कित्ता दान दिये हो तो बोला 10 सहस्र मुद्रा दई चुका है।

ब्रह्मचारी : अरे ई सेठन का भरोसा साधो। पहिले विपदा मई हो गरीबन का खून चूसिहै अपनी डेगची कई हाँ भरिहैं और जब मौका देखिहैं तो मंत्री और राजन् की चमचागिरी करिके पुण्य कमइहै। लेकिन तू चिन्ता न कर हमहूँ अपना उल्लू सीधा करव जानित हैं। तोहका इन सबसे कोई मतलब नाही रखे का।

रामानुज : मतलव (कहते हुए हँस देता है) अरे मूरख साधो उसने हमका दान देवै से इंकार कर दिया है।

सन्तो : का बकत हो।

रामानुज : अरे भाई साधो'''तुम्हका का पता जब हम कहेन'''भई हमहूँ का तो दान दक्षिणा तो बोला रहे कि अरे मूरख तुम्हका काहे दान देई'''सम्राट को देंगे तो पुण्य मिलिहै। इस पर जब हमने कहा कि अगर दान न दिया तो मैं अपने श्राप से

तुम्हें भस्म कर दूँगा'''तो जानत हो साधो का किहसि रहे'''!

सन्तो : का किहिस रहे'''!

रामानुज : हमरे इत्ता कहत ही ऊ अपना मोटा तेल मा डुबोया सोटा उठाई लिहिस और बोला भाग जाओ इहाँ से नही तो मारे सोटन के तुम्हका श्रापग्रस्त कर देबे। अब तुमका का बताइ अगर हम भागेन न होत तो ऊ दोई चार तो रसीद ही कर देत।

केसरिया : हाँ भई साधो, यही कुछ हादसा हमरे साथ भी गुजरा रहे।

सन्तो : तो क्या तुझे भी अँगूठा दिखा दिया गया।

केसरिया : हाँ भाई'''और वह भी अँगूठे में पहनी अँगूठी उतारकर साले ने दिखाया। जब मैंने श्राप देने की बात कही तो सेठ पकोड़ी मल ने अपने पहलवान नोकर से मुझे बाहर उठवाकर फिकवा दिया। उफ कमर मईहो तो अबहूँ तक दरद होई रहा है।

रामानुज : अरे तुम्हका का मालूम एक साधो को तो जनता ने ऐसा धुना'''ऐसा धुना कि बेचारे की टैं बोल गई।

सन्तो : यार साधो, मुझे तो विश्वास नहीं होता।

केसरिया : तो ऐसा कर तू सेठ पकोड़ी मल या चिरौंजीलाल के पास जाकर एक धेला ले आ।

राजकुमार : तुम हम लोगन का चुनौती देत हो।

केसरिया : हाँ, अगर तुम ले आए तो जिन्दगी भर तेरे पैर दबाऊँगा।

राजकुमार : ठीक है। पहले भोगादि लगा लूँ।

[कामिनी भैंस का दूध दुह रही थी। अचानक भैंस को गुस्सा आ गया और अपना पिछला पैर रसीद कर दिया। कामिनी इस अचानक प्रहार के लिए तैयार नहीं थी अतः लुढ़ककर एक ओर गिर गई। उसके हाथ में पकड़ी दूध से भरी बाल्टी लुढ़क गई और सारा दूध जमीन पर फैल गया।]

महतो : साली मोटी अक्ल के जानवरो को बुद्धि होती ही नाहीं।

रामानुज : इसीलिए तो कहा गया है, भईंस के आगे बीन बजाओ भईंस ठाड़ बोराए।

सन्तो : और यहूँ ताक कहा गवा है कि बुद्धि नही भैंस बड़ी होती है।

अभिलाष : तुम ठीक कह रहे हो साधो, देखो न साली ने सारा दूध गिरा दिया। अब हम लोग भोगादि का करेंगे।

सन्तो : अरे देखो तो साधो, कामिनी देवी डायन बनी हुई मेरी तरफ ही आ रही है।

अभिलाष : क्या कहावत है धोबी से न जीते गदहा के कान उमेठे। भैंस से मार खाकर हमें खाने का इरादा बनाए हैं'''साधो, अगर खैर चाहते हो तो भाग लो'''।

सन्तो : मैं क्यों भागूँ, भागो तुम।

[अब तक वह मोटी काली औरत कामिनी उनके निकट आ चुकी थी।]

कामिनी : (चीखते हुए) हाँ तो मैं मोटी भैंस हूँ'''।

अभिलाष : यह क्या कह रही हो गुरुवाईन'''मैंने कब कहा था'''।

कामिनी : एक तो चोरी उस पर से सीनाजोरी'''एक तो मुझे भैंस कहा'''बुद्धिहीन कहा और अब'''कहते हुए उसने अभिलाष के बड़े-बड़े बालों को पकड़कर खींचना शुरू कर दिया।

अभिलाष : (गिड़गिड़ाते हुए) गुरुवाईन हम सौगन्ध खाई के कहित है कि मैंने कुछ नहीं कहा था'' वह जो साला सन्तो है उसने कहा था भैंस के आगे बीन बजाओ भैंस ठाड़ बौराए।

सन्तो : देखो साधो ठीक न होगा अगर हमें बीच में घसीटा'''मैंने कब कहा था।

रामानुज : काहे झूठ बोलत हो साधो'''तुमने ही तो कहा था भैंस बड़ी होती है बुद्धि नाही।

अभिलाष : अब तुम खुद सुन लो गुरुवाइन, तुम्हारे मुँह के सामने ही कहते है'''साले का इत्ता साहस बढ गया है।

सन्तो : लेकिन हमने क्या कहा था।

कामिनी : अच्छा तो सब झगड़े की जड़ तू है। कहते हुए झपटकर सन्तो के बाल पकड़कर खींचने लगी।

सन्तो : (पीड़ा से चीखते हुए) बचइयो गुरु महाराज महन्त जी।

[इसी समय कुटिया से एक साधू बाहर निकलते है।]

महन्त : क्या बात है साधो, काहे को शोर मचावत हो।

सन्तो : अरे महन्त जी, हमका बचइहो नहीं तो हमार क्रिया-करम तुम्हका ही करना पड़िहै।

महन्त : अरी भागवान ऊका काहे को मारे डालत हो।

कामिनी : तुम चुप रहो'''इसने हमको भैंस कहा'''काली भैंस।

सन्तो : महन्त जी, हमने ऐसा नहीं कहा था मुझे बचईयो।

महन्त : अगर तुमने नहीं कहा तो किसने कहा था'''

सन्तो : (अभिलाष की ओर इशारा करते हुए) उसने।

अभिलाष : झूठ बोलता है।

कामिनी : तुझे शर्म नही आती गुरुवाइन को अपवचन कहते हुए।

सन्तो : अच्छा अब तो क्षमा कर दो'''अब नही कहेंगे'''भगवान कसम तुम्हका तो क्या भैंस को भी भैंस नही कहेंगे, गुरुजी हमको बचइयो।

महन्त : अरे भाई साधो'''जो किया है भुगता। हम तोहका दुनिया मा सबसे तो बचाय सकित है लेकिन ई आफत की पुड़िया से नाहीं।

कामिनी : (सन्तो के बाल छोड़कर क्रोध से फुंफकारती हुई महन्त की ओर चढ़ दौड़ती है) क्या कहा'''मैं आफत की पुड़िया हूँ'''अभी देख मजा चिखाती हूँ।

[महन्त उसको इस तरह गुस्से में आते देखकर एक ओर भाग लेता है और कामिनी किसी काल के समान उसका पीछा करती है।

सन्तो : बड़ी मुश्किल से पीछा छोड़ा है गुरुवाईन ने'''।
अभिलाप : लेकिन अब महन्त जी'''बेचारे'''।

दृश्य परिवर्तन

[पाटलीपुत्र की आबादी में सेठ चिरौंजीलाल का आलीशान बँगला बना था। उस बँगले के सामने वहीं साधू राजकुमार खड़ा हुआ अलख निरंजन का आह्वान कर रहा था। उसकी आवाज सुनकर सेठ चिरौंजीलाल बाहर आए।]

चिरौंजीलाल : अरे साधू महाराज आप'''कब पधारे।
साधू : अभी आ रहा हूँ।
चिरौंजीलाल : आइए अन्दर आइए।

[इसके साथ ही वह उसे लेकर अन्दर चले गए और एक कक्ष में मसनद पर बैठते हुए साधू को भी आसन ग्रहण करने को कहा।]

चिरौंजीलाल : और सुनाइए साधू महाराज, कैसे आना हुआ।
साधू : सुना है आपने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया है।
चिरौंजीलाल : हाँ साधू महाराज! भगवान बुद्ध की अनुकम्पा से हमारे महाराज अशोक को सद्बुद्धि आ गई। उन्होंने जनता को अपना पुत्र मानकर उसकी सेवा का वचन दिया है।
साधू : यह तो बहुत खुशी की बात है सेठ। सुना है उन्हें दान बहुत दिया जा रहा है।
चिरौंजीलाल : उन्हें नहीं साधू जी, बल्कि बौद्ध मठों के निर्माण हेतु, स्तूपों के निर्माण हेतु एवं जनता की सुविधा के लिए वाचनालय, चिकित्सालय, विद्यालय, पौशालाओं के निर्माण के लिए।
साधू : सेठ जी, कितना आश्चर्य है कि सम्राट अशोक जैसे क्रूर शासक ने'''।
चिरौंजीलाल : यह सब भगवान बुद्ध की कृपा है साधू महाराज। अब यही देख लो न एक सहस्र मुद्राएँ मैं दान कर चुका हूँ, जेब में टका नहीं बचा है, लेकिन भगवान बुद्ध की कृपा से मुझे न तो किसी चीज की कमी महसूस होती है और न ही मुद्राओं की आवश्यकता।
साधू : यह तो शुभ कार्य है। इधर हम लोगों पर भी तंगी आ गई है। हम लोग बहुत बड़ा यज्ञ करने जा रहे हैं इसलिए दान-दक्षिणा एकत्रित करने का हम लोग प्रयास

कर रहे हैं।

चिरौंजीलाल : देखिए साधू महाराज, मुझे अब इन कर्मकाण्डों पर विश्वास नहीं रहा। बेकार में लाखों मन अनाज, घी, तेल, पूजन सामग्री आदि पर लाखों मुद्राएँ व्यर्थ व्यय करने से क्या फायदा है। वही सम्राट अशोक के कोष में देने से गरीबों के कल्याणार्थ चलाई जा रही योजनाओं की पूर्ति हो सकेगी और देश से गरीबी, भुखमरी का विनाश हो सकेगा।

साधू : मैं आपका मतलब नहीं समझा।

चिरौंजीलाल : मतलब साफ है साधू महाराज, जब मुझे इन कर्मकाण्डों पर विश्वास ही नहीं रह गया है तो दान देने का प्रश्न ही नहीं उठता।

साधू : सेठ आप घर आए मेहमान का अपमान कर रहे हैं इसके साथ ही भगवान का भी।

चिरौंजीलाल : महाराज अपमान उसका किया जाता है, जिसे बुलाया जाए। आप तो बिन बुलाए पधारे हैं। आज्ञा कीजिए आपके भोगादि की व्यवस्था की जाए।

साधू : भोगादि की आवश्यकता नहीं है मुझे यज्ञ एवं हवन के लिए मुद्राएँ चाहिए।

चिरौंजीलाल : इस सम्बन्ध में तो मैं क्षमा चाहूँगा क्योंकि अब मेरे पास धन है भी नहीं।

साधू : सोच लो सेठ, आज जो कुछ बने हो हमारे शुभ वचनों एवं आशीर्वाद से ही बने हो और अब···कहते हुए साधू क्रोधित हो उठा।

चिरौंजीलाल : (हँसते हुए) मैं नहीं मानता। यह बात दूसरी थी कि जब तक मुझे आपमें एवं कर्मकाण्डों में आस्था थी, मैंने आपको दिल खोलकर दान दिया परन्तु वह शान्ति मुझे हासिल नहीं हो सकी जो भगवान बुद्ध के उपदेशों से प्राप्त हुई है।

साधू : ठीक है··· देखता हूँ भगवान बुद्ध तुम्हें कैसे बचाते हैं। कहते हुए साधू कोई मन्त्र बुदबुदाने लगा। फिर कुछ देर बाद पुनः बोला—सेठ अब भी सम्भल जा अन्यथा मेरे श्राप से तू भस्म हो जाएगा तेरा धर्म तुझे बचा न सकेगा।

चिरौंजीलाल : अच्छा भई सँभल गया···ओरे कलुआ···ओ कलुआ···।

कलुआ : आया सेठ जी।

[इसी के साथ ही एक पहलवान टाइप का युवक अन्दर आया।]

चिरौंजीलाल : अरे कलुआ, यह साधू महाराज हमें अपने श्राप से भस्म करने जा रहे हैं···भस्म करने से पहले मैं चाहता हूँ कि इन्हें कुछ दान दक्षिणा दे दी जाए।

कलुआ : अवश्य सेठ जी। बहुत दिन बाद ऐसे पहुँचे हुए महात्मा के दर्शन हुए हैं। कहते हुए अपने हाथों को आपस में रगड़ने लगा।

चिरौंजीलाल : देख कलुआ जरा ध्यान रखना। इन्हें कहने का मौका न मिले कि इन्हें

कम दान-दक्षिणा प्राप्त हुई है।

कलुआ : बिल्कुल नहीं सेठ जी।

[इसके साथ ही 'जय बजरंग बली' का उद्घोष करते हुए उसने साधू को अपनी बाँहों में उठा लिया।]

साधू : अरे···अरे···यह क्या करते हो···छोड़ो···मुझे ऐसी हरकत बिल्कुल पसन्द नहीं है।

चिरौंजीलाल : अरे दान-दक्षिणा तो ले लो।

साधू : क्या दान-दक्षिणा देने का यही ढंग है। मैं कहता हूँ मुझे छोड़ दो अन्यथा अभी इसी वक्त अपने श्राप से तुम्हें भस्म कर दूँगा।

[साधू का इतना कहना ही था कि कलुआ ने उसे धम्म से जमीन पर पटक दिया जिससे साधू की चीख उसके कंठ से निकलती चली गई।]

साधू : सेठ, मेरा इस तरह अपमान करके तुमने अपनी मौत को दावत दी है मैं अभी ही···।

चिरौंजीलाल : साधू महाराज, क्या चोट ज्यादा आ गई है। क्षमा करना भई मैं तो तुम्हारे श्राप से भस्म होने से पहले कुछ दान-दक्षिणा देना चाहता था लेकिन क्या बताएँ मोटी बुद्धि का कलुआ समझ ही न सका कि दान-दक्षिणा कैसे दी जाती है।

कलुआ : समझ गया सेठजी···समझ गया···कहते हुए उसने पुनः साधू को बाँहों में उठाकर जमीन पर पटक दिया।

साधू : सेठ अब मुझे तुम्हारी दान-दक्षिणा नहीं चाहिए। कहते हुए वह द्वार की ओर भाग खड़ा हुआ। परन्तु इसी समय कलुआ ने बीच में पैर लगा दिया जिससे एक बार पुनः वह लड़खड़ा कर द्वार के निकट गिर पड़ा।

हृदय परिवर्तन

[राजदरबार में सभी पार्षद एवं गणमान्य सदस्य उपस्थित थे। आज सम्राट के साथ उनके बगल में रानी असन्धिमित्रा भी बैठी हुई थी। ऐसा मालूम हो रहा था जैसे आज किसी महत्वपूर्ण मुद्दे पर विचार-विमर्श किया जाना हो।]

अशोक : ब्रह्मदेव, कलिंग से कोई सूचना प्राप्त हुई है।

ब्रह्मदेव : जी हाँ महाराज। हमारे योग्य वैद्यों की टोली ने वहाँ पर फैली महामारी पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया है। आशा है शीघ्र ही कलिंग स्वस्थ हो जाएगा।

अशोक : इस महामारी में कितने लोगों को अकाल मौत का ग्रास बनना पड़ा।

ब्रह्मदेव : अनुमानतः 90 हजार लोगों की मृत्यु हुई परन्तु अब महामारी से मरने वालों की मृत्यु दर शून्य हो गई है।

अशोक : सुता असन्धिमित्रा ! इस युद्ध में मुझे कितनी क्षति हुई है । कलिंग राज्य के रूप में नहीं बल्कि श्मशान के रूप मे प्राप्त हुआ है । तुम्हारा क्या विचार है, क्या हमें कलिंगवासियों को इसी अवस्था में छोड देना चाहिए ।

असन्धिमित्रा : आप राजा हैं और यह अच्छी प्रकार जानते हैं कि जनता का हित किसमें है ।

अशोक : फिर मेरे कार्यकलापो की राजमहल में आलोचना क्यों की जा रही है ।

असन्धिमित्रा : इस सम्बन्ध मे मुझे कोई जानकारी नही है, लेकिन जो थोड़ी बहुत जानकारी विशेष सूत्रों से प्राप्त हुई है, उससे मैंने यही निष्कर्ष निकाला है कि कुछ लोग नही चाहते कि बौद्ध धर्म के विकास के लिए इतना धन बर्बाद किया जाए ।

अशोक : आश्चर्य है कि मेरे धन व्यय पर आपत्ति है, जबकि जनता हमसे कही अधिक दान कर रही है । विक्रमसिंह बौद्ध धर्म की प्रगति का विवरण सुनाओ ।

विक्रमसिंह : राजन् आपके आदेशानुसार जनता की सुख-सुविधा की पूरी व्यवस्था की जा चुकी है, जगह-जगह पौशालाओ, चिकित्सालय, वाचनालय एवं छायादार वृक्षों के आरोपण का कार्य लगभग समाप्त हो चुका है । सेनापति जयदत्त के प्रयासों से लगभग 40 हजार स्तूपों का निर्माण विभिन्न स्थलों पर पूर्ण हो चुका है तथा अन्य स्तूपों का निर्माण शीघ्र ही पूर्ण होने की सम्भावना है । इस समय शिक्षा व्यवस्था पर विशेष बल दिए जाने के उद्देश्य से निःशुल्क शिक्षा हेतु जगह-जगह विद्यालय खोलने पर विचार किया जा रहा है ।

अशोक : इस शुभ कार्य में देरी किस बात की है । विक्रमसिंह जनता का विकास राज्य का विकास होता है और विकास-कार्य में पूर्ण योगदान प्रदान करने के लिए जनता का शिक्षित होना नितान्त आवश्यक है । जनता के साथ अब किसी प्रकार का अत्याचार तो नही हो रहा है ।

विक्रमसिंह : राजन् अब तक प्राप्त सूचनाओ के अनुसार लगभग 40 सैनिकों को मृत्यु-दण्ड दिया जा चुका है, जिन्होने जनता के साथ ज्यादती की एवं लूटमार के कार्यों में योगदान प्रदान किया । लगभग 150 सैनिको को कारावास का दण्ड दिया गया है जिन्होने बहू-बेटियो की इज्जत को लूटने का प्रयास किया । आपके आदेशानुसार इस बात का पूरा प्रयास किया जा रहा है कि जनता पर किसी प्रकार का अन्याय या अत्याचार न हो सके ।

अशोक : जनता की शासक के प्रति क्या अवधारणा है । क्या वह बौद्ध धर्म के विकास एवं उसकी शिक्षाओं के प्रचार से सहमत है ?

विक्रमसिंह : जनता अब खुश है कि उसके राजा ने बौद्ध धर्म को स्वीकार करके क्रूरतापूर्ण नीति को त्याग दिया है । जनता के विशिष्ट गणो ने बौद्ध धर्म के विकास एवं उनकी शिक्षाओं के प्रचार मे अपना पूर्ण सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया है । राज्य की योजनाओ को पूर्ण करने के लिए जनता ने नि.शुल्क श्रमदान करना शुरू कर

दिया है। अब तक जनता से दान के रूप में 10 सहस्र मुद्राएँ राजकोश में जमा हो चुकी हैं। जो लोग मुद्रा के रूप मे दान देने में असमर्थ हैं वे निःशुल्क श्रमदान करके जनसेवा का कार्य शुरू कर चुके है। इस कार्य हेतु अनेक समाजसेवी संगठनों का गठन भी हो चुका है जिसका कर्ता-धर्ता अमरजीत है।

अशोक : यह तो अच्छी खबर है। विक्रम, इसका भी पूरा ध्यान रहे कि जनता की गाढी कमाई के धन का दुरुपयोग न किया जाए।

विक्रमसिंह : आप निश्चित रहें राजन्। मैं जनता की तरफ से एक सूचना आप तक पहुँचाना चाहता हूँ।

अशोक : कैसी सूचना !

विक्रमसिंह : जनता के विशिष्ट वर्गों एव सगठनो के लोगों ने आपका अभिनन्दन करने का आयोजन किया है, जिसमे स्वर्ण मुद्राओं से भरी थैलियाँ दान के रूप में भेंट करने का निर्णय लिया गया है। आशा है आप जनता की इस इच्छा को पूर्ण करेंगे।

अशोक : मुझे खुशी होगी विक्रम ! हाँ सेनापति जयदत्त, शहर मे शान्ति व्यवस्था की स्थिति क्या है ?

जयदत्त : राजन् शहर मे सर्वत्र शान्ति है। जनता तो आपकी प्रशंसा करते हुए नहीं थकती। विशेष रूप से जबसे जनता पर अत्याचार एवं लूटपाट करने वाले सैनिकों को फाँसी पर लटकाया गया है, जनता के मन में आपके प्रति प्रेम और उमड़ आया है। अब तो छोटी-मोटी दुर्घटनाएँ भी राज्य मे नगण्य हो चुकी है।

अशोक : बहुत खूब ! सुना असन्धिमित्रा, कितना परिवर्तन आया है हमारी जनता के हृदय मे। एक वह समय था जबकि जनता हमारे नाम से काँपती थी, हमसे नफरत करती थी तथा हमारे खौफ से उनके घर के दरवाजे बन्द हो जाया करते थे। परन्तु आज जनता का हमारे प्रति असीम प्रेम उमड़ रहा है। वह हमारा अभिनन्दन करना चाहती है, हमारे उद्देश्यो की पूर्ति के लिए एवं हमारे पापो के प्रायश्चित मे हमे कन्धे-से-कन्धा मिलाकर योगदान देना चाहती है।

असन्धिमित्रा : मुझे कम हर्ष नही है यह सुनकर राजन् ! मुझे आशा है कि आपका यह प्रेम जनता को और भी अधिक आकर्षित करेगा और आपके उद्देश्यो की पूर्ति में आने वाली बाधाएँ स्वतः ही दूर हो जाएंगी।

अशोक : असन्धिमित्रा। अब मैं कुछ दिनो के लिए बौद्ध गया तथा अन्य बौद्ध तीर्थ-स्थलों पर दर्शन के लिए जा रहा हूँ। अपनी अनुपस्थिति में जनता की सेवा का भार तुम्हारे कन्धो पर डाल रहा हूँ। आशा है तुम इस कार्य में मुझे योगदान प्रदान करोगी।

असन्धिमित्रा : अहोभाग्य ! आपने मुझे इस योग्य तो समझा। आप यकीन मानिए मैं अपने कर्तव्य से कभी उन्मुख नहीं हूँगी। जनता की सेवा ही सर्वसेवा है।

अशोक : मेरे मन का बोझ हल्का कर दिया मित्रा। मुझे विश्वास है हमारे योग्य पार्षद एव अनुभवी सेनापति तुम्हें किसी प्रकार की परेशानी का अनुभव नहीं होने देंगे।

विक्रमसिंह : आप निश्चित रहें राजन्, मेरा पूर्ण सहयोग महारानी के साथ रहेगा तथा उनके परामर्श के बाद ही कोई कार्य करूँगा।

अशोक : मैं तुम लोगों के कार्यो एवं आचरण से अत्यन्त खुश हूँ तथा इसके लिए मैं तुम लोगों को पुरस्कृत करूँगा। अब आप लोग मेरी तीर्थ यात्रा की तुरन्त व्यवस्था कर दें।

दृश्य परिवर्तन

[जंगल का वही स्थल। कुटिया के निकट 8 साधू गम्भीर मुद्रा मे बैठे हुए थे। उनके चेहरे पर गहन उदासी के बादल लहरा रहे थे। बार-बार वे मुख्य द्वार की ओर देख लेते थे मानो किसी का बड़ी ही बेसब्री से इन्तजार कर रहे थे। अन्ततः इन्तजार की घड़ियाँ समाप्त हो गयीं। द्वार से एक साधू ने प्रवेश किया, जिसके जगह-जगह पट्टी बँधी हुई थी। मुँह से कराह निकल रही थी।]

अभिलाष : अरे साधो यह तोहार का हाल हो गया।

राजकुमार : अरे पूछो मत साधो···ऊ दिन ऊ दोनों साधो सच कहिन रहे कि अब हम लोगन का चूल्हा-चक्की बन्द। अरे उनका इतनी सी लाज भी नही आयी कि एक भगवान भक्त पर वो लोग हाथ उठाए रहे है।

रामानुज : हम तो पहले ही कहत रहन मगर तोहार बुद्धि तो घास चरे चली गयी रहे। जादा चोट तो नहीं लाग है।

राजकुमार : अरे चोट की पूछत है साधो, यहु पूछ की जिन्दा कैसे बच गया···भगवान का लाख-लाख शुकर ··जान बची लाखो पाए, लौट के बुद्धू घर आए।

अभिलाष : हूँ···यह तो बहुत गम्भीर स्थिति पैदा हो गयी है। देखो ना इस साल बिरवा भी फल नहीं दिहिन है। सूखा अलग से पड़ा हुआ है, केवल कुछ गाय-भैंसन से इत्ते लोगन का पेट तो भरना नाही।

ब्रह्मचारी : निश्चित है साधो, अब तो बस कही मेहनत-मजूरी करिके ही पेट पालना है।

केसरिया : वह दिन जाने दो साधो जब मेहनत-मजूरी मिल जात रहे। अब तो शहर मईहाँ निःशुल्क श्रमदान चल रहा है, जहाँ लोग मजूरी लेत नाही और जी-जान एक कईके मेहनत करत हैं।

अभिलाष : अरे भई लोग नही लेत उनका छोड़ो हम तो लेब।

रामानुज : अजीब घोंचू हो या। जब वहाँ कोई मजूरी देने वाला होगा तभी तो लेंगे। वहाँ तो केवल एक मुखिया होत है और बहुत मजूर होत हैं, जिसके जेब मे दमड़ी नाही होत।

अभिलाष : तब क्या किया जाए।

[सभी लोग गम्भीर होकर सोचने लगते हैं। कुछ देर बाद राजकुमार साधु चौंक-सा उठता है।]

राजकुमार : अरे साधो, हम सबै मूर्खानन्द हो गए हैं का। सारा ज्ञान धरा रहि गवा जो इतनी छोटी बात समझ में नाही आयी।

अभिलाष : क्या बात नहीं समझ मा आई रहे साधो।

राजकुमार : अरे हम सबहू का बौद्ध धरम का साधु बन जायेक रहे।

अभिलाष : क्या मूरख हो गया है, हम और बौद्ध भिक्षुक। तेरा दिमाग कहीं घास तो नहीं चरने गया है।

सन्तो : मूरख राजकुमार नहीं तू है रे। अरे जब तक पेट भरा है, तब तक भले ही ज्ञान बघार ले, जहाँ भूख लगी तो सारी शेखी धरी रह जाएगी।

अभिलाष : लेकिन हमने तो वेद पुराण का ज्ञान प्राप्त किया है, बौद्ध धर्म का तो हमहूँ का ज्ञान नाही है, फिर कईसे बौद्ध भिक्षु बनि सकित है।

ब्रह्मचारी : इसके अतिरिक्त उनकी वेष-भूषा भी तो अजीब ढंग की है। सर पर नाम मात्र को बाल नहीं होत, भला हम अपने बाल कईसे बनाए सकित है, यह तो अधर्म होईहै।

राजकुमार : अधर्म···मूर्ख···आज लाखों आदमी बौद्ध धर्म को अपना रहे हैं तो वे सब अधर्मी हो गए। अरे मूरख समय के अनुसार ही अपने को ढालना ही मुख्य विशेषता है।

अष्टम दृश्य

[सभी तीर्थों के दर्शनोपरात सम्राट अशोक पाटलीपुत्र वापस आए तो उन्होंने प्रतिदिन एक गाडी रत्न बौद्ध गया में तीर्थस्थलों के पुनरुद्धार हेतु भेजने का आदेश दे दिया। इस आदेश का तुरन्त अनुपालन सुनिश्चित हुआ तथा प्रतिदिन एक गाड़ी रत्न बौद्ध गया को भेजने का क्रम चालू हो गया। इसके साथ ही सम्राट अशोक ने जगह-जगह चिकित्सालयों की स्थापना, छायादार वृक्षों के आरोपण एवं गरीबों को यथोचित आर्थिक एवं न्यायिक सहायता प्रदान किए जाने के आदेश दिए। इसके साथ ही उन्होंने जानवरों की चिकित्सा की व्यवस्था किए जाने हेतु पशु चिकित्सालयों की स्थापना का आदेश दे दिया।

धन के इस प्रकार दुरुपयोग से राजमहल में खलबली-सी मच गयी। दिन पर दिन राजकोष खाली होता जा रहा था। जहाँ एक ओर सम्राट अशोक दिल खोलकर दान दे रहे थे, जनकार्यों को बढ़ावा दे रहे थे, नयी-नयी योजनाओं की मंजूरी दे रहे थे, वहीं राजमहल के कुछ सदस्य इसके विरुद्ध थे। लेकिन अशोक के सामने कुछ कहने अथवा उनके कार्यों में विरोध करने का साहस किसी में नहीं था।

एक दिन रानी तिष्यरक्षिता ने इसी बिन्दु पर विचार-विमर्श करने के उद्देश्य से बात छेड़ते हुए कहा—"राजन्, मैं बहुत दिनों से कुछ कहना चाहती लेकिन···।"]

अशोक : कहो तिष्य···इसमें भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

तिष्य : मुझे आशंका है कहीं महाराज बुरा न मान जाएँ।

अशोक : तुम यकीन मानो, मैं तुम्हारी किसी बात का बुरा नहीं मानूँगा। हाँ यदि उचित होगा तो उसका अनुपालन सुनिश्चित करूँगा परन्तु विपरीत होने की दशा मे भी मैं कुछ नहीं कहूँगा।

तिष्य : इसीलिए तो बात कहते मेरा अन्तर्मन काँप रहा है।

अशोक : तिष्य तुम्हें विदित होना चाहिए कि मैंने काम, क्रोध और पश्चाताप जैसी भावनाओं को त्याग दिया है और अब तो मैं भगवान बुद्ध का उपासक बन चुका हूँ। यही कारण है कि मैंने अपनी प्रजा को इस बात का पूर्ण अधिकार दे रखा है कि वेहिचक अपनी बात मेरे सम्मुख प्रस्तुत करे। अतएव इसमें तुम्हें घबड़ाने अथवा भयभीत होने की कोई आवश्यकता नही है।

तिष्य : यह तो मैं भी जानती हूँ कि आप राजा से सन्यासी बन चुके हैं।

अशोक : नहीं तिष्य, पहले अवश्य मेरा विचार सन्यासी बनने का था परन्तु अब मैंने अपना इरादा बदल दिया है। हाँ, अब राजा के साथ बौद्ध धर्म का उपासक अवश्य बन गया हूँ। दूसरे शब्दों मे यह भी कह सकती हो कि अब मैं राजा के साथ ही सन्यासी की भूमिका भी निभा रहा हूँ।

तिष्य : यही तो आश्चर्य है राजन् कि एक राजा का सन्यास से क्या सम्बन्ध। राजन्, राजा का धर्म है राज करना और अपने राज का विस्तार करना और मेरे विचार से यही सृष्टि का चक्र भी है। राजा का तो मुख्य कर्त्तव्य अपनी जनता के हित के साथ ही अपने राज्य का विस्तार करना होता है, भले ही इसके लिए खून की नदियाँ ही क्यों न बहानी पड़े। हर राजा अपने राजकोष को अनमोल रत्नों से भरा रखना चाहता है तथा उसकी यही अभिलाषा रहती है कि वह अपने राजकोष में निरंतर वृद्धि करे।

अशोक : तुम्हारा कहना अपनी जगह सही है तिष्य। लेकिन मेरा हृदय युद्ध और रक्त से विरक्त हो चुका है। हाँ, अब तो जनता की भलाई ही हमारा एकमात्र उद्देश्य है

और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैंने बौद्ध धर्म को ग्रहण किया है।

तिष्य मैं इस बात को नही मानती। मेरे विचार मे तो जो कुछ भी आप कर रहे हैं, केवल कुछ लोगों के बहकावे में आकर कर रहे हैं।

अशोक : आश्चर्य है···तुम्हें कैसे भ्रम हो गया कि नरसंहारक अशोक को कोई बहका भी सकता है।

तिष्य : आपसे ज्यादा आश्चर्य तो मुझे है कि एक नरसंहारक अशोक आज किस प्रकार दरियादिली से अपने राजकोष को लुटाते हुए रत्नों से भरी गाड़ियों को मिट्टी की तरह भेज रहा है।

अशोक : (हँसकर) ओह तो यह बात है।

तिष्य : यह हँसने का समय नही है राजन्। भले ही आपके लिए यह छोटी-सी बात हो लेकिन हम लोगों के तो जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया है।

अशोक : तिष्यरक्षिता, इस सम्बन्ध मे तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। तुम्हारा पेट भरने के लिए अभी मेरा राजकोष खाली नही हुआ है और यदि भगवान बुद्ध की अनुकम्पा रही तो राजकोष कभी खाली भी नही होगा। फिर तिष्य यह राजकोष तो जनता का है, उन अभागे स्वर्गवासियों का, जिनके लहू से यह खजाना सींच कर भरा गया है। चूंकि यह हिंसा का कमाई है और अब मुझे हिंसा से नफरत हो गयी है, अतः निश्चय ही अब इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है और इसे जनसेवा एवं बौद्ध शिक्षाओं के प्रचार एवं प्रसार पर ही व्यय करना न्यायोचित समझता हूँ।

[इसी समय अशोक के पुत्र जलोका का प्रवेश हुआ।]

जलोका : शुभ प्रणाम पिताश्री।

अशोक : खुश रहो बेटे।

जलोका : शायद किसी गंभीर समस्या पर विचार-विमर्श चल रहा है।

तिष्य : हाँ बेटे, अच्छा तुम्हीं बताओ राजकोष का इस तरह दुरुपयोग क्या राजहित में है। क्या राजा को अधिकार है कि वह राजकोष को जिस तरह चाहे बर्बाद करे।

जलोका : माँश्री ! जहाँ तक राजकोष पर अधिकार का प्रश्न है, वास्तविक रूप में उसका उत्तराधिकारी तो जनता होती है और जहाँ तक राजा का प्रश्न है, वह केवल संरक्षक होता है। अर्थात् उक्त राजकोष के धन की सुरक्षा के भार के साथ ही राजा को इस बात का अधिकार प्राप्त होता है कि वह जनता के खजाने का जनता के विकास कार्यों पर व्यय करे। चूँकि पिताश्री उक्त धन को जनता एवं देश के विकास कार्यों मे व्यय कर रहे हैं, इसलिए वही इस खजाने के अधिकारी समझे जाएँगे।

तिष्य : इसका मतलब हमें राजा के कार्यों में दखल देने का कोई अधिकार नहीं है ।

जलोका : क्षमा करें मांजी । दखल देने का कार्य तो है परन्तु न्यायोचित कार्यों में नहीं ।

तिष्य : तुम लोग आखिर मेरी बात को समझने का प्रयास नही कर रहे हो । यदि राजकोष का धन इसी तरह बर्बाद होता रहा तो'''।

जलोका : वैसे मांश्री अभी तक मुझे तो ऐसी कोई जानकारी नही मिली है ।

तिष्य : तुम्हारे पिताश्री रत्नों से भरी गाड़ियां पता नही कहां भेज रहे हैं और इसकी तुम्हें जानकारी नहीं ।

जलोका : मांश्री ! यह गाड़ियाँ बौद्ध, गया तथा अन्य तीर्थस्थानो के पुनरोद्धार के लिए भेजी जा रही हैं । हम लोग तो इसे जनकार्य समझते हैं फिर इसमें धन की बर्बादी कैसी ।

तिष्य : ठीक है'''धर्म और अधर्म के बीच ही तुम लोग डूबते-उतराते रहो । लेकिन एक बात याद रखना राजन्'''न तो तुम सम्राट रह पाओगे और न ही सन्यासी बन पाओगे ।

अशोक : (हंसकर) तिष्य यह तो आने वाला इतिहास ही बताएगा कि नरसंहारक अशोक न केवल एक राजा की भांति राज्य करता रहा वरन् एक सन्यासी की भांति जनता की सेवा के साथ बौद्ध भिक्षु के रूप में भगवान बुद्ध की सेवा भी करता रहा ।

तिष्य : ठीक है'''देखूंगी आने वाले इतिहास को भी कि वह क्या कहता है ।

[इसके साथ ही तिष्यरक्षिता गुस्से से कक्ष से बाहर चली गयी । कुछ ही देर बाद रानी पद्‌मावती आती है । इस समय राजा गम्भीर अवस्था में बैठे हुए थे । कुछ देर बैठने के बाद उनका पुत्र जलोका भी कक्ष से बाहर चला गया ।]

पद्‌मावती : क्या बात है राजन्, यह चेहरे पर मायूसी क्यों छायी हुई है'''कही आपकी तबियत'''।

अशोक : नहीं पद्‌मावत् ऐसी, कोई बात नही है । बरबस ही बीते दिनो की यादें जब ताजा हो उठती हैं तब पता नही क्यों मन डूबने-सा लगता है ।

पद्‌मावती : राजन् जो गुजर गया, उसे याद रखने से क्या फायदा । अब तो आपने पश्चाताप करना भी शुरू कर दिया है फिर'''।

अशोक : लेकिन इसमे भी हमारी रानियां व्यवधान उत्पन्न कर रही हैं और इसे धन का दुरुपयोग बता रही हैं । कही तुम भी तो ऐसा नही सोचती हो ?

पद्‌मावती : यह क्या बात कह रहे हैं'''भला मैं ऐसा क्यों सोचूंगी'''मुझे तो अपने पति'''अपने सुहाग पर गर्व है, जिसने निर्दोषों पर जुल्म ढाना ही नही बन्द किया वरन् मन को निर्मल बनाकर स्वर्गवासियों की आत्माओं की शान्ति के लिए उनके

आश्रितों को भरपूर सहायता देने का कार्य भी शुरू कर दिया है।

अशोक : एक तुम्ही हो जो मेरे हर सुख-दुःख में साथ देती हो अन्यथा अन्य रानियाँ तो इसे दुरुपयोग कहते हुए विद्रोह करने पर उद्यत हो रही है।

पद्मावती : (हँसकर) नादान हैं··· उन्हें अच्छे-बुरे का ज्ञान ही नही है।

अशोक : अच्छा पद्मावती, एक बात बताओ।

पद्मावती : एक क्या हजार बातों का उत्तर दूँगी।

अशोक : नही, केवल एक बात···जब मेरे राजकोष का धन समाप्त हो जाएगा तब भी तुम क्या इसी प्रकार का सहयोग प्रदान करती रहोगी।

पद्मावती : राजन् सुहाग का राजकोष से क्या मतलब। आप मेरे सुहाग है···मेरे देवता हैं···मेरे लिए तो सभी कुछ आप है ··राजकोष रहे या न रहे···आप रहे यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है ··आप जहाँ भी जिस स्थिति में रहेंगे···मैं सदैव उसी प्रकार आपकी सेवा करती रहूँगी जैसे सती सावित्री ने अपने पति की सेवा की थी।

अशोक : बहुत खूब···आज मालूम हुआ कि वास्तव में मेरा भी यहाँ कोई अपना है··· अन्यथा मैं तो यही समझ बैठा था कि धीरे-धीरे सभी मेरे वैरी हो जाएँगे···रानी, आज मैं तुमसे प्रसन्न हूँ···बोलो तुम्हे क्या चाहिए···तुम जो माँगोगी हम देंगे।

पद्मावती : राजन्···बस मै तो यही माँगूँगी कि आप सदैव खुश रहें और मेरा प्यार, मेरा सुहाग आने वाले इतिहास मे करिश्मा बनकर उभरे।

अशोक : यह क्या माँग रही हो ··अरे सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात धन दौलत माँगो तो है भी।

पद्मावती : राजन् सोने-चाँदी, हीरे-जवाहरात, अथवा धन-दौलत से पति का प्यार नहीं खरीदा जा सकता है। मैं तो केवल पति का प्यार चाहती हूँ और यही मेरी अन्तिम इच्छा है।

अशोक : ओह···निश्चय ही तुम समस्त नारी जगत में एक महान नारी हो···मैं तुमसे अत्यन्त खुश हूँ और वचन देता हूँ कि मैं तुम्हें सदैव प्यार करता रहूँगा चाहे कैसी भी विडम्बना क्यों न हो···अरे हाँ तुमने यह तो बताया नही कि आने वाले शिशु में अभी और कितनी देरी है।

पद्मावती : मैं क्या बता सकती हूँ···यह तो ऊपर वाले की मर्जी पर है।

अशोक : अच्छा बताओ अपने शिशु का नाम क्या रखोगी।

पद्मावती : (शर्माते हुए) इसका फैसला तो आप ही करेंगे।

दृश्य परिवर्तन

[जंगल में विद्यमान उसी कुटिया में सभी साधुगण बैठे हुए थे। सभी के चेहरों पर चिन्ता के लक्षण दिखायी दे रहे थे। उनके पास ही एक नाई बैठा हुआ उस्तरे की

धार बना रहा था ।]

अभिलाष : ओ केसरिया, देख हम लोगन के ई बलवा बन जईहे और हम सबही बौद्ध धरम के भिक्षुक बन जइबे । उहके बाद तो मजा ही मजा है । न काम करना न धाम करना, घर बैठे आराम करना ।

केसरिया : लेकिन साधो, यह तो अनर्थ है, यह अपने धरम को बेचना है । हम तो कहते हैं कि अबहूँ समय है और अपन धरम की रक्षा करना ही हमारा परम कर्तव्य है।

महतो : अरे मूरख तू अपनी जुबान पर लगाम दई ले नाही तो अनर्थ होई जइहे । तोहका नाही मालूम कि आज जब हमार राजा भगवान बुद्ध का दास होई गवा है, तो हमरे दास होये मा कौन सा अनर्थ होई जइहे ।

चन्द्रेश : महतो का कहना सही है केसरिया । फिर हमार धरम का है । हमने भगवान *की साधना की लेकिन उसने मुझे इस योग्य भी नहीं रखा कि दो जून की रोटी* नसीब होई जाय । सवाल यही पेट का है, अगर पेट मा अन्न न जइहे तो का भूखे जान दई देब ।

अभिलाष : अरे केसरिया, अभी तू भोला है भोला···जब बात समझ में अइहे तो पता लग जइहे कि हम लोगन ने धरम परिवर्तन करके कितना अच्छा काम किया है । तुहका शाइद न मालूम होई कि ऊ नज्जू और महतू अपने साथियों के साथ बौद्ध भिक्षु बनि गए हैं और अब सुख चैन की जिन्दगी बिताए रहे है । न मेहनत न मजूरी और न ही दर-दर की ठोकरे । घर बैठे भोजन मिलता है और मौका लगत है तो दारू और शकर भगवान के प्रसाद का भी भोग लगाई लेत है । तुहका शाइद नाही मालूम होय कि उहाँ औरतें भी भिक्षुणी बन के आई गयी है और···।

केसरिया : इसका मतलब तो यही है कि अब हम लोगन को आपन चरित्र भी बेचना पड़िहै ।

अभिलाष : *कैसा चरित्र रे केसरिया । हमार कौन-सा चरित्र है । दर-दर भीख माँग के* खाना । अब देख न सभे लोग की उमर पार होई गए लेकिन औरत के लिए तरस रहेन हैं । एक ससुरी वही पतुरिया मिल गयी है, जिससे हम लोगन का काम चल जात है अन्यथा कऊन हमका पूछे ।

केसरिया : तो का उहाँ औरतन की भरमार है ।

अभिलाष : अरे मूरख बुद्धि से काम लेबे तो काहे न औरत मिलिहै । फिर अपन तो सिद्ध पुरुष है, जौन औरत पर नजर डाल देबे वहे हमार होई जाय ।

केसरिया : ठीक है, जस तोहर मर्जी होए कर ।

[इसके साथ अभिलाष उठकर नाई के पास चला गया और अपने सारे बालों को

उतरवा दिया। जब बाल उतर गए तो सभी साधुगण उसके चेहरे को देखकर ठहाका लगा उठे।]

अभिलाष : अरे तू लोग हसंत काहे को रे।

केसरिया : अरे साधो, जरा आपन चेहरा तो देखौ कस होई गा है।

अभिलाष : अरे हमार चेहरा तो बस पहले रहे उससे ज्यादा सुन्दर होई गवा है अब तू भी चलकर अपना चेहरा सुन्दर बनवा ले।

केसरिया : न बाबा…हम अपने इतने खूबसूरत बालों का सत्यानाश न होने देंगे।

अभिलाष : हाँ…हाँ…काहे नाही तू तो इनकी चोटी बनाई के…लकुटिया पहिन के… आँखन मटकाये के "हम लोगन का रिझइहै न"…चल उठ जल्दी से और…।

केसरिया : अरे साधो, कोई ऐसा उपाय नहीं है कि इ बालन की रक्षा की जाय।

अभिलाष : नई अब कोई उपाय नही बचा है। अब उठ जल्दी से और बाल बनवाई ले। बहुत देर होई गई है। आरती होए के पहिले ही हमका वहाँ पहुँच जाना है।

केसरिया : जाइत है साधो…लेकिन

अभिलाष : लेकिन…वेकिन कछु नाही…जल्दी कर।

[कुछ ही देर में सभी साधुगणों के सिर घुट गए और उनके सिर पर नाममात्र की छोटी-सी चुटिया रह गयी थी। इसके बाद नहा-धोकर सभी बीणा उठाकर भजन गाते हुए शहर की ओर प्रस्थान कर दिए।]

सप्तम दृश्य

[दरबार मे सभी पार्षद मौजूद थे। सम्राट अशोक राजगद्दी पर आसीन थे। अगल बगल मे दो युवतियाँ मोरपंख से बने सुन्दर पंखे झल रही थी। इसी समय सेनापति जयदत्त राजदरबार में प्रवेश करते हैं। जयदत्त सम्राट के सम्मुख पहुँचकर उनका अभिवादन करते हुए हाथ बाँधकर एक ओर खड़े हो गए।]

अशोक : कहो सेनापति, कोई नवीन समाचार है क्या।

जयदत्त : हाँ महाराज। आपने जो कार्य मुझे सौंपा था, वह लगभग पूर्ण हो चुका है। सभी तीर्थस्थलों पर धर्मशालाओं, गौशालाओं के साथ ही तीर्थों के पुनरोद्धार हेतु निकटवर्ती क्षेत्रों में तरह-तरह के छायादार एवं फलदार वृक्षों का आरोपण कार्य पूरा किया जा चुका है।

अशोक : बहुत खूब, लेकिन इतनी जल्दी तुमने इतनी बड़ी विजय कैसे हासिल कर ली ?

जयदत्त : महाराज आपकी शुभकामनाएँ जो हमारे साथ हैं। यही नहीं महाराज पूरे देश में जगह-जगह चिकित्सालयों का निर्माण कराया जा चुका है, जहाँ गरीबों को मुफ्त दवाएँ देने की व्यवस्था की गयी है। इसके साथ ही पशुओं की चिकित्सा के लिए भी जगह-जगह चिकित्सालयों की व्यवस्था की जा चुकी है। आपके आदेशानुसार भगवान बुद्ध के उपदेशों एवं शिक्षाओं को शिलालेखों के रूप में जगह-जगह स्थापित किया जा चुका है। देश के विभिन्न स्थलों पर पाठशालाओं का निर्माण कराया जा चुका है। इन पाठशालाओं में शिक्षकों की नियुक्ति की जा चुकी है तथा छात्रगण शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

अशोक : निश्चय ही जयदत्त, तुम्हारे कार्य सराहनीय हैं। जो सेनापति जंग के मैदान में शत्रुओं के छक्के छुड़ा देता था, उसी ने शांति युद्ध में भी सबको पीछे छोड़ दिया है।

जयदत्त : यह सब तो महाराज एवं भगवान के आशीर्वाद का फल है। एक अन्य विशिष्ट सूचना यह है कि देश में 84000 स्तूपों का निर्माण भी पूर्ण हो चुका है।

अशोक : (आश्चर्य से) क्या यह सच है कि मात्र 5 वर्ष की अवधि में ही'''।

जयदत्त : महाराज, मैं कभी गलत सूचना नहीं देता हूँ। जहाँ तक इतनी जल्दी कार्य की पूर्ति का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में जन समठनों के आभारी हैं जिन्होंने अपना पूरा योगदान इस कार्य पूर्ति हेतु नि:शुल्क श्रमदान करके दिया है।

अशोक : ओह जयदत्त'''यह तुम क्या कह रहे हो। मैं यह सूचना सुनकर अत्यन्त खुश हूँ कि मेरे लक्ष्य की पूर्ति में जनता अपना पूरा योगदान प्रदान कर रही है। तुम्हारे ही कारण आज मैंने जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य पूर्ण कर लिया है'''बोलो आज तुम जो भी माँगोगे हम तुम्हें देंगे।

जयदत्त : (हँसते हुए) लेकिन महाराज अभी तो एक सूचना देना शेष रह गयी है।

अशोक : क्या अभी और कोई सूचना बाकी है।

जयदत्त : हाँ महाराज'''जब मैं यहाँ आ रहा था तभी मुझे राजमहल से यह सूचना प्राप्त हुई कि रानी पद्मावती जी ने 84000 स्तूपों के निर्माण के उपलक्ष्य में पुत्र रत्न का जन्म दिया है।

अशोक : (हर्षातिरेक से) यह क्या कह रहे हो सेनापति। क्या यह सच है ?

जयदत्त : (हँसते हुए) महाराज स्वयं राजमहल चलकर देख लें।

दृश्य परिवर्तन

[राजमहल में चारों ओर हर्ष छाया हुआ था। जगह-जगह बाजे-गाजों के साथ ही भजन-कीर्तन की ध्वनियाँ गुंजरित हो रही थीं। सम्राट अशोक तीव्र गति से रानी

पद्मावती के कक्ष की ओर बढ़े जा रहे थे। सम्राट अशोक को देखकर मुस्कुराती दासियाँ एक ओर हटती जा रही थी। सम्राट अशोक सभी दासियों को कुछ न कुछ भेंट करते हुए जा रहे थे। कक्ष में प्रवेश करने के साथ ही वह शीघ्रता से रानी पद्मावती के पास चले गए और उनके बगल में लेटे शिशु को गोद में उठा लिया। शिशु को गोद में लेते ही उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो उन्हें अपार शान्ति मिल रही हो। सम्राट अशोक एकटक उस नवजात शिशु को देखते रहे मानो वह उसे पहचानने की कोशिश कर रहे हैं। बरबस ही उनके सम्मुख भगवान बुद्ध की तस्वीर नाच उठी। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो भगवान बुद्ध ने उनके यहाँ जन्म लिया हो।]

पद्मावती : राजन्, इस तरह क्या देख रहे हैं बच्चे में। कहिए तो काला टीका लगा दूँ अपने लाल को'''कहीं नजर न लग जाए।

अशोक : (चौंककर)'''ओह यह तो मैं भूल ही गया था। निश्चय ही इसे काला टीका लगा दो नहीं तो कहीं मेरी नजर लग गयी तो, कहते हुए अशोक पद्मावती के बगल में बैठ गया।

अशोक : पद्मावती, आज मैं तुम्हारे इस अभूतपूर्व उपहार को पाकर खुशी से पागल हुआ जा रहा हूँ।

पद्मावती : राजन्, इसकी नींव तो आप ही ने डाली है और यह उपहार भी आपका है। यह तो मेरा सौभाग्य है जो इतने सुन्दर शिशु की माँ बनी हूँ।

अशोक : जानती हो इसका जन्म कब हुआ है।

पद्मावती : भला मैं क्या जानूँ।

अशोक : तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि आज ही 84000 स्तूपों का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ है और आज ही हमें पुत्ररत्न प्राप्त हुआ है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता मानो भगवान बुद्ध ने ही तुम्हारे गर्भ से जन्म लिया।

पद्मावती : (हर्ष से) क्या सच!

अशोक : बिलकुल सच और इस खूबसूरत उपहार के बदले में मैं तुम्हें दुनिया का सबसे बेशकीमती हीरों का हार उपहार में देता हूँ।

[कहते हुए सम्राट अशोक ने अपने गले में पड़ी हीरों की माला उतारकर रानी पद्मावती के गले में डाल दी।]

दृश्य परिवर्तन

[सभाकक्ष में गुरु तिस्स मोग्गलिपुत्त अन्य भिक्षुगणों के साथ बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे। इसी समय सम्राट अशोक का सभाकक्ष में प्रवेश होता है। सम्राट अशोक को देखते ही सभी भिक्षुगण उनके सम्मान में उठ खड़े हुए। सम्राट अशोक उनके

अभिवादन का जवाब देते हुए तिस्स मोगलिपुत्त के पास जाकर बैठ गए।]

तिस्स : बधाई हो राजन्।

अशोक : बधाई तो मुझे देना चाहिए महाराज। आपके आशीर्वाद से मुझे पुत्ररत्न प्राप्त हुआ है।

तिस्स : नहीं राजन्, मैं तो एक साधारण आदमी हूँ, यह सब भगवान बुद्ध की कृपा है।

अशोक : महाराज हमने तो जो कुछ सीखा है, आपके माध्यम से सीखा है, इसलिए हमारे भगवान तो आप ही हैं।

तिस्स . नहीं राजन्, यह अधर्म मत कीजिए। मैं और भगवान'''।

अशोक : इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वास्तविक रूप में आप भगवान बुद्ध से भी बढ़कर हैं। वैसे भी गुरु भगवान से बढ़कर होता है, क्योंकि गुरु के ही माध्यम से भगवान के दर्शन हो सकते हैं।

तिस्स : (हँसते हुए) निश्चय ही अब आप केवल राजा ही नहीं धर्माचार्य भी बन गए हैं। एक दार्शनिक के लक्षण भी आपमें दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

अशोक : आपके समक्ष तो मैं तुच्छ आदमी हूँ। महाराज मैंने जीवन में बहुत पाप किए है परन्तु आपका आशीर्वाद पाकर अब मैं अपने को उन पापों से मुक्त महसूस कर रहा हूँ।

तिस्स : राजन्, यह सब भगवान की कृपा है। मुझे विश्वास है कि भगवान बुद्ध की अनुकम्पा से एक दिन आप विश्व में चक्रवर्ती सम्राट के रूप में विख्यात होंगे।

अशोक : नहीं महाराज। अब मुझे चक्रवर्ती सम्राट बनने की कोई अभिलाषा नहीं है। मैं तो केवल अपने पापों से मुक्ति एवं जनता की सेवा के साथ ही भगवान बुद्ध की आराधना करना चाहता हूँ। अपने पापों के प्रायश्चित के लिए ही मैंने अपने जवान पुत्र एवं पुत्रियों को बलि का बकरा बना दिया है। ईश्वर जाने वे किस हाल में और कहाँ होंगे।

तिस्स : राजन्, घबड़ाने की कोई बात नहीं है, वे जहाँ भी होंगे, भगवान बुद्ध के आशीर्वाद से स्वस्थ एवं सकुशल होकर आपके उद्देश्यों की पूर्ति कर रहे होंगे। राजन्, आपने जो त्याग किया है, उसका पुरस्कार भगवान बुद्ध अवश्य देंगे।

अशोक : महाराज, पुरस्कार तो मुझे प्राप्त हो चुका है। भगवान बुद्ध की अनुकम्पा से मुझे जो पुरस्कार मिला है, निश्चय ही वह अद्भुत शक्तियों का मालिक प्रतीत होता है। आश्चर्य तो यह है कि जिस दिन मैंने 84000 स्तूपों का निर्माण कार्य पूरा कराया उसी दिन मुझे यह पुत्ररत्न प्राप्त हुआ है।

तिस्स : यह अत्यन्त हर्ष का विषय है राजन्। मेरा आशीर्वाद आपके पुत्ररत्न के साथ अवश्य रहेगा।

अशोक : ऐसे नहीं महाराज आप स्वयं चलकर उसे आशीर्वाद दीजिए और उसका नामकरण कीजिए।

दृश्य परिवर्तन

[सम्राट अशोक आदर सहित मोगलिपुत्त तिस्स को राजमहल में ले गए एवं अभी हाल ही में निर्मित अपने विशेष कक्ष में बिठाया, जहाँ पर भगवान बुद्ध की एक प्रतिमा स्थापित थी। मूर्ति के पास ही पूजा-अर्चना की सामग्री रखी हुई थी। सम्राट अशोक एक सेवक को रानी पद्मावती के साथ नवजात शिशु को भेजने का आदेश देते हुए स्वयं मोगलिपुत्त तिस्स के पास बैठ गए। कुछ ही क्षणोपरान्त रानी पद्मावती नवजात शिशु को लेकर आईं और गुरु मोगलिपुत्त तिस्स का अभिवादन करते हुए सम्राट अशोक के निकट ही बैठ गयी। सम्राट अशोक ने शिशु को लेते हुए मोगलिपुत्त के चरणों में रख दिया, जिसे मोगलिपुत्त उठाकर अपने सीने से लगाते हुए उसके ललाट को देखने लगे।]

तिस्स : राजन्, यह शिशु आगे चलकर बड़ा ही ज्ञानी एवं गुणवान होगा। यह शिशु हर परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने में दक्ष होगा। अस्त्र-शस्त्र में निपुणता के साथ ही यह अत्यन्त बुद्धिमान होगा।

अशोक : अहो भाग्य !

तिस्स : राजन्, चूँकि इस बच्चे का जन्म धर्म और अधर्म के बीच हो रहे शीत युद्ध के बीच हुआ है, अतः मेरे विचार से इसका नाम धर्म विवर्धन रखना उचित होगा।

अशोक : जैसी आज्ञा। मैं इसका नामकरण धर्म विवर्धन करने की घोषणा करता हूँ।

पद्मावती : जैसा शिशु वैसा नाम''' कितना खूबसूरत नामकरण किया है गुरु महाराज ने'''।

अशोक : रानी यह वही गुरु हैं, जिनके उपदेशों को सुनकर मेरा मन हिंसा से विरक्त हुआ और मेरे मन में जनमानस के प्रति श्रद्धा के भाव उभरे। इन्होंने ही मुझे जनसेवा की भावना से ओतप्रोत करते हुए राजा और संन्यासी-सा जीवन बिताने का उपदेश दिया है।

पद्मावती : राजन्, इतने महान और ज्ञानी महापुरुष से आज प्रथम बार मिलकर मुझे अपार गर्व की अनुभूति हो रही है। मेरे लायक कोई सेवा हो तो'''

तिस्स : रानी इसमें गर्व महसूस करने का प्रश्न कहाँ उत्पन्न होता है। मैं तो एक साधारण दरिद्र मानव हूँ, जिसने भगवान बुद्ध की सेवा को अपना जीवन लक्ष्य निर्धारित किया है। राजन् अकारण मेरी प्रशंसा मत करें। मैं तो मात्र एक तुच्छ इन्सान हूँ, अन्यथा आपमें जो भी परिवर्तन हुए हैं, वह सब भगवान बुद्ध की कृपा से हुए हैं।

अशोक : महाराज मुझे शर्मिन्दा कर रहे हैं'''कलिंग युद्ध के बाद से अब तक जो कुछ भी हुआ है, उसमें सबसे महत्वपूर्ण योगदान आप ही का है।

तिस्स : (हँसते हुए) जबकि मेरे विचार से भगवान बुद्ध के उपदेशों एवं शिक्षाओं का

व्यापक प्रचार एवं प्रसार आपके अनुकरणीय सहयोग से हुआ अन्यथा इतना धन-दौलत मुझे कहाँ से मिलता जो मैं भगवान बुद्ध की सेवा इतने व्यापक स्तर पर करने में समर्थ हो पाता···अतः इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आप राजा होते हुए भी एक महान उपासक हैं।

अशोक : नहीं महाराज ! यह सब आपके दुर्लभ ज्ञान का ही प्रतिफल है, अन्यथा आपके अभाव में तो शायद आज मेरा अस्तित्व ही समाप्त हो चुका होता।

तिस्स : निश्चय ही राजन् अब आप दार्शनिक बन चुके हैं और किसी भी दार्शनिक से तर्क में जीत सकना सम्भव नहीं है·· चलो हम यह मानकर चलते हैं कि हम दोनों अपने-अपने क्षेत्र में भगवान बुद्ध की सेवा में बराबर के भागीदार हैं।

पद्मावती : आप दोनों में कौन महान है, इसे आने वाले भविष्य पर छोड़ दीजिए और अब आप लोग अन्न-जल ग्रहण कीजिए।

तिस्स : बेटी, आने वाला भविष्य यही कह रहा है कि सम्राट अशोक एक महान सम्राट और ज्ञानी पुरुष के रूप में विख्यात होंगे। जहाँ तक अन्न-जल ग्रहण करने की बात है···सो फिर कभी ग्रहण करूँगा···क्योंकि आज मेरा व्रत है और व्रत की अवस्था में अन्न एवं जल दोनों का ही त्याग कर देता हूँ।···अच्छा राजन्, अब मैं आज्ञा चाहूँगा।

अशोक : जैसी आज्ञा महाराज।

अष्टम दृश्य

[सम्राट अशोक राजगद्दी पर विराजमान थे। राजसभा में सभी पार्षद अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए आज की कार्यवाही के सम्बन्ध में विचार-विमर्श कर रहे थे। इसी समय सम्राट अशोक के ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्र बौद्ध भिक्षु के रूप में अन्दर आए और सम्राट अशोक के चरणोस्पर्श उपरान्त निकट ही एक ओर खड़े हो गए।]

अशोक : आओ महेन्द्र, तुम्हारे इस रंग-रूप, पहनावे और चेहरे पर विराजमान अभूत-पूर्व शान्ति देखकर मुझे कितनी खुशी हो रही है, इसका वर्णन कर सकना मेरे लिए सम्भव नहीं है।

महेन्द्र : पिताश्री, यह सब आपका आशीर्वाद एवं भगवान बुद्ध की सेवा का फल है, अन्यथा मैं किस योग्य हूँ।

अशोक : यह तो मेरे दिल से पूछो महेन्द्र···जिस शान्ति को पाने के लिए मैं दर-दर भटक रहा हूँ, उसे तुमने इतनी अल्पायु में ही प्राप्त कर लिया···अरे मैं तो भूल

ही गया···असन्धिमित्रा नहीं आई है।

महेन्द्र : पिताश्री, यह सब आपका ही तो आशीर्वाद है···जिस शुभ कार्य के लिए आपने मेरा व मेरी बहन का चुनाव किया, उसको पूर्ण करने में यदि हम लोग सफल नहीं हुए तो असफल भी नहीं हुए। श्रीलंका, जम्बू द्वीप, आसाम, गोहाटी, सिंगापुर तथा जहाँ-जहाँ पहुँचने में मैं सक्षम हो सका, वहाँ भगवान बुद्ध के उपदेशों का प्रचार व प्रसार किया। भगवान बुद्ध की अनुकम्पा से वहाँ की अशान्त जनता ने न केवल मुझे गले से लगाया वरन् मेरे कार्य में पूरा सहयोग भी प्रदान किया। पिताश्री आपके आदेशानुसार मैंने इन सभी स्थलों पर भगवान बुद्ध की सहस्रों प्रतिमाएँ बनवाकर प्रतिस्थापित करवाई हैं, जहाँ प्रतिदिन सुबह-शाम पूजा अर्चना होती है। वहाँ की जनता एवं सरकार के सहयोग से सहस्रों स्तूपों व स्मारिकाओं का निर्माण करवाया तथा भगवान बुद्ध के उपदेशों एवं शिक्षाओं को पत्थरों, पहाड़ों पर खुदवाकर एवं जगह-जगह पर शिलालेखों की स्थापना करवाई है जिससे भगवान बुद्ध के उपदेशों एवं शिक्षाओं का जनसाधारण में प्रचार हो। जहाँ तक असन्धिमित्रा का सवाल है···पिताश्री वह तो भगवान बुद्ध में ऐसा रम गई है कि अब कोई भी माया-मोह का जाल उसे पथविचलित नहीं कर सकता है। ताजी सूचना के अनुसार असन्धिमित्रा इस समय चीन, तिब्बत एवं उसके निकटवर्ती देशों में भगवान बुद्ध के उपदेशों एवं शिक्षाओं का प्रचार व प्रसार करने में संलग्न है।

अशोक : निश्चय ही बेटा, तुमने और तुम्हारी बहन ने जीवन का असली सत्य मार्ग खोज निकाला है। बेटा, आज दुनिया यही कह रही है कि मैं कितना निर्दयी पिता हूँ जिसने अपने मासूम बच्चों को जो वनवास दिया है उसके कारण···।

महेन्द्र : पिताश्री, यह आप क्या कह रहे हैं।

अशोक : बेटे, मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वही सत्य है। वास्तव में मैंने तुम दोनों के प्रति घोर अन्याय किया है। अब मुझे उसका प्रायश्चित भी करना होगा।

महेन्द्र : पिताश्री···आपके ऐसे वचन मेरे हृदय को बेधे डाल रहे हैं। मुझे तो खुशी है कि पिताश्री ने एक आत्मविश्वास के साथ मुझे जो कार्य सौंपा था, उसे पूरा करने में मैंने आंशिक सफलता पाई है, परन्तु आपके वचनों में मुझे घोर निराशा हुई है।

अशोक : बेटे, ऐसा मत बोलो। वास्तविकता यह है कि मुझे अत्यन्त घोर दुःख एवं पश्चाताप सता रहा है। अब मैं तुमको इस राजगद्दी को सौंपने जा रहा हूँ और स्वयं भगवान बुद्ध की सेवा में अपना जीवन अर्पित करना चाहता हूँ।

महेन्द्र : पिताश्री, यह आप क्या कह रहे हैं···।

अशोक : मैं सच कह रहा हूँ, अब मुझे इस गद्दी में तनिक भी मोह नहीं रह गया है।

महेन्द्र : पिताश्री, क्षणिक भावावेश में कोई ऐसा निर्णय लेना देश, राज्य व उसमें बढ़कर जनता के प्रति विश्वासघात होगा।

अशोक : क्या मतलब'''।

महेन्द्र : पिताश्री, मेरा कहने का तात्पर्य यही है कि आपका यह निर्णय इस भरे-पूरे राष्ट्र को रसातल में मिलाकर रख देगा। मैं तो ठहरा साधू स्वभाव का आदमी'' भला जनता के साथ मैं क्या न्याय कर सकूँगा'''जबकि मुझे तो यही नही मालूम है कि न्याय और अन्याय है क्या। ऐसे शान्त चित्त वाले साधू स्वभाव के व्यक्ति को शासक बनकर जनता पर शासन करने का ज्ञान कहाँ से उपलब्ध हो सकेगा। युद्ध की विभीषिका को मेरे जैसे अहिंसा प्रेमी साधू कैसे सहन कर सकेंगे। नहीं पिताश्री नहीं, यह निर्णय न केवल देश के प्रति आघात करना होगा वरन् स्वयं मेरे साथ अन्याय होगा।

अशोक : तुम कहना क्या चाहते हो'''?

महेन्द्र : पिताश्री इसमें ऐसी कोई बात नही है, जो आपकी समझ में आई हो। आपको तो याद ही होगा कि जब भगवान बुद्ध निर्वाण प्राप्त करने के बाद पुनः राजमहल में अपने पिता, पत्नी व बच्चों से मिलने गए थे तो उनके पिता ने उन्हे गद्दी प्रदान करने की पेशकश की थी, परन्तु उन्होंने ऐसा नही किया।

अशोक : जबकि ऐसा करना चाहिए था। तुम्हें भी याद होगा कि जब भगवान राम 14 वर्ष का वनवास पूरा करके वापस लौटे थे तब उन्होंने राजगद्दी का भार सम्हाल लिया था।

महेन्द्र : निश्चय ही भगवान राम ने राजगद्दी का भार सम्भाला था, लेकिन पिताश्री वह तो भगवान विष्णु के अवतार थे, जिनका मूल उद्देश्य अत्याचारी राक्षसों का वध करना था। फिर उन्होने वन मे रहकर साधू नही बल्कि एक क्षत्रिय वंश की परम्पराओं का पालन करते हुए वही कार्य किया जो राजा को करना चाहिए। जहाँ उन्होंने राक्षसों का वध किया वही उन्होने गरीबो एवं असहाय लोगों को अत्याचारियो से मुक्ति दिलाई। इससे स्पष्ट है कि उन्होने वन में रहकर कभी भी साधुओं की भाँति जीवन का निर्वाह नही किया और न ही माया-मोह के जाल से मुक्त हुए। जबकि न तो मैं कभी वन मे रहा और न ही किसी राक्षस का वध किया। अतः इस दिशा मे कोई ज्ञान मुझे उपलब्ध नही है।

अशोक : ठीक है मैं तुम्हारी बात मान लेता हूँ। लेकिन यहाँ दूसरा पहलू यह भी है कि यदि तुम इस गद्दी का भार सँभाल लेते हो तो भगवान बुद्ध की सेवा तन-मन के साथ ही धन से भी करने मे सक्षम हो सकोगे।

महेन्द्र : नहीं पिताश्री, यह भी सम्भव न हो सकेगा। जिस व्यक्ति ने अपना सम्पूर्ण जीवन सतमार्ग की खोज मे लगा दिया हो, एकान्तवास मे रहकर निर्वाण प्राप्ति मे लगा दिया हो, उसे भला राजकाज से क्या मतलब। फिर जब उसे राजकाज का ज्ञान ही नही होगा तो उस स्थिति में राज्य मे अशान्ति, असन्तोष, विद्रोह के साथ ही अन्य समस्याओं का जन्म होगा। नही पिताश्री यह सब मुझसे सम्भव न

हो सकेगा। निश्चय ही मुझे अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए धन की आवश्यकता होगी, लेकिन मुझे विश्वास है कि इस शुभ कार्य में आपका एवं जनता का सहयोग मुझे बराबर मिलता रहेगा।

अशोक : ओह···आज मालूम हुआ कि जिस गद्दी के चक्कर में फँसकर मैं खून की होली खेलता रहा·· जिस धन-दौलत के लिए लाशों के बीच ठहाके लगाता रहा ···वह सब बेकार था···लेकिन सच क्या था···बेटे, आज उसका वास्तविक ज्ञान तुमसे प्राप्त हुआ है।

महेन्द्र : पिताश्री ऐसा अधर्म मत करें। जो बीत चुका है, आज के लिए वह अत्यन्त आवश्यक था पिताश्री। यदि बीता हुआ समय इतना दर्दीला न होता तो न आज आप सम्राट अशोक होते और न मैं भगवान बुद्ध का उपासक महेन्द्र होता। पिताश्री बीता हुआ काल हो, चाहे वह जितना ही वीभत्स क्यों न हो, आने वाले काल के लिए ज्योति बनकर उभरता रहता है। पिताश्री कल जो हुआ था वह एक सपना था, आज जो हो रहा है, वह यथार्थ है और कल जो होगा वह भविष्य है। मेरा आपसे यही निवेदन है कि आप बीते हुए कल की भाँति ही गद्दी पर आसीन रहें और भगवान बुद्ध के उपदेशों का प्रचार करने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करें। जनता को पुत्रवत प्यार करें, उनकी समस्याओं को सुनें और उनके निराकरण के उपाय खोजें, यही भगवान बुद्ध की सबसे बड़ी सेवा होगी।

अशोक : ठीक है बेटे···आज मैं एक बार पुनः हार गया। विचारों की इस लम्बी लड़ाई में तुम ही विजयी हुए। लेकिन महेन्द्र अब तुम्हें कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हें गुरु तिस्स मोगलिपुत्त की सेवा में अर्पित कर दूँगा, जिससे तुम ज्यादा से ज्यादा भगवान बुद्ध की सेवा कर सको।

महेन्द्र : पिताश्री, मुझे खुशी होगी गुरुजी की सेवा में जाकर।

[इसी समय राजदरबार में 12 वर्ष का एक खूबसूरत लड़का प्रवेश करता है। उसके चेहरे पर अजीब-सी आभा झलक रही है। आँखों में अजीब-सा आकर्षण विद्यमान है। होठों पर मन्द-मन्द मुस्कान थिरक रही थी। मानों उसके होंठ कुछ गुनगुना रहे हों। उसके हाथों में एक छोटी-सी वीणा थी, जिसके महीन तारों पर उसकी उंगलियां थिरक रही थीं।

महेन्द्र : (बालक को देखकर हँसते हुए) पिताश्री क्या यह दरबारी संगीतज्ञ है।

अशोक : नहीं महेन्द्र, यह हमारा सबसे छोटा पुत्र एवं तुम्हारा छोटा भाई है। इसका जन्म उस दिन हुआ था जब 84000 स्तूपों का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ था।

[महेन्द्र आगे बढ़कर उसे गोदी में उठाते हुए—"आओ मेरे लघु भ्राता। तुम्हें देखकर तो मैं सभी कुछ भूल बैठा हूँ।"]

बालक : पिताश्री, यह कौन हैं।

अशोक : बेटा, धर्म विवर्धन, यह तुम्हारे सबसे बड़े भाई महेन्द्र हैं।

धर्म विवर्धन : क्या वही जो भगवान बुद्ध के उपदेशों के प्रचार के लिए बाहर गए हुए थे।

अशोक : हाँ बेटा, यह वही तुम्हारे बड़े भाई हैं।

धर्म विवर्धन : अरे तो पहले क्यों नही बताया।

[इसके साथ ही वह मचल कर गोदी से उतरता है और महेन्द्र को दण्डवत प्रणाम करते हुए चरण स्पर्श कर बोला—"मुझे तो पता नहीं था, कम से कम बड़के भईया का आशीर्वाद तो ले लूँ।"]

महेन्द्र : (भाव विह्वल होकर) सदा सुखी रहो'''भगवान बुद्ध तुम्हारी कीर्ति की पताका चारो ओर फैलाते रहें।

[इसके बाद धर्म विवर्धन योगासन की मुद्रा मे बैठ जाता है और हाथों मे वीणा उठाकर उसके तारो को छेड़ देता है। इसके साथ ही उसके कण्ठ से मधुर स्वर गुंजरित हो उठे। जब उसका गीत समाप्त हो गया तो उसने एक बार पुनः महेन्द्र के चरण स्पर्श किए।]

महेन्द्र : सुन्दर'''अति सुन्दर'''कहते हुए उन्होने पुनः धर्म विवर्धन को गोद में उठा कर अपने सीने से लगा लिया।

अशोक : बेटे, तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि जितना आकर्षण इसकी आँखों मे है उससे कहीं अधिक जादू इसकी आवाज में है।

महेन्द्र : पिताश्री, आपका कहना काफी हद तक सही है। मेरे विचार से तो इसका नाम धर्म विवर्धन के स्थान पर कुणाल होना चाहिए।

अशोक : मेरा भी यही विचार है। मैं इस सम्बन्ध में गुरु तिस्स से बात करूँगा और गुरु जी की सहमति के इसके नाम का परिवर्तन करूँगा।

दृश्य परिवर्तन

[राजमहल के एक कक्ष मे महेन्द्र गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए योगासन की मुद्रा मे बैठा हुआ था। उसके पास ही तिष्यरक्षिता, असन्धिमित्रा, कारुवाली, विदिशा एवं पद्मावती बैठी हुई है।]

तिष्यरक्षिता : बेटा, तुम्हारे आ जाने से हम लोगो की समस्या का समाधान हो गया है, अन्यथा हम लोग तो यही समझ रही थी कि वह दिन दूर नही जब हम लोगों को दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर होना पड़ता।

असन्धिमित्रा : यही नही बेटा, स्थिति तो यहाँ तक पहुँच चुकी है कि राजकोष पूरा का

पूरा खाली होता जा रहा है और सम्राट को इस बात की जरा भी चिन्ता नहीं है। बस वह तो प्रतिदिन लाखों मुद्राएँ भगवान बुद्ध के भक्तों को दान कर रहे हैं।

तिष्यरक्षिता : (हँसते हुए) अरे करें भी क्यों न आखिर अपने पापों का प्रायश्चित जो करना है।

विदिशा : मेरी तो यही समझ मे नहीं आता कि राजा ने कौन-सा पाप किया है। फिर वह तो क्षत्रिय है और क्षत्रिय का धर्म कर्म केवल राज्य एवं राज्य की जनता के लिए होता है। निश्चय ही इस उद्देश्य के लिए एवं राज्य की सीमा विस्तार के लिए राजा युद्ध करेगा और उसमे खून-खराबा होगा फिर कैसा पाप और कैसा प्रायश्चित। मैं तो कहती हूँ कि महाराज के ऊपर जादू टोना कर दिया गया है।

महेन्द्र : माँश्री, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि आप लोग कहना क्या चाहती हैं।

तिष्यरक्षिता : इसमें न समझने वाली बात नहीं है बेटे। देखो न भगवान बुद्ध का ऐसा नशा सम्राट पर छा चुका है कि उन्हें राज काज की कोई चिन्ता नही है। अब तुम ही इस राजगद्दी का भार सम्भालो अन्यथा वह दिन दूर नही जब हम सभी को दरिद्रता का जीवन बिताने को बाध्य होना पड़ेगा।

महेन्द्र : तो यह बात है, आप लोगो में पिताश्री के विरुद्ध विद्रोह की भावना विकसित होती जा रही है।

तिष्यरक्षिता : अगर यह हमारा विद्रोह है तो तुम्हारी दृष्टि में सम्राट जो कुछ कर रहे वह राजहित में उचित है।

महेन्द्र : मैं इस सम्बन्ध मे अपना कोई मत व्यक्त करने मे असमर्थ हूँ। हाँ इतना अवश्य कहूँगा कि चूँकि मैं भी बौद्ध भिक्षुक हूँ अतः पिताश्री के कार्यों की आलोचना नही कर सकता। वैसे सामान्य दृष्टिकोण से तो मेरी विचारधारा यही है कि पिताश्री जो कुछ कर रहे हैं, वह जनता के लिए कर रहे हैं और भगवान बुद्ध की शिक्षा भी यही कहती है कि जनता के कल्याण के लिए किया गया कार्य ही सबसे बड़ा राज-कार्य है।

तिष्यरक्षिता : चलो मैं तुम्हारी बात मान लेती हूँ। लेकिन अब हम लोगों का उद्देश्य यह है कि तुम यह भगुआ वस्त्र उतार कर राजसी वस्त्र धारण करके राजगद्दी का भार सम्भाल लो।

महेन्द्र : नहीं माँश्री अब मैं अपने को इस योग्य नहीं पा रहा हूँ कि इस राज्य की राजगद्दी का हकदार बन सकूँ। भगवान बुद्ध की उपासना ही मेरे जीवन का मात्र ध्येय है। इस सम्बन्ध मे मैंने अपना फैसला पहले ही पिताश्री को सुना दिया है।

तिष्यरक्षिता : वही हुआ जिसकी मुझे पहले से ही आशंका थी।

महेन्द्र : क्या मतलब।

तिष्यरक्षिता : अरे यही तो तेरे पिता चाहते थे कि तुम राजगद्दी का भार ग्रहण करने

में असमर्थता प्रगट कर दो, जिससे वह अपनी मनमानी करते रहें। यही कारण था कि उन्होंने तुम्हें बाल्यावस्था में ही इतना कठोर दण्ड दिया।

महेन्द्र : दण्ड ! मेरे तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है कि आप किस दण्ड की बात कर रही हैं।

तिष्यरक्षिता : स्पष्ट है कि बाल्यावस्था में जबकि बच्चों की उम्र खेलने खाने की होती है, तुम्हें ऐसे मुहिम पर भेज दिया, जिससे तुम्हारे मन में राजगद्दी की चाहत न रहे और तुम इस राजगद्दी का भार सम्हालने में असमर्थता व्यक्त कर सको।

महेन्द्र : मांश्री, आपका दृष्टिकोण मुझे उचित नहीं प्रतीत होता है। पिताश्री ने जो कार्य मुझे सौंपा मैंने पूरी निष्ठा से उसको पूरा किया। मैंने भगवान बुद्ध की सेवा करके जो शिक्षा पायी है, उससे राजकाज की ओर से मेरा आकर्षण खत्म हो चुका है। मैं एक भिक्षु हूं और भिक्षाटन करके भगवान बुद्ध की सेवा करते हुए ही जीवन यापन करना मेरा मूल उद्देश्य है।

[इसी समय महेन्द्र के छोटा भाई उज्जैनी व तिवाला का कक्ष में प्रवेश हुआ और वह भी महेन्द्र के निकट आकर उसके चरण-स्पर्श करते हुए उसके निकट बैठ गए।]

असन्धिमित्रा : तो इसका मतलब यही है कि तुम राजगद्दी का भार सम्हालने में असमर्थ हो।

महेन्द्र : मांश्री, असमर्थ नहीं बल्कि अयोग्य हूँ।

असन्धिमित्रा : ठीक है, यदि तुम नहीं सम्हालना चाहते तो तुमसे छोटे भाई इस कार्य को करें तो तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं होगी।

उज्जैनी : कौन-सा कार्य मांश्री।

असन्धिमित्रा : अरे बेटा, इन्होंने राजगद्दी का भार सम्हालने में असमर्थता व्यक्त कर दी है। तेरे पिता की दान-प्रवृत्ति के कारण राजकोष खाली होता जा रहा है। इसलिए हम लोग चाहते है कि सम्राट अशोक को पदच्युत करके तुम लोगों में से कोई भी राजगद्दी का भार ग्रहण करे। चूंकि महेन्द्र से छोटे तुम हो, अतः तुम्हीं राजगद्दी के सर्वप्रथम अधिकारी बनते हो।

उज्जैनी : मांश्री, आपके मुंह से ऐसे शब्द शोभा नहीं देते। पिताश्री के रहते मैं राजा बनूं यह नियमाविरुद्ध ही नहीं बल्कि घोर अन्याय है।

तिष्यरक्षिता : तेरे पिता ने ही कौन-सा अच्छा काम किया है और अब भी जो कर रहे हैं वह कौन-सा अच्छा कार्य है ?

उज्जैनी : मांश्री इस बात का फैसला करने के अधिकारी हम तुम नहीं बल्कि देश की जनता है। आज जनता की जुबान पर एक ही नाम है…हर धर्म चार बार केवल एक ही नाम दोहराता है…और वह नाम है सम्राट अशोक। फिर ऐसे समर्थन

प्राप्त शासक को आप क्यों पदच्युत करना चाहती हैं ?

असन्धिमित्रा : सवाल जनसमर्थन का नही बल्कि राज्य का है और उससे बढ़कर राज-कोष का है। राज्य की सेना की जंग लग रही तलवारों का है···राज्य की गिरती अर्थव्यवस्था का है···क्या तुम नही देख रहे हो कि राजकोष की क्या स्थिति है।

उज्जैनी : माँश्री, इसकी चिन्ता आपको नहीं बल्कि पिताश्री को करना है। यह जितना सुख-वैभव एवं धन सम्पदा है, पिताश्री की ही देन है। उन्होंने इस खजाने को संग्रहीत करने के लिए जनता पर जो जुल्म ढाए थे, उसका अहसास जब उन्हें हुआ तो उन्होंने जनता को अपना समझकर जनता के हितों के लिए राजकोष से धन व्यय किया जिसे किसी भी दशा में अपव्यय नही कहा जा सकता है।

असन्धिमित्रा : तो इसका तात्पर्य यह है कि तुम सभी लोग अपने पिताश्री द्वारा किए जा रहे कार्यों का पूरा समर्थन करते हो। वैसे जनहित मे किए जा रहे कार्यों का तो मैं भी समर्थन करती हूँ लेकिन बौद्ध धर्म पर जो व्यय किया जा रहा है, उसे जनहित का कार्य नही कहा जा सकता है।

उज्जैनी : मैं आपके इस विचार मे थोड़ा बहुत सहमत हूँ लेकिन केवल इस बात के लिए पिताश्री के विरुद्ध आवाज उठाने का कोई उद्देश्य नही प्रतीत होता है। हम लोगों को तो चाहिए कि हम सभी लोग पिताश्री के कार्यों मे अपना पूर्ण योगदान प्रदान करें। फिर महेन्द्र भइया को ही देखिए न···बौद्ध धर्म को ग्रहण करने के पश्चात अब वह तन-मन-धन आदि सभी प्रकार के माया-मोह के जाल से मुक्त होकर पिताश्री के शुभ कार्यों मे अपना किस कदर योगदान प्रदान कर रहे हैं।

तिष्यरक्षिता : तुम सभी लोग मूर्ख हो। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम लोग गद्दी पर बैठना नही चाहते। लेकिन मैं इतना बतला दूँ कि एक दिन तुम सभी लोग हाथ मलते रह जाओगे और धर्म विवर्धन इस गद्दी को हथिया कर···।

उज्जैनी : माँश्री, इसमें पछताने की क्या बात है। यदि वास्तव मे धर्म विवर्धन इतने बड़े राष्ट्र को चलाने में सक्षम हैं तो हम लोगो को कोई आपत्ति नही है। फिर वह मेरा भाई ही है कोई दुश्मन नही।

महेन्द्र : निश्चय ही धर्म विवर्धन मे अद्भुत शक्तियाँ है, जिनका विवेचन करना असंभव है। उन अद्भुत शक्तियो को देखते हुए ही मैंने पिताश्री को यह सुझाव दिया है कि धर्म विवर्धन का नाम बदलकर कुणाल कर दिया जाए।

तिष्यरक्षिता : ऐसा प्रतीत होता है कि तुम लोगों पर ऐसा जादू कर दिया गया है जिससे तुम लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी है और कुछ सोचने-समझने की क्षमता नही रह गयी है।

विदिशा : दीदी···मेरे विचार से तो महेन्द्र की शादी कर दी जाए तभी वह राज-काज के बारे मे सोचने मे सक्षम हो पाएगा।

महेन्द्र : शादी और मैं···राम···राम···राम···मुझे तो अब कुँआरा रहकर ही भगवान

बुद्ध की सेवा करनी है···हाँ इस उज्जैनी की अवश्य शादी कर दीजिए, जिससे इसमें सोचने समझने की शक्ति आ जाए।

तिष्यरक्षिता : अरे, तो तू क्या शादी भी नही करेगा।

महेन्द्र : सवाल ही नही उठता माँ···अगर शादी हो गयी तो मेरा व्रत विखण्डित हो जाएगा।

असन्धिमित्रा : महेन्द्र, अब तक मैं बहुत बर्दाश्त करती रही हूँ लेकिन अब मुझसे तेरा यह नाटक बर्दाश्त नही हो रहा है। तू कान खोलकर सुन ले, मैं अपने जीते-जी ऐसा नही होने दूंगी। तुझे तो क्या तेरे बाप को भी शादी करनी पड़ेगी।

महेन्द्र : (हँसते हुए) माँ, पिताश्री की एक नहीं कई शादी हो चुकी हैं···क्या अब फिर उन्हें दूल्हा बनाने का इरादा है।

असन्धिमित्रा : ठीक है, तू खूब बातें बना ले···इस समय तो मैं जा रही हूँ लेकिन इतना बतलाए दे रही हूँ कि तुझे शीघ्र ही शादी करनी पड़ेगी।

तिष्यरक्षिता : बेटे, माँ को इस तरह नाराज नही करना चाहिए।

महेन्द्र : मैंने कहाँ नाराज किया है, वह तो खुद ही नाराज हो गयी।

तिष्यरक्षिता : बेटा हम लोग जो भी कहेंगी तेरे भले के लिए ही कहेंगी। एक तो 15 वर्ष से अधिक का बनवास भोगा है और अब हाथ आ रही राजगद्दी को भी ठुकरा रहा है और अब जब तेरी माँ तेरी शादी करना चाहती है तब तू उसे भी इन्कार कर रहा है। तू तो भगवान राम से भी आगे निकल रहा है। उन्होंने 14 वर्ष के बनवास के बाद राजगद्दी का भार ग्रहण कर लिया था।

महेन्द्र : माँश्री, मैं भगवान राम नही हूँ। वह तो भगवान विष्णु के अवतार थे। उन्होंने जन्म ही इसलिए लिया था कि इस पृथ्वी एवं पृथ्वी पर बसने वाले दीन-दुखियो के दुःखों का हरण करके राक्षसों का वध करें। माँश्री यही कारण था कि वन में रहकर भी उन्होने संन्यासी-सा जीवन न बिताकर राजकुमारों जैसा जीवन व्यतीत किया और राक्षसो का नाश किया। जबकि माँ मैं भगवान बुद्ध की शिक्षाओं और उपदेशों का उपासक हूँ जिनका मुख्य उपदेश अहिंसा है। इस उपदेश के अन्तर्गत किसी को मारने की अपेक्षा उसे सुधारने मे विश्वास रखा जाता है। उसे इस बात की शिक्षा दी जाती है कि ऐसे कार्य जो मानव विरोधी हैं, जो करना पाप है और ऐसे कार्यों से केवल अपना नुकसान होता है वरन् सम्पूर्ण मानव जाति के तिरस्कार का भागी बनना पडता है।

तिष्यरक्षिता : निश्चय ही तू ज्ञानी महात्मा बन गया है। फिर भी एक अनुभवी नारी होने के नाते मैं इतना अवश्य कहूँगी कि महाराज अशोक का दिमाग खराब हो गया है।

महेन्द्र : पिताश्री के प्रति ऐसी भावना रखना उचित नहीं है। पिताश्री ने अपनी मेहनत, दूरदर्शिता, शौर्यता एवं बाहुबल की ताकत से ही यह सब कुछ पाया है। अतः उनके

महेन्द्र : गुरु महाराज, मेरा भी यही निवेदन है कि आप मुझे अपने सरक्षण में रखने की अनुमति प्रदान करें, जिससे मैं भगवान बुद्ध के उपदेशो को भली-भांति समझकर उनकी सेवा कर सकूं।

तिस्स : ठीक है, यदि तुम लोग मुझे इस योग्य समझते हो तो निश्चय ही मैं तुम्हें अपना पूरा संरक्षण प्रदान करने को तैयार हूँ।

महेन्द्र : महाराज, मैं एक और निवेदन करना चाहता हूँ।

तिस्स : बोलो बेटे।

महेन्द्र : मैं अपने लघु भ्राता का नाम धर्म विवर्धन के स्थान पर कुणाल रखना चाहता हूँ।

तिस्स : निश्चय ही तुम्हारे द्वारा दर्शाया गया नाम अति उत्तम है। यह नाम इस बालक के अनुरूप है। मैं तुम्हारी इच्छा से सहमत हूँ।

अशोक : मेरी इच्छा है कि पाटलीपुत्र में भगवान बुद्ध का एक विशाल मठ बनवाया जाए, जिसमे भगवान बुद्ध की विशाल प्रतिमा स्थापित करवायी जाए।

तिस्स : राजन्, निश्चय ही आपका प्रस्ताव जनहित मे है लेकिन···।

अशोक : लेकिन क्या।

तिस्स : राजन्, जब से राजकोष से बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार हेतु दान देने की प्रथा विकसित हुई है, बौद्ध धर्म के पुजारियो मे अनुशासनहीनता आती जा रही है। विलासिता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है। भगवान बुद्ध के नाम पर यह लोग राजकीय धन का दुरुपयोग सुरा एवं सुन्दरी पर कर रहे है।

अशोक : मुझे भी इसी प्रकार की शिकायतें सुनने में मिली है। लेकिन भगवान बुद्ध का भक्त होते हुए मैं इस दिशा में कोई कठोर कार्यवाही बिना आपके परामर्श के करने मे सक्षम नही हूँ। फिर भी मैं यही चाहता हूँ कि ऐसी कुप्रथा का विकास बौद्ध धर्म मे न हो अन्यथा आने वाला इतिहास हमे कदापि माफ नही करेगा। इस दिशा में आपको प्रभावी प्रयास करना चाहिए।

तिस्स : राजन्, मैं एक सन्यासी हूँ और सन्यासी कोई भी कठोर कार्यवाही करने में सक्षम नही होता, लेकिन जब राजा का संरक्षण किसी धर्म को मिलता है तो उस धर्म मे आ रही विसगतियों पर अकुश लगाने का दायित्व भी राजा का ही होता है।

अशोक : मैं आपकी बात से सहमत हूँ। आप जैसा भी सुझाव इस दिशा में देंगे, मैं उसका स्वागत करूँगा। आप ऐसा करें कि आप और महेन्द्र मिलकर एक संगठन बना लें और उस संगठन के माध्यम से आप सभी प्रकार की दण्डात्मक, सुधारात्मक कार्यवाही करने में सक्षम होगे। इस संगठन को पूरी राजकीय मान्यता प्रदान की जाएगी और मुझे विश्वास है कि यह संगठन बौद्ध धर्म में आ रही विसंगतियों को दूर करने में सफल सिद्ध होगा।

महेन्द्र : गुरु महाराज, मैं पिताश्री के प्रस्ताव से सहमत हूँ। अब हम दोनों मिलकर इस दिशा में कठोर कार्यवाही सुनिश्चित करेंगे।

कार्य में किसी प्रकार का दखल देने का अधिकार हम लोगों को नहीं है।

तिष्यरक्षिता : ठीक है, जब तुम लोगों की धारणा यही है तो मुझे ही क्या पड़ी है। हाँ, मैं इतना अवश्य कहूँगी कि तुम धर्म विवर्धन से बचकर रहना अन्यथा'''

महेन्द्र : वह क्यों माँ‌श्री ?

तिष्यरक्षिता : वह जादूगर है बेटा। उसकी आँखों में जितना आकर्षण है, उससे कहीं अधिक उसकी आवाज मे जादू है।

महेन्द्र : यह तो और भी अच्छी बात है। कहते हुए महेन्द्र ठठाकर हँस पड़ा।

दृश्य परिवर्तन

अशोक : गुरु महाराज ! महेन्द्र के आ जाने से मुझे अपार शान्ति का अनुभव हो रहा है लेकिन इसने मेरी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया है। मैंने सोचा था कि अब मैं सन्यास ग्रहण करके भगवान बुद्ध की सेवा करूँगा'''परन्तु मुझे काफी दुःख है कि महेन्द्र ने मेरे प्रस्ताव को ठुकरा दिया है।

तिस्स : राजहित ही सर्वहित है राजन्। फिर महेन्द्र मे अब वह गुण है भी कहाँ जो वह राज काज के दायित्व को निभा सके। मुझे महेन्द्र जैसे बौद्ध अनुयायी पर तो अभिमान है, जिसने भगवान बुद्ध की सेवा के लिए राजगद्दी तक को त्याग दिया''' तमाम माया मोह के जाल से मुक्ति पाकर भगवान बुद्ध की सेवा ही सच्ची सेवा है।

अशोक : तो आप भी महेन्द्र के प्रस्ताव से सहमत हैं।

तिस्स : क्षमा करें राजन् महेन्द्र का प्रस्ताव जनकल्याण की दिशा के साथ ही भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के प्रसार के लिए एक नया ही नहीं वरन् एक साहसी कदम है। मैं महेन्द्र द्वारा लिए गए निर्णय से पूर्णतया सहमत हूँ।

अशोक : आपका आदेश मेरे लिए सर्वोपरि है। अब मेरी एक प्रार्थना है। आशा है आप स्वीकार करेंगे।

तिस्स : राजन्, आप मुझे लज्जित कर रहे हैं। मेरे लायक जो भी सेवा हो निःसंकोच कहिए।

अशोक : मैं चाहता हूँ कि आप महेन्द्र को अपना पूरा संरक्षण प्रदान करें।

तिस्स : राजन्,'''मैं मात्र एक तुच्छ प्रचारक हूँ। महेन्द्र ने इस दिशा में न केवल अच्छा अनुभव प्राप्त किया है, वरन् ज्ञान भी हासिल किया है। अतः मेरे विचार से महेन्द्र को स्वयं अपनी इच्छा से कार्य करने दिया जाए। मैं सदैव उन्हें पूरा सहयोग देने का आश्वासन देता हूँ।

अशोक : लेकिन'''

तिस्स : राजन्, आप निश्चिन्त रहिए। महेन्द्र की योग्यताओं पर आपको पूरा विश्वास करना चाहिए।

महेन्द्र : गुरु महाराज, मेरा भी यही निवेदन है कि आप मुझे अपने संरक्षण में रखने की अनुमति प्रदान करें, जिससे मैं भगवान बुद्ध के उपदेशों को भली-भांति समझकर उनकी सेवा कर सकूं।

तिस्स : ठीक है, यदि तुम लोग मुझे इस योग्य समझते हो तो निश्चय ही मैं तुम्हें अपना पूरा संरक्षण प्रदान करने को तैयार हूँ।

महेन्द्र : महाराज, मैं एक और निवेदन करना चाहता हूँ।

तिस्स : बोलो बेटे।

महेन्द्र : मैं अपने लघु भ्राता का नाम धर्म विवर्धन के स्थान पर कुणाल रखना चाहता हूँ।

तिस्स : निश्चय ही तुम्हारे द्वारा दर्शाया गया नाम अति उत्तम है। यह नाम इस बालक के अनुरूप है। मैं तुम्हारी इच्छा से सहमत हूँ।

अशोक : मेरी इच्छा है कि पाटलीपुत्र में भगवान बुद्ध का एक विशाल मठ बनवाया जाए, जिसमें भगवान बुद्ध की विशाल प्रतिमा स्थापित करवायी जाए।

तिस्स : राजन्, निश्चय ही आपका प्रस्ताव जनहित में है लेकिन…।

अशोक : लेकिन क्या।

तिस्स : राजन्, जब से राजकोष से बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार हेतु दान देने की प्रथा विकसित हुई है, बौद्ध धर्म के पुजारियों में अनुशासनहीनता आती जा रही है। विलासिता अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी है। भगवान बुद्ध के नाम पर यह लोग राजकीय धन का दुरुपयोग सुरा एवं सुन्दरी पर कर रहे हैं।

अशोक : मुझे भी इसी प्रकार की शिकायतें सुनने में मिली हैं। लेकिन भगवान बुद्ध का भक्त होते हुए मैं इस दिशा में कोई कठोर कार्यवाही बिना आपके परामर्श के करने में सक्षम नहीं हूं। फिर भी मैं यही चाहता हूँ कि ऐसी कुप्रथा का विकास बौद्ध धर्म में न हो अन्यथा आने वाला इतिहास हमें कदापि माफ नहीं करेगा। इस दिशा में आपको प्रभावी प्रयास करना चाहिए।

तिस्स : राजन्, मैं एक सन्यासी हूँ और सन्यासी कोई भी कठोर कार्यवाही करने में सक्षम नहीं होता, लेकिन जब राजा का संरक्षण किसी धर्म को मिलता है तो उस धर्म में आ रही विसंगतियों पर अंकुश लगाने का दायित्व भी राजा का ही होता है।

अशोक : मैं आपकी बात से सहमत हूँ। आप जैसा भी सुझाव इस दिशा में देंगे, मैं उसका स्वागत करूंगा। आप ऐसा करें कि आप और महेन्द्र मिलकर एक संगठन बना लें और उस संगठन के माध्यम से आप सभी प्रकार की दण्डात्मक, सुधारात्मक कार्यवाही करने में सक्षम होंगे। इस संगठन को पूरी राजकीय मान्यता प्रदान की जाएगी और मुझे विश्वास है कि यह संगठन बौद्ध धर्म में आ रही विसंगतियों को दूर करने में सफल सिद्ध होगा।

महेन्द्र : गुरु महाराज, मैं पिताश्री के प्रस्ताव से सहमत हूँ। अब हम दोनों मिलकर इस दिशा में कठोर कार्यवाही सुनिश्चित करेंगे।

नवम् दृश्य

[राजदरबार मे सम्राट अशोक सिंहासनारूढ़ थे। राजदरबार के विशाल कक्ष मे मान्य पार्षदगण अपने-अपने स्थान पर विराजमान थे तथा द्वार रक्षक एवं अन्य प्रहरी हाथो मे नंगी तलवारें लिए हुए कतार मे खड़े हुए थे। इसी समय सेनापति जयदत्त अपने स्थान पर खड़े हो गए।]

जयदत्त : महाराज, हमारे राज्य की जनता के कुछ वर्ग हममे असन्तुष्ट हैं। उनके कुछ चुने हुए प्रतिनिधि आपसे वार्ता करना चाहते हैं।

अशोक : आश्चर्य···महान आश्चर्य···हमारे राज्य की जनता और असन्तुष्ट आखिर ऐसा कौन-सा कारण है, जिससे यह प्रतिनिधि मिलना चाहते हैं। क्या जनसेवा में कुछ कमी आ गयी है अथवा···।

जयदत्त : नही महाराज, ऐसी कोई बात नही है। कुछ धार्मिक विरोधाभास को लेकर यह प्रतिनिधि आपकी सेवा मे अपनी कुछ समस्याएँ आपके सम्मुख रखना चाहते है।

अशोक : ठीक है। उन्हें राजदरबार मे उपस्थित किया जाए।

[कुछ ही क्षणों बाद कुछ व्यक्ति कक्ष मे प्रवेश करते हैं। इनमे अधिकाशतः साधु वर्ग के लोग हैं परन्तु कुछ इन साधुओं से भिन्न धर्मों के अनुयायी जैसे ब्राह्मण, जैन आदि हैं।

अशोक : तो आप लोगों की अपनी धार्मिक समस्याएँ हैं, जिनको आप मेरे समक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं।

साधू : राजन्! आप हमारे अन्नदाता हैं। एक राजा का धर्म होता है कि वह अपने राज्य मे सभी वर्गों एवं धर्मों को समान रूप से पालन करने में अपना योगदान दे।

अशोक : क्या किसी धर्म को विधर्म करने का भी प्रयास हमारे राज्य मे चल रहा है।

अनुयायी : निश्चय ही प्रत्यक्ष रूप मे नही लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से एक विशेष धर्म को छोड़कर सभी धर्म पतनमार्ग की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

ब्राह्मण : हाँ राजन्, इसमे कोई सन्देह नही है कि आज स्थिति यह आ गयी है कि राज्य की जनता का ब्राह्मणों पर से विश्वास ही उठ गया है। सामाजिक संस्कारो में ब्राह्मणों के योगदान को भावना को ठेस लगी है। आज सिर्फ एक ही धर्म हर जुबान पर है और वह है बौद्ध धर्म।

साधू : यही नही राजन्, आज जनता की धार्मिक भावनाओ में जो परिवर्तन आ रहे हैं उनमे हमारे देवी-देवताओं का रूठना स्वाभाविक प्रतीत हो रहा है। आज न तो यज्ञ हो रहा है और न हवन। पूजा-पाठ पर से तो लोगों का विश्वास ही उठ गया है। यही नहीं साधुओं को आज जनता भिक्षा तक देने से कतरा रही है।

अनुयायी : और इसका कारण सिर्फ बौद्ध धर्म को राजनीतिक संरक्षण का प्राप्त होना है। बौद्ध धर्म के प्रचार व प्रसार में जो राजकीय मान्यता के साथ प्रचुर मात्रा में धन उपलब्ध कराया जा रहा है, उसी कारण सिर्फ यह धर्म फूल रहा है, अन्यथा इसके पूर्व इस देश मे सभी धर्मों का बोलबाला था।

अशोक : तो यह बात है। निश्चय ही मैंने बौद्ध धर्म को संरक्षण दिया है, जानते हो क्यों ···इसलिए कि बौद्ध धर्म की शिक्षाओं से मुझे काफी शान्ति मिली है इसलिए यह मेरा अपना व्यक्तिगत धर्म है। जहाँ तक बौद्ध धर्म को राजकीय मान्यता देने का प्रश्न है···राजकीय स्तर पर किसी को बाध्य नहीं किया गया है कि वह बौद्ध धर्म अथवा उसकी शिक्षाओं को ग्रहण करें बल्कि उसकी शिक्षाओं एवं उपदेशों के प्रचार में राजकीय कोष से कुछ आर्थिक योगदान अवश्य दिया गया है। चूंकि बौद्ध धर्म हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका है और उसी की शिक्षाओं के अनुरूप मैंने जनहित में जनता के कार्यों के लिए अपना पूरा जीवन अर्पित कर दिया है। इसके बावजूद मैंने ऐसा कोई आदेश नही दिया है कि किसी अन्य धर्म के साथ कोई शोषणात्मक नीति अपनायी जाए अथवा उसके प्रचार मे कोई बाधा पहुँचाई जाए।

ब्राह्मण : निश्चय ही एक राजा को किसी धर्म विशेष को प्रोत्साहन अथवा उसे राजनीतिक स्तर से मान्यता देने का कोई औचित्य नही है।

अनुयायी : यदि राजा ही किसी धर्म विशेष का अनुयायी बन जाएगा तो वह प्रजा की सेवा निःस्वार्थ भाव से करने मे कभी सक्षम सिद्ध नही हो सकेगा। मैं आपके पास इस उद्देश्य से आया हूँ कि जिस तरह का राजनीतिक संरक्षण आपने बौद्ध धर्म को दिया है, उसी प्रकार का राजनीतिक संरक्षण अन्य धर्मों को भी प्रदान किया जाए। अन्यथा हो सकता है कि आपके राज्य में विद्रोह की भावना को जागृत···।

अशोक : सम्राट अशोक इस प्रकार की चेतावनी सुनने का आदी नहीं है। यह भगवान बुद्ध की शिक्षा का ही फल है, जो तुम्हारी चेतावनी का तुम्हें दण्ड नहीं मिल सका और सम्राट अशोक तुम्हारी भावनाओं का आदर करते हुए इस बात की स्पष्ट घोषणा करता है कि सम्राट अशोक के राज्य में केवल वही धर्म रहेगा जिसका मूल उद्देश्य मानव-सेवा के साथ ही मानव को सही दिशा दिखाने में सक्षम हो। यदि तुम लोगों का आरोप बौद्ध धर्म को राजनीतिक संरक्षण देने का है, तो यह भी सुन लो कि सम्राट अशोक के राज्य मे अब केवल एक ही धर्म है और वह धर्म है मानव धर्म। इसी मानव धर्म के अन्तर्गत समस्त जीव-जन्तुओं को संरक्षण देना, उनकी सुख-सुविधाओं को देखना भी हमारा कर्त्तव्य है क्योंकि पृथ्वी पर मौजूद समस्त जीव-मानव के समान ही है। हमारे राज्य मे मानव-हत्या जैसा ही अपराध जीव हत्या को भी समझा गया है। भगवान बुद्ध की इन्ही शिक्षाओ से प्रभावित होकर भले ही मैंने राजकीय कोष से सहायता दी हो परन्तु

अभी तक उसे राजकीय मान्यता नहीं प्रदान की गयी है।

अनुयायी : राजन्, यही सब तो हमारा धर्म भी कहता है। हमारे धर्म मे भी जीव हत्या को पाप समझा गया है, माँस-मदिरा के सेवन को वर्जित किया गया है।

ब्राह्मण : हाँ राजन्, हमारे ब्राह्मण धर्म में तो इससे भी बढ़कर धर्म का विवरण दिया गया है। चल और अचल दोनों को ही जीवात्म के रूप में देखा गया है। जल, वायु, सूर्य और चाँद आदि को हमने देवताओं के रूप में पूज्यनीय पाया है। जन्म से मृत्यु तक मानव की सेवा करने के साथ ही सत्मार्ग दिखाने मे इसी सम्बन्ध मे उपदेश देने का भी प्राविधान हमारे ग्रन्थों मे किया गया है। फिर सबसे प्राचीन धर्म ब्राह्मणवाद का परिहास उड़ाना क्या उचित है।

अशोक : अर्थात् तुम्हारा धर्म भी वही कहता है, जो बौद्ध धर्म कहता है। जब सभी की शिक्षाओं एवं उपदेशों का सार एक ही है, फिर यह विद्रोह कैसा।

अनुयायी : निश्चय ही हमारी शिक्षाएँ अधिकांशतः बौद्ध धर्म के अनुरूप है, लेकिन कुछ असमानताएँ भी है, जिसके कारण विद्रोह की उत्पत्ति हुई है।

अशोक : मैं जानता हूँ वह असमानता क्या है। अर्थात तुम कहना चाहते हो कि हमारे राज्य मे वस्त्र धारण की प्रथा समाप्त कर दी जाए…हर स्त्री-पुरुष वस्त्रहीन हो जाए…ब्राह्मणवाद यह चाहता है कि स्त्रियों का शोषण पूर्व की भाँति होता रहे और उसे पुरुषों के समान अधिकार प्रदान न किए जाए…जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न अवसरों पर ब्राह्मण अपने कर्मकाण्डी प्रवचनों की बदौलत जनता को चूसते रहे…यदि तुम लोगों का उद्देश्य यही है तो निश्चय ही मैं इसका विरोधी हूँ। फिर भी मैं किसी धर्म विशेष पर प्रतिबन्ध नहीं लगाता यदि कोई बौद्ध धर्म ग्रहण करना नहीं चाहता तो उसे राजनीतिक स्तर से बाध्य नहीं किया जाएगा। यदि तुम अपने धर्म के प्रचार के लिए जन समर्थन जुटाने मे समर्थ हो तो निश्चय ही तुम्हें पूरी छूट है। लेकिन यदि धर्म की आड़ लेकर किसी प्रकार की साम्प्रदायिक भावना विकसित करने का प्रयास करोगे तो न तो इस देश का शासक तुम्हें माफ करेगा और न ही इस देश की जागरूक जनता ऐसे किसी विद्रोही तत्वों को बर्दाश्त करेगी।

अनुयायी : लेकिन महाराज, हम लोग भी बौद्ध धर्म की तरह राजनीतिक संरक्षण प्राप्त करना चाहते हैं, जिसमे हम अपने धर्म की शिक्षाओं एवं उपदेशों का प्रचार व प्रसार कर सकें।

अशोक : मैं पहले ही कह चुका हूँ कि हमारे देश में हर धर्म, हर सम्प्रदाय एवं हर वर्ग का पूरा राजनीतिक संरक्षण प्राप्त है और यदि उनका उद्देश्य राजहित मे उपदेश देना एवं शिक्षाओं का प्रसार करना है तो हमारा पूरा सहयोग प्राप्त होगा। जहाँ तक बौद्ध धर्म को राजकीय सहायता प्रदान करने का प्रश्न है इस सम्बन्ध में आप लोगों को सूचनार्थ बतला दूँ कि न केवल इन्हें राजकीय स्तर मे सहायता उपलब्ध

करायी जा रही है वरन् अनेकानेक सामाजिक संस्थाएँ भी स्थापित हो गयी है जो स्वयं धन की व्यवस्था करके बौद्ध धर्म के विकास को बल दे रही हैं। बौद्ध धर्म का प्रत्येक भिक्षुक आज हमारे राज्य के सामाजिक आर्थिक विकास में निःशुल्क श्रम-दान करके पूरा सहयोग दे रहा है।

अनुयायी : मैं आपकी इस बात से सहमत नही हूँ। जब आपने पहले राजकीय स्तर से अरबो रुपयों की सहायता,उपलब्ध करा दी है तब कही जाकर जनता के कुछ वर्गों ने ऐसी सामाजिक सस्थाओं की स्थापना की। इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि वह आपको आपके द्वारा किए जा रहे कार्यों के प्रति अपना योगदान इसलिए प्रदान कर रहे थे कि वह अन्य स्रोतों से अधिक-से-अधिक लाभार्जन करते रहे। प्रायः ऐसे वर्गों में व्यापारिक वर्ग ही आता है अन्यथा साधारण जनता के पास इतना पैसा कहाँ है जो वह इस प्रकार की संस्थाओं को अनावश्यक रूप से दान दे सके।

अशोक : निश्चय ही मैं इस धर्म पर अरबों रुपया व्यय कर चुका हूँ और अभी और कितना व्यय होगा, इसका मूल्याकन करना सम्भव नही है। लेकिन जो भी रुपया व्यय हुआ है, वह निहित स्वार्थों पर नही व्यय हुआ बल्कि उसका अधिकांश भाग जनहित के कार्यों पर व्यय हुआ है। जैसे अस्पतालों, स्कूलों, सराय निर्माण, छायादार वृक्षों का आरोपण, निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था, पशु चिकित्सालयों आदि के निर्माण पर जो भी धन व्यय हुआ है, भले ही भगवान बुद्ध की शिक्षाओं से प्रेरित होकर व्यय हुआ हो, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से यह सब जनता के लिए, जनता की सुख-सुविधा को दृष्टिगत रखते हुए व्यय किया गया है। मैं आप लोगों को यह भी सूचनार्थ बतला दूँ कि सूखे आदि से निपटने, देश का खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने के लिए सिंचाई की उत्तम व्यवस्था के उद्देश्य से जगह-जगह नहरों, तालाबों का निर्माण कराए जाने की वृहद योजना तैयार की जा चुकी है और इस योजना में हमारे बौद्ध भिक्षुगण निःशुल्क श्रमदान करके इसे पूरा करने के लिए वचनबद्ध हो चुके हैं।

अनुयायी : ठीक है, निश्चय ही यह कार्य जनहित मे किए गए हैं, लेकिन बौद्ध मठों के निर्माण, शिलालेखों द्वारा बौद्ध धर्म के उपदेशों का प्रचार, स्तूपो आदि का निर्माण एवं शैक्षणिक सस्थाओ मे बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का प्रसार आदि में कहाँ जनता का हित-निहित प्रतीत होता है।

अशोक : तुम्हारे इस प्रकार के सवाल हमारी क्रोधाग्नि को भडकाने मे सक्षम हैं और मैं जानता भी हूँ कि यही तुम्हारा उद्देश्य है, जिससे क्रोध में आकर कुछ ऐसा दण्ड दे बैठूं जिससे जनता का समर्थन तुम्हे प्राप्त हो जाए। लेकिन बौद्ध शिक्षा एवं उपदेशो का ही फल है, जिसमे मुझे क्रोध नही बल्कि तुम लोगों की बुद्धि पर तरस आ रहा है। खैर, भले ही प्रत्यक्ष रूप से बौद्ध मठों, शिलालेखों एवं स्तूपों से जनता

का भला न हो लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से जनता को शिक्षित करने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम अवश्य है। इससे जनता को इस बात का अहसास हो सकता है कि मानव धर्म क्या है और उसका किस प्रकार पालन किया जाना चाहिए।

अनुयायी : आपकी इन बातों से साफ अहसास हो रहा है कि आप अन्य किसी धर्म के विकास मे अपना कोई योगदान नहीं देना चाहते हैं।

अशोक : सवाल ही नही उठता। यदि तुम्हारा धर्म मानवता का पुजारी है तो आर्थिक और राजनीतिक दोनों ही प्रकार का योगदान मेरी ओर से प्रदान किया जाएगा। परन्तु यदि इसके पीछे साम्प्रदायिकता की गन्ध आती प्रतीत होगी तो हमारे राज्य के नियम भी बड़े ही कठोर हैं।

अनुयायी : ठीक है, आपकी चेतावनी मुझे याद रहेगी। सम्भावना है कि शीघ्र ही हमारी मुलाकात पुनः होगी।

अशोक : मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। लेकिन अब जब कभी आना तो अपने गुरू को लेकर आना। वैसे मेरी सलाह यही है कि हमारे मानवतावादी धर्म को स्वीकार कर लो। यह किसी व्यक्ति विशेष का धर्म नहीं बल्कि यह एक राष्ट्रीय धर्म है और मेरा उद्देश्य भी राष्ट्र के सभी धर्मों की उत्कृष्ट शिक्षाओं एवं उपदेशों को एक सूत्र में पिरोकर एक नये धर्म का विकास करना है, जिससे हमारे राष्ट्र मे किसी भी प्रकार का धार्मिक मनमुटाव अथवा साम्प्रदायिक भावना विकसित न हो सके।

दशम् दृश्य

[राजकुमार कुणाल (धर्म विवर्धन) अब 16 वर्ष की उम्र पार करके 17वों में पहुँच चुका था। उम्र के साथ ही उसकी आँखो का जादुई आकर्षण और भी बढ गया था। जो भी उसकी आँखों को देखता, उसी का हो जाना चाहता था। उम्र के साथ ही उसकी आवाज मे विशेष आकर्षण आ गया था। उसकी वाणी में अमृत घुला प्रतीत होता था। विशेष रूप से जब वह वाद्य यंत्रो के साथ खेलता हुआ किसी सुगम गीत का गायन करता था तो स्त्री-पुरुषों की बात तो दूर, पशु-पक्षी उसके सम्मोहन मे बिंध जाते थे। उसकी आँखो के भँवर जाल मे सुर की सम्मोहिनी आवाज से सम्मोहित कितनी ही नौयौवनाओं ने उसे अपना सर्वस्व निछावर करना चाहा.परन्तु राजकुमार कुणाल से ऐसा करने से इन्कार करते हुए उपदेशो के माध्यम से उन नवयौवनाओं की जागृत इच्छाओं को सुप्त कर दिया।

उसी राजकुमार कुणाल की जादूभरी आवाज इस समय उसके कक्ष से

गुंजरित होकर वातावरण में बिखर रही थी। द्वार के निकट कितनी ही दासियाँ खड़ी उसकी सम्मोहिनी जादुई आवाज से सम्मोहित होकर मूर्तिवत्-सी हो गयी थीं।

जब राजकुमार कुणाल का सुगम संगीत अपने यौवन पर पहुँच चुका था, वीणा के तारों पर अँगुलियाँ थिरक रही थी, तभी रानी तिष्यरक्षिता ने कक्ष मे प्रवेश किया। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे किसी जादुई शक्ति से सम्मोहित होकर उसके पैर अनायास ही राजकुमार कुणाल की ओर बढते जा रहे हों। उसकी आँखों में लाल डोरे पैदा हो चुके तथा पैरों में कम्पन का आभास स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा था। वह स्वप्निल भाव से निरन्तर आगे बढ़ती हुई कुणाल के पीछे जा पहुँची। परन्तु कुणाल इन सब बातो से बेखबर अपने संगीत में इस कदर खोया हुआ था कि उसे आभास ही नही हो सका कि कोई नारी उसकी दासी बनकर उसके पीछे खड़ी हुई है। चौंका तब जब उसने अपने गले मे किसी की बाँहों का स्पर्श पाया। उसने जब मुड़कर पीछे की ओर देखा तो अवाक्-सा बैठा का बैठा रह गया।]

कुणाल : माँश्री, आप और इस समय।

तिष्यरक्षिता : नही कुणाल, मैं तुम्हारी माँ नही···।

कुणाल : माँश्री, यह आप क्या कह रही है···आप तो···।

तिष्यरक्षिता : मैं सच कह रही हूँ प्रिये। तुम्हारी मोहिनी जादूगरी वाणी और आँखों के सम्मोहन ने मेरे शरीर को अंगारों से दहका दिया है। अब मैं और बर्दाश्त नही कर पाऊँगी।

कुणाल : माँ···।

तिष्यरक्षिता : माँ नही···प्रिये कहो···अब मैं तुम्हारी माँ नहीं तुम्हारे चरणों की दासी हूँ···कहते हुए उसने कुणाल को अपने आगोश में भरना चाहा।

कुणाल : माँश्री, आपका स्वास्थ्य ठीक नही प्रतीत होता है, आपका शरीर तप रहा है। आपको आराम की सख्त जरूरत है। आप आराम कीजिए मैं वैद्य जी को बुलाकर लाता हूँ।

तिष्यरक्षिता : हाँ प्रिये···मेरा शरीर आग का शोला बन चुका है और इस आग को केवल तुम्हीं शान्त कर सकते हो···आओ प्रिये···अब और विलम्ब न करो···समय बहुत कम है।

कुणाल : माँश्री, भला इस तपते शरीर को मैं कैसे शान्त कर सकता हूँ। मैं ठहरा एक गायक···वैद्य तो हूँ नही···आपकी बीमारी का···!

तिष्यरक्षिता : (हँसते हुए)···अरे बुद्धू इस आग को तुम जैसा पुरुष ही शान्त कर सकता है ··वैद्य तो क्या भगवान भी आ जाएँ, वह भी इस आग को शान्त करने में सक्षम नही होंगे।

कुणाल : (असमंजसपूर्ण मुद्रा में) माँश्री, मेरी तो समझ में नहीं आ रहा है कि आप कहना क्या चाहती है।

तिष्यरक्षिता : (हँसते हुए) ऐसा मालूम पड़ता है कि तू निरा बुद्धू ही है, कहते हुए तिष्यरक्षिता खिलखिलाकर हँस पड़ी और अपने वस्त्र को उतारते हुए बोली—"ठीक है मैं ही तुझे बताती हूँ।"

कुणाल : माँश्री···यह आप क्या कर रही है, कहते हुए बरबस ही उसकी आँखें बंद हो उठी।

तिष्यरक्षिता : अरे अब तुम बार-बार माँ क्यों कहते हो···अब तो मैं तुम्हारी अर्द्धांगिनी बनने जा रही हूँ···अर्थात तुम्हारे चरणो की दासी।

कुणाल : नही माँ·· ऐसा मत कहिए···आप मेरी माँ है···देवी है और एक देवी···।

तिष्यरक्षिता : प्रिये, मैंने माँ-बाप के सारे रिश्ते-नातों को तोडकर ही तुम्हारे कक्ष में प्रवेश किया है। अब मैं तुम्हारी माँ नही बल्कि अपने प्रीतम की दासी हूँ। कहते हुए तिष्यरक्षिता ने कुणाल का हाथ पकड़ कर इस प्रकार खीचा कि वह सीधा तिष्यरक्षिता की बाँहो मे समाता चला गया।

कुणाल : अरे·· आप यह क्या कर रही हैं।

तिष्यरक्षिता : प्रिये···अब मुझसे बर्दाश्त नही हो रहा है···मैं···मैं···तुम्हारे जिस्म का एक अंग बन जाना चाहती हूँ···तुम्हारे साथ दूर चांद-सितारो मे विचरण करने के लिए मेरा शरीर तड़फ रहा है।

कुणाल : (बिदककर अलग होते हुए) नही माँ···नही···यह पाप है···मैं ऐसा नही कर सकता।

तिष्यरक्षिता : प्रिये, ऐसा मत कहो···इस रात के अँधेरे में हम तुम दोनो अन्धकार मे खो जाना चाहते है···बस एक बार···हम तुम···

कुणाल : माँश्री, पाप, पाप ही कहलाता है, चाहे वह रात के अँधेरे मे किया जाए या दिन के उजाले मे···फिर माँ···आप मेरे पिता की सबसे प्रिय रानी हैं···और अपने ही बेटे के साथ ऐसा करना क्या शोभा देता है।

तिष्यरक्षिता : प्रिये, यह समय उपदेश देने का नही बल्कि मेरे जिस्म मे लगी आग को शान्त करने का है।

कुणाल : मैं आपको उपदेश नही दे रहा हूँ···जाइए आपको इस समय आराम की सख्त जरूरत है···यदि नींद न आए तो पिताश्री के पास चली जाएँ···मेरे पिताश्री इतने सक्षम हैं कि वह आपके जिस्म की आग को ठण्डा कर सकें।

तिष्यरक्षिता : समझते क्यो नही प्रिये···क्या मैं खूबसूरत नही हूँ···क्या मैं नारी नही हूँ···क्या मुझमे आकर्षण नही है···आखिर मुझमे क्या कमी है?

कुणाल : माँश्री, इसमें कोई सन्देह नही है कि आप एक स्वप्न सुन्दरी हैं और एक नारी भी हैं। परन्तु आपके नारी के रूप मे इस समय मेरे समक्ष एक माँ खडी हुई है और

एक माँ का इस तरह वासना के अधीन हो जाना उसके नारीत्व को कलंकित करके रख देता है। माँ, आप मेरी बात मान जाइए और···।

तिष्यरक्षिता : तो क्या मुझे ऐसे ही प्यासी रहकर वापस जाना होगा।

कुणाल : माँश्री, अच्छा होता कि आप पिताश्री के पास चली जाइए।

तिष्यरक्षिता : कुणाल अपनी सुन्दरता, अपने आकर्षण और अपनी आवाज के जादू पर इतना घमण्ड हानिकर भी हो सकता है। पता नही तुम अपने आपको क्या समझ रहे हो···आज तुमने मेरा नही बल्कि सम्पूर्ण नारी जाति का अपमान किया है।

कुणाल : नही माँ, मैंने नारी जाति की रक्षा की है। यही नही एक बेटा होने के नाते अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ।

तिष्यरक्षिता : अरे मूर्ख···एक अद्वितीय सुन्दरी अपना सब कुछ देने को तत्पर हो रही है वह दे रही है जिसे पाने के लिए लोग तरसते है और एक तुम हो···कि उस अद्वितीय अप्सरा का ही अपमान कर रहे हो।

कुणाल : माँश्री, मैं आपका अपमान नही कर रहा हूँ। फिर जो कुछ आप मुझे देना चाहती हैं, वही आप पिताश्री को क्यों नही दे रही हैं। फिर उस चीज को पाने के अधिकारी भी तो पिताश्री ही है।

तिष्यरक्षिता : हैं नही, वे···अब उनमें इतनी शक्ति कहाँ रह गयी है जो···।

कुणाल : माँश्री, आप मेरे पिता का अपमान कर रही हैं···।

तिष्यरक्षिता : ठीक है मैं समझ गयी कि तुम वास्तव में पुरुष नहीं हो। यह जो सुन्दरता का आवरण तुमने पहन रखा है, वह मात्र दिखावा है। ठीक है जिस प्यास को लेकर आयी थी, यही सोचकर बिना बुझाए जा तो रही हूँ लेकिन याद रखना एक प्यासी नारी और एक घायल नागिन का क्रोध बड़ा ही भयानक होता है।

कुणाल : लेकिन आप नारी से बढ़कर एक माँ हैं। फिर माँ तो अपने बच्चों पर क्रोध करने का पूरा अधिकार रखती है।

तिष्यरक्षिता : तुम निरन्तर जितना अपमानित करना चाहो कर लो···लेकिन मैंने भी तुम्हारी इन जादुई आँखों को तुम्हारे अंग से निकाल कर न फेंक दिया तो मेरा नाम तिष्यरक्षिता नही है।

कुणाल : यदि मेरी आँखों से आपको इतनी ही चिढ़ है तो निश्चय ही उन्हे निकलवा कर फेंकने का अधिकार भी माँ को है। आखिर यह शरीर भी तो माँ ही ने बनाया है, अतः अंग-भंग का अधिकार सदैव ही उसके पास सुरक्षित रहना चाहिए।

तिष्यरक्षिता : ओह आँखों से भयानक तो जुबान है···इसे भी निकलवाकर फेंकना ही पड़ेगा अन्यथा···।

[इसके साथ ही क्रोध मे फुफकारते हुए तिष्यरक्षिता कक्ष से बाहर चली गयी।]

ग्यारहवाँ दृश्य

[इधर कई दिनों से सम्राट अशोक अस्वस्थ चल रहे थे, परन्तु उन्होंने इस बात का आभास तक नहीं होने दिया और जनहित में अपने को राजकार्यों में लिप्त रखा। भगवान बुद्ध की सेवा में इतने मग्न हो गए थे कि उन्हें स्वयं भी इस बात का आभास नहीं हो रहा था कि वास्तव में वह बीमार भी हैं। परन्तु बीमारी खामोश नहीं रहती। जिसको लग जाती है, उसके शरीर को इतना जर्जर कर देती है कि उसका शरीर स्वयं चीख उठता है कि वह बीमार है। यही स्थिति सम्राट अशोक के साथ उस समय हुई जब वह महेन्द्र के साथ बैठे हुए बौद्ध धर्म में आ रही कुरीतियों को दूर करने के सम्बन्ध में विचार-विमर्श कर रहे थे।]

महेन्द्र : पिताश्री, आपका स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा है, आखिर इसका क्या कारण है।

अशोक : बेटे, मुझे कुछ नहीं हुआ है, तुम आगामी कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करो।

महेन्द्र : नहीं पिताश्री, आप मुझसे छुपा रहे हैं···आपको अवश्य कोई बीमारी लग गई है जिसे आप छुपाना चाहते हैं···पिताश्री, आपको अपना विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि न केवल पूरे देश का भार आप पर है वरन् वर्तमान समय में बौद्ध धर्म की नींव आप पर ही टिकी है।

अशोक : लेकिन मुझे कुछ हुआ हो तब न।

महेन्द्र : पिताश्री, आपका चेहरा बता रहा है कि आप बीमार हैं। पिताश्री बीमारी कभी भी खामोश नहीं रहती है चाहे रोगी कितना ही उसे छिपाने का प्रयास करे।

अशोक : बेटे, तुम्हें इस सम्बन्ध में चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। यह एक यथार्थ और सत्य है कि जो भी जीव पृथ्वी पर जन्मता है, उसे एक दिन मरना भी होता है। और यह मौत बीमारी के ही कारण होती है। मुझे इस बात का स्पष्ट आभास हो रहा है कि मेरा अन्तिम समय निकट आ गया है। अतएव इस सम्बन्ध में तुम्हें परेशान होने की आवश्यकता नहीं है।

महेन्द्र : पिताश्री, यह तो आत्महत्या का प्रयास है···

अशोक : नहीं, यह आत्महत्या का प्रयास नहीं बल्कि मुझे ऐसी बीमारी लग चुकी है जो कि लाइलाज है और ऐसी बीमारी से ग्रस्त मानव का अन्त भी कम भयानक नहीं होता। फिर मृत्यु तो एक सत्य है और बीमारी मात्र एक कारण होता है। चूँकि इस बीमारी का कोई इलाज नहीं है अतः इसके इलाज पर पैसा व्यय करना निरर्थक है। मेरा विचार तो यह है कि जो पैसा इस लाइलाज बीमारी पर खर्च किया जाए यदि उसी को बौद्ध धर्म के प्रचार में लगाया जाए तो···।

महेन्द्र : पिताश्री, आप बौद्ध धर्म के प्रचार अथवा उसकी प्रगति की चिन्ता छोड़ दें···

इसके लिए मैं अपने स्तर से प्रयास कर रहा हूँ, आप निःसंकोच होकर अपना इलाज कराइए···जहाँ तक मुझे ज्ञान है ऐसी कोई बीमारी नहीं है जिसका इलाज सम्भव न हो। मैं अभी तत्काल राजकीय वैद्य को बुलवाता हूँ। यदि इसके लिए देश-विदेश के वैद्यों को बुलाने की आवश्यकता हुई तो···।

अशोक : गुरु महाराज, आप ही महेन्द्र को समझाइए···

तिस्स : राजन् ! मैंने आपकी पूरी बातें सुन ली हैं और महेन्द्र द्वारा कही गयी बातों का मैं पूरा समर्थन करता हूँ। यदि आप इस विचार से कि भगवान बुद्ध की शिक्षाओं एवं उपदेशों के प्रचार से वशीभूत होकर अपना इलाज नहीं करवाना चाहते हैं तो इससे न केवल भगवान बुद्ध को कलंकित होना पड़ेगा वरन् स्वयं बौद्ध धर्म के साथ ही मुझे भी अपयश प्राप्त होगा। यदि पैसे की ही बात है तो आप निश्चित मानिए कि अब बौद्ध धर्म के नाम पर आपसे एक पैसा नहीं लिया जाएगा।

अशोक : यह आप क्या कह रहे हैं महाराज।

तिस्स : मैं सच कह रहा हूँ···हम सभी भिक्षुगण भिक्षा माँग कर धन एकत्र करेंगे। आप केवल बौद्ध धर्म के लिए हत्या न करें।

अशोक : मैं आत्महत्या नहीं कर रहा हूँ बल्कि ···।

तिस्स : भले ही प्रत्यक्ष रूप में आप आत्महत्या नहीं कर रहे हैं ···लेकिन वास्तविकता यही है कि आप आत्महत्या करना चाहते हैं और इसी कारण आप अपना इलाज नहीं करवाना चाहते हैं। भगवान बुद्ध ने आत्महत्या करना अथवा आत्महत्या के लिए किसी माध्यम को तलाश करना दोनों ही स्थितियों को पाप बताया है।

अशोक : गुरु महाराज, आप समझने का प्रयास क्यों नहीं करते। मुझे वास्तव में जो रोग लगा है, उसका कोई इलाज है ही नहीं।

तिस्स : मैं भी जानता हूँ राजन् कि आपको व्याधि का रोग लग चुका है, लेकि यह कहना कि उसका कोई इलाज नहीं है, गलत है। कोई भी रोग इलाज योग्य है अथवा नहीं इसका फैसला वैद्य ही कर सकता है, रोगी नहीं। अतः आपको सर्वप्रथम इसका परीक्षण कराना चाहिए था। परन्तु इस विलम्ब के कारण मुझे आशंका है कि आपको महाव्याधि का रोग लग चुका है अथवा लगने वाला है।

[इसी समय कक्ष में महेन्द्र ने राजवैद्य को लेकर प्रवेश किया।]

महेन्द्र : वैद्यराज, देखिए पिताश्री को क्या हो गया है। दिन पर दिन इनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। इन्हें तो इसका कोई खयाल ही नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है पिताश्री स्वयं अपने को मौत के हवाले कर देना चाहते हैं।

वैद्य : (सम्राट अशोक का परीक्षण करने के बाद) बेटा, अब तो बहुत देर हो चुकी है। राजन् को महाव्याधि का रोग हो गया है। यदि इसका समय से उपचार करवाया

गया होता तो ठीक हो सकता था परन्तु अब यह बीमारी लगभग लाइलाज हो चुकी है।

महेन्द्र : क्या मतलब।

वैद्य : क्षमा करना बेटे···बहुत विलम्ब से मुझे खबर भिजवाई गई है अन्यथा अब तक मैं इस रोग पर नियंत्रण पा चुका होता।

महेन्द्र : तो इसका मतलब अब पिताश्री को···।

वैद्य : नहीं बेटे, ऐसा मत कहो। मैं पूरा प्रयास करूँगा कि इस बीमारी का कोई इलाज सोचा जा सके। वैसे इस बीमारी का एक इलाज अवश्य है।

महेन्द्र : वह क्या।

वैद्य : यदि महाराज प्याज एवं उसके अर्क का सेवन करें तो इस रोग का निदान सम्भव है।

अशोक : नहीं वैद्यजी। मैं क्षत्रिय हूँ और क्षत्रिय प्याज-लहसुन नहीं खाते। मैं अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में भी ऐसा अधर्म नहीं होने दूँगा।

महेन्द्र : लेकिन पिताश्री यह तो दवा है।

अशोक : नहीं, यह दवा नहीं बल्कि धर्म को विधर्म करने का एक माध्यम है। मैं ऐसा कदापि नहीं कर सकता।

महेन्द्र : ठीक है वैद्यजी, आप कोई दूसरा इलाज ढूँढ़िए भले ही कितना ही धन क्यों न व्यय हो। पिताश्री का स्वस्थ होना नितान्त आवश्यक है।

दृश्य परिवर्तन

[धीरे-धीरे सम्राट अशोक का स्वास्थ्य गिरता ही चला गया। अब तो उन्हें उठने-बैठने चलने-फिरने तक में काफी असुविधा होती थी परन्तु अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के माध्यम से वह अब भी राजकाज में अपना पूरा योगदान दे रहे थे। इस समय सम्राट अशोक अपने कक्ष में लेटे हुए आराम कर रहे थे। उनके पास रानी पद्मावती, तिष्यरक्षिता, असन्धिमित्रा के बाद ही महेन्द्र, दशरथ तथा अन्य पुत्र-गण बैठे हुए थे।]

अशोक : महेन्द्र, अब मेरा अन्त समय निकट आ गया है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरे ठीक सामने मौत खड़ी हुई मुझे बुला रही है। बेटा मैंने जहाँ पापों से अपनी झोली भर रखी है, वहीं कुछ पुण्य भी किए हैं। पता नहीं मुझे उस पुण्य का कोई फल मिलेगा भी या नहीं।

महेन्द्र : पिताश्री आप इतना विचलित न हों, मुझे विश्वास है कि आपको कुछ नहीं होगा। फिर पद्मावती जैसी माँ, तिष्यरक्षिता जैसी पतिव्रता नारी मौजूद हो, वहाँ मौत को भी आने में भय लगेगा। मेरी सलाह तो यही है कि आप बिलकुल निश्चिंत

होकर आराम कीजिए। इस रोग के उपचार के लिए मैंने दूर-दूर से वैद्यों को बुलाया है।

पद्मावती : यही तो मैं भी कहती हूँ लेकिन इन्हें तो बस एक ही…।

तिष्यरक्षिता : मैं तो कहती हूँ कि ऐसी कोई बीमारी नही है जिसका इलाज न हो। भले ही इसका इलाज दवा से न हो लेकिन एक पतिव्रता नारी अपने तप से मौत पर भी विजय पा सकती है। मैं महाराज की कुशलता एव उनके जीवन के लिए तप करूँगी तथा इनकी मौत से संघर्ष करके इन्हे मौत के शिकंजे से मुक्त कराने का पूरा वायदा करती हूँ।

महेन्द्र : धन्य हो माँ। जहाँ आप जैसी सती नारी मौजूद हो वहाँ मौत का आना सम्भव ही नही है।

अशोक : बेटे आने वाले कल पर कोई भविष्यवाणी करना असम्भव है। मेरे सामने तो बस एक ही चिन्ता है।

पद्मावती : चिन्ता…कैसी चिन्ता।

अशोक : कुणाल…हाँ कुणाल की ही चिन्ता है…मैं चाहता हूँ कि अपने जीते-जी उसका विवाह करके अपने समस्त दायित्वों से मुक्ति पा लूँ।

महेन्द्र : आप बिल्कुल बेफिक्र रहें पिताश्री। मैं आज ही पुरोहित से बात करूँगा।

अशोक : राजपुरोहित से बात हो चुकी है। लगन तिथि भी निश्चित हो चुकी है परन्तु घोषणा होना शेष है। चूँकि मुझे ऐसी बीमारी लग चुकी है, जिसके कारण मैं इस शुभ कार्य को सम्पन्न करा सकने मे पूर्णरूपेण असमर्थ हूँ। अतः मैं चाहता हूँ कि तुम इस कार्य को जितनी जल्द सम्भव हो सके पूरा करा दो।

तिष्यरक्षिता : महाराज अभी कुणाल की शादी की इतनी क्या जल्दी है। फिर आपके स्वास्थ्य को ध्यान मे रखते हुए कुणाल की शादी करना उचित नहीं होगा। जब आप स्वस्थ हो जाएँ तभी इस कार्य को पूरा कराएँ।

अशोक : हो सकता है, तुम्हारा विचार सही हो, लेकिन मान मर्यादा भी तो कुछ होती है…मैंने बहुत पहले ही कुणाल के लिए एक लड़की ढूंढ ली है। उसका नाम कांचनलता है। कांचन अत्यन्त सुन्दरी ही नही बल्कि साधू स्वभाव की घरेलू नारी है। इस सम्बन्ध मे मैंने लगभग सभी औपचारिकताएँ पूर्ण कर दी ही है।

तिष्यरक्षिता : आश्चर्य है…कुणाल की शादी की रस्म इतने गुपचुप तरीके से आपने कर ली और मुझे इसकी खबर तक नही लगी।

अशोक : हाँ…यह इसलिए किया गया क्योंकि राजकुमार कुणाल की आयु छोटी होते हुए भी उसके आकर्षण से कुछ लड़कियाँ उसे पथ विचलित कर सकती हैं… इसीलिए यह कार्य शीघ्रता से करने के उद्देश्य से किया गया। मैं नही चाहता कि मेरे पुत्र पर कोई किसी प्रकार का आक्षेप करे।

महेन्द्र : माँश्री पिताजी ने जो कुछ किया है उचित ही है। मैं पिताश्री की बात से सहमत

हूँ अतः अब इस मामले में किसी प्रकार के तर्क-वितर्क की आवश्यकता नहीं महसूस होती है।

पद्मावती : लेकिन तिष्यरक्षिता मैंने तो तुमसे बतला दिया था कि राजकुमार कुणाल के लिए लड़की देख ली गयी है और शीघ्र ही शादी होने वाली है।

महेन्द्र : पिताश्री, आप निश्चित होकर आराम कीजिए। हम लोग निर्धारित तिथि पर ही इस कार्य को सम्पन्न करा देंगे और वर-वधू आपसे आशीर्वाद प्राप्त करने आएँगे।

अशोक : बस अब मुझे कोई चिन्ता नही रह गयी है।

[निर्धारित तिथि पर राजकुमार कुणाल का विवाह सम्पन्न हो गया। इस अवसर पर पूरे राज्य मे जहाँ खुशियाँ मनाई गई वही राजमहल मे हजारों बौद्ध भिक्षुओं को भोजन एवं दान दिया गया। विवाहोपरान्त राजकुमार कुणाल अपनी पत्नी कांचनलता के साथ अपने पिताजी सम्राट अशोक से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उनके कक्ष मे गए जहाँ सम्राट अशोक, रानी तिष्यरक्षिता एव परिवार के अन्य सदस्यो के साथ मौजूद थे।

कुणाल : पिताश्री, आप इस अवसर पर भी नहीं आए। कम-से-कम अपनी बहू को आशीर्वाद देने के लिए ही आ जाते हैं।

अशोक : (रुग्ण स्वर में) बेटे मैं अब इस योग्य नही रह गया हूँ कि किसी भी सामाजिक कार्य में भाग ले सकूँ। तुम दोनों एक सूत्र मे बँध गए, यह मेरे लिए अत्यन्त खुशी की बात है। जहाँ तक मेरे आशीर्वाद का प्रश्न है, मेरा सदैव यही आशीर्वाद है कि तुम दोनो सदा सुखी रहो···फलोफूलो और अपना यश चारो दिशाओं में सम्राट अशोक के समान ही फैलाओ। *भगवान बुद्ध सदैव तुम्हारी हर इच्छा की पूर्ति करें* यही मेरी भगवान बुद्ध से प्रार्थना है।

कुणाल : पिताश्री, अब आपका स्वास्थ्य कैसा है?

अशोक : बेटे ··शीघ्र ही भगवान बुद्ध की शरणं गच्छामि मे जाने वाला हूँ।

कुणाल : पिताश्री, ऐसे शब्द नही बोलने चाहिए। भगवान बुद्ध से तो मेरी यही प्रार्थना है कि मेरी पूरी आयु आपको देकर मुझे अपनी शरण मे बुला ले।

कांचनलता : (सम्राट अशोक के चरण स्पर्श करते हुए) पिताजी धृष्टता के लिए क्षमा चाहूँगी···मेरी भी यही प्रार्थना है कि हम दोनों की आयु को लेकर आपको स्वास्थ्य प्रदान करने में योगदान दें।

अशोक : बेटी, *अभी से तुम लोगों को ऐसा व्रत नही लेना चाहिए···यह तो मेरे पापों* का दण्ड है···हर इन्सान को चाहे वह राजा हो या रंक, अपने कर्म के अनुरूप किए पाप एवं पुण्य का फल भोगना ही पडता है। इसलिए तुम लोग मेरी चिन्ता मत करो। अपने वैवाहिक जीवन को सुखी बनाने की दिशा मे उत्कृष्ट कार्य करो··· जिससे आने वाला इतिहास यह बता सके कि सम्राट अशोक से महान उसका बेटा

कुणाल एवं कांचनलता थी।

कुणाल : पिताश्री, आपके आदेश का पालन करना मेरा परम कर्तव्य है'''लेकिन आप भी वायदा कीजिए कि भविष्य में कभी भी ऐसी बात नहीं कहेंगे जिससे हम लोगों को दुःख एवं क्लेश पहुँचे। पिताश्री आप जैसे महान और पराक्रमी शासक, जिससे चाँद और सूरज तक थर्राते हैं, जिसने जनकल्याण के कार्यों के लिए अपना सारा राजकोष निछावर कर दिया एवं भगवान बुद्ध के उपदेशों के प्रचार के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन को उसकी सेवा में अर्पित कर दिया हो, वह कभी भी पापी नहीं हो सकता है। यदि अनजाने में कोई पाप हो भी गया हो तो भी इतने जनहित कार्यों को दृष्टिगत रखते हुए उनका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता।

कांचनलता : फिर पिताश्री आप जैसे पराक्रमी शासक के मुँह से ऐसी बातें विशेष रूप मे पाप-पुण्य वाली बातें कदापि शोभा नहीं देतीं।

अशोक : बेटी तुम्हारा कथन सही है, लेकिन मन में छिपी चिन्गारी रह-रहकर सुलगती रहती है, जिससे मुझे शान्ति नहीं मिल पाती। खैर, यह लो अपना उपहार। कहते हुए सम्राट अशोक ने रत्नजटित हार निकालकर कांचनलता को दे दिया।

कांचनलता : पिताजी, इसकी क्या आवश्यकता है। मैं तो सिर्फ आपका आशीर्वाद ही चाहती हूँ, एक महान पराक्रमी और वीर शासक का आशीर्वाद जिसने'''।

अशोक : बेटी, इसे मैंने इसीलिए सँभालकर रख छोड़ा था कि कुणाल की होने वाली पत्नी को भेंट करूँगा। इसे अपने गले में पहन लो।

तिष्यरक्षिता : कुणाल, महाराज को आराम की सख्त आवश्यकता है। मैं चाहती हूँ कि अब तुम लोग जाओ। भगवान बुद्ध ने चाहा तो महाराज शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएँगे।

कुणाल : जैसी आज्ञा माँश्री।

बारहवाँ दृश्य

[रानी तिष्यरक्षिता अपने कक्ष मे आदमकद शीशे के सामने बैठी हुई किसी गहन सोच-विचार में डूबी हुई थी। यदा-कदा अपने चेहरे पर आते जाते भावो को शीशे मे देख लेती थी। अपने चेहरे पर आए भावों को आदमकद शीशे मे देखते हुए बरबस ही बड़बड़ा उठी''''कुणाल'''कुणाल'''तुझसे मैं ऐसा भयंकर बदला लूँगी कि'''

तभी तिष्यरक्षिता का प्रतिबिम्ब शीशे मे उभरता है'''हा'''हा'''हा'''हा'''तू कुणाल से कब से बदला लेना चाहती है'''हा'' हा'''ऐसी प्रतिज्ञा करने से क्या फायदा तिष्यरक्षिता जो एक दिन तेरे लिए ही अभिशाप बन जाए।]

तिष्यरक्षिता : काश मैं यहां की शासक होती तो…।

प्रतिबिम्ब : जब शासक होती तब न…अब तो कुणाल तेरी सौतन भी ले आया है… हा' 'हा…हा…*अब देखना जब कुणाल तेरी करतूत उसे बताएगा*…।

तिष्यरक्षिता : नहीं…नहीं… कुणाल ऐसा नहीं कर सकता। ऐसा होने के पहले ही मैं उसे मरवा दूंगी।

प्रतिबिम्ब : अरे मूर्ख…तू तो ऐसे कह रही है जैसे तूने उसे मरवा ही दिया…फिर कुणाल को ऐसा करने से कौन रोक सकता है… खैर मना जो तेरी काली करतूत उसने सम्राट अशोक को अभी तक नहीं बताई। देख तिष्यरक्षिता, अभी भी समय है तुझे कुणाल से माफी मांग लेनी चाहिए। और उस काली रात मे जो कुछ हुआ उसे भूल जाना ही तेरे लिए हितकर है।

तिष्यरक्षिता : माफी और मैं…हा ''हा…हा…तू तो ऐसे कह रही है जैसे मैं कोई अपराधिनी हूँ जो उस मामूली से छोकरे से माफी मांगूं। देख, तू भी कान खोलकर सुन ले ''फिर कभी ऐसी सलाह देने की कोशिश की तो तेरा सर कलम कर दूंगी, *समझी। रहा कुणाल का प्रश्न उसे अपनी सुन्दरता पर बड़ा ही गर्व है…उसे अपने* यौवन पर बड़ा घमण्ड है…देख लेना एक दिन उसे अपने कर्मों की सजा भुगतनी ही पड़ेगी।

प्रतिबिम्ब : उसे या तुझे…वास्तविकता तो यह है कि तुझे अपनी सुन्दरता…अपने रूप …और…विशेष रूप मे अपने यौवन पर बड़ा अभिमान था…चूंकि उसने इस घमण्ड को तोड़ दिया है इसलिए…।

तिष्यरक्षिता : हां…उसने मेरे रूप…मेरी सुन्दरता और मेरे यौवन का उपहास उड़ाया है ''उसने मेरा ही नहीं सम्पूर्ण नारी जाति का अपमान *किया है* ' और इस अपमान का बदला…।

प्रतिबिम्ब : लेकिन तिष्यरक्षिता, यह क्यों भूलती हो कि उसने एक मां की ममता…एक मां की पवित्रता को ध्यान मे रखते हुए तुम्हें देवी का स्तर भी प्रदान कर दिया है।

तिष्यरक्षिता : देवी…नहीं…नहीं…उसने मुझे…।

प्रतिबिम्ब : तिष्य भूल जा उस अपमान को…मेरी सलाह मान और कुणाल से माफी मांग ले अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि इस सुलगती आग में तू ही जलकर भस्म हो जाए।

तिष्यरक्षिता : नहीं…मैं उससे कभी भी माफी नहीं मागूंगी बल्कि एक दिन वह खुद ही गिड़गिड़ाता हुआ माफी मांगेगा।

प्रतिबिम्ब : ठीक है…मैं उस दिन का इन्तजार करूंगी।

दृश्य परिवर्तन

[रानी तिष्यरक्षिता दिन-रात सम्राट अशोक की एक पतिव्रता नारी की तरह सेवा करती रही। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह सती सावित्री की तरह सम्राट और मृत्यु के साथ संघर्ष कर रही हो। इसके बावजूद विजय किसकी होगी, इसका निर्णय अभी तक नहीं हो सका था क्योंकि सम्राट अशोक की हालत दिन-पर-दिन गिरती ही जा रही थी। रानी तिष्यरक्षिता ने देश-विदेश से वैद्य, हकीमों को बुलाकर सम्राट अशोक के रोग का परीक्षण कराया। जहाँ वह वैद्य एवं हकीमों द्वारा बताए गए मार्गों को प्रशस्त करती थी, वहीं भगवान बुद्ध से सम्राट के प्राणों की भीख माँगती हुई घण्टों भूखी-प्यासी स्तुति करती रहती थी।

धीरे-धीरे समय बीतता गया, उसी के साथ रानी तिष्यरक्षिता की तपस्या और त्याग रंग लाती गई। इसे रानी तिष्यरक्षिता की तपस्या कहा जाए या वैद्य, हकीमों के परिश्रम का फल कि महाराज अशोक के स्वास्थ्य में एकाएक सुधार होना शुरू हो गया। एक दिन सम्राट अशोक के कक्ष में रानी तिष्यरक्षिता बैठी हुई भगवान बुद्ध की उपासना कर रही थी, तभी द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि पार्षद विक्रमसिंह सम्राट अशोक से तत्काल मिलना चाहते हैं।]

तिष्यरक्षिता : विक्रमसिंह से कह दो कि सम्राट इस समय सो रहे हैं।

द्वारपाल : मैंने कहा था, परन्तु विक्रमसिंह कोई महत्त्वपूर्ण सूचना देने आए हुए हैं।

तिष्यरक्षिता : ठीक है, विक्रमसिंह से कहो कि मैं आ रही हूँ।

[इसके साथ ही उसने अपने वस्त्रों को ठीक किया और विक्रमसिंह से मिलने के लिए चल पड़ी।

रानी तिष्यरक्षिता को देखते ही विक्रमसिंह उठकर खड़े हो गए और अभिवादनोपरान्त बोले—इस समय मुझे सम्राट अशोक को एक अत्यन्त आवश्यक एवं गुप्त सूचना देने के लिए आना पड़ा है।]

तिष्यरक्षिता : ऐसी कौन-सी गुप्त सूचना है, यदि आप उचित समझें तो मुझे बतला दें मैं सम्राट के जगते ही उन्हें अवगत करा दूंगी।

विक्रमसिंह : तक्षशिला में आज ही विद्रोह फैलने की सूचना प्राप्त हुई है'''इसी सम्बन्ध में सम्राट से सलाह-मशविरा करनी थी।

तिष्यरक्षिता : ठीक है, महाराज के जगते ही उन्हें अवगत करा दूंगी तथा उनके द्वारा लिए गए निर्णय से तुम्हें कल प्रातःकाल अवगत करा दूंगी।

विक्रमसिंह : चूंकि स्थिति अत्यन्त नाजुक है, अतः आप इस मामले को शीघ्र से शीघ्र महाराज के समक्ष प्रस्तुत कर दें।

[जब विक्रमसिंह उक्त सूचना देकर चला गया तब रानी तिष्यरक्षिता पुनः कक्ष में

आ गई और सम्राट अशोक के पैर दबाने लगी। कुछ ही देर बाद सम्राट अशोक ने कराहते हुए आँखें खोल दी।]

अशोक : अरे तुम अभी तक सोयी नही।

तिष्यरक्षिता : राजन्, अब आपकी तबीयत कैसी है ?

अशोक : थोड़ा-बहुत आराम है। अब तुम जाकर सो जाओ।

तिष्यरक्षिता : आपको इस हाल मे छोड़कर मैं कही नहीं जा सकती···आप बस आराम कीजिए···अरे हाँ···अभी विक्रमसिंह एक आवश्यक सूचना देने आया था।

अशोक : कैसी सूचना ?

तिष्यरक्षिता : विक्रमसिंह ने बताया है कि तक्षशिला में विद्रोह होने की खबर प्राप्त हुई है।

अशोक : (आश्चर्य से) तक्षशिला में विद्रोह !

तिष्यरक्षिता : आश्चर्य तो मुझे भी है, लेकिन विक्रमसिंह की सूचना के गलत होने का कोई कारण भी प्रतीत नहीं होता।

अशोक : तुम दशलथ को तक्षशिला भेज दो और उससे कह दो कि हर स्थिति मे विद्रोह शान्त होना चाहिए। हाँ प्रयास यही हो कि ज्यादा खून-खराबा न हो।

तिष्यरक्षिता : मेरे विचार से तो दशलथ इस विद्रोह को शान्त करने में सफल न हो सकेगा।

अशोक : फिर तुम्हारे विचार में किसे भेजना चाहिए।

तिष्यरक्षिता : मेरे विचार से तो कुणाल इस विद्रोह को शान्त करने में सफल हो सकता है।

अशोक : कुणाल···लेकिन अभी उसकी उम्र ही क्या है···फिर अभी तो उसका विवाह हुआ है···इतनी जल्दी इस प्रकार की जिम्मेदारियाँ उस पर डालना उचित नहीं लगता है।

तिष्यरक्षिता : महाराज, कुणाल एक बुद्धिमान युवक है तथा राजकाज के मामलों में अपने अन्य भाइयों से काफी अनुभवी भी है। मुझे तो पूरा विश्वास है कि वह शीघ्र ही अपनी आवाज के सम्मोहन एवं आँखो के आकर्षण से वहाँ की जनता को अपने वश में करके विद्रोह को शान्त कर देगा।

अशोक : लेकिन···।

तिष्यरक्षिता : राजन्, कुणाल दूध पीता बच्चा नही। फिर अभी से जब वह अनुभव प्राप्त नही करेगा तो आगे राज कैसे करेगा। फिर मैं उसकी दुश्मन तो हूँ नही। जो कहूँगी, आपके, कुणाल और राज के हित मे कहूँगी। वैसे आपकी जैसी इच्छा हो वैसा ही कीजिए।

अशोक : वैसे तुम्हारा परामर्श गलत नही है···अन्य भाइयों की अपेक्षा कुणाल निश्चय

ही इस विद्रोह को शान्त करने में कामयाब हो सकता है। लेकिन यदि वह विद्रोह को शान्त करने में असफल हुआ तो…।

तिष्यरक्षिता : महाराज, सफलता-असफलता की भविष्यवाणी करना हमारे वश की बात नहीं है…वैसे मुझे पूरा विश्वास है कि कुणाल की सम्मोहिनी जादू भरी आवाज निश्चय ही उसकी विजयपताका फहराने में कामयाब होगी।

अशोक : ठीक है…मैं तुम्हारे विश्वास को ठेस नही पहुँचाना चाहता। तुम कुणाल को तक्षशिला जाने का आदेश दे दो। साथ ही वहाँ के सामन्त को राजपत्र भेज दो कि जब तक वहाँ की स्थिति शान्त नही हो जाती राजकुमार कुणाल की सुरक्षा की पूरी व्यवस्था की जाए।

तिष्यरक्षिता : आप निश्चिंत रहें, मैं अभी ही सेनापति जयदत्त एवं विक्रमसिंह को स्थिति से अवगत करा देती हूँ।

दृश्य परिवर्तन

[प्रातःकाल के 8 बज चुके थे। राजकुमार कुणाल अपनी पत्नी कांचनलता के साथ अपने कक्ष में बैठा हुआ था। तभी दरबान ने सेनापति जयदत्त एवं विक्रमसिंह के आने की सूचना दी।]

कुणाल : सेनापति जी, आप और इस समय। क्या कोई विशेष बात तो नही है। पिताश्री का स्वास्थ्य तो ठीक है।

विक्रमसिंह : महाराज अब स्वस्थ हो रहे हैं राजकुमार। सम्राट अशोक ने आदेश दिया है कि आप तत्काल तक्षशिला के लिए रवाना हो जाइए।

कुणाल : तक्षशिला…क्या बात है ?

विक्रमसिंह : तक्षशिला में विद्रोह हो गया है। इस विद्रोह को शान्त करने के लिए आपको उपयुक्त समझा गया है।

कुणाल : ओह…तब तो निश्चय ही मुझे जाना होगा।

कांचनलता : निश्चय ही पिताश्री के आदेश का पालन करना आपका कर्तव्य है। परन्तु इस कार्य में अपना योगदान देने के लिए मैं भी आपके साथ चलूँगी।

कुणाल : नही कांचन…यह विद्रोह है और ऐसे विद्रोहों में स्त्रियाँ नही जाया करतीं।

कांचनलता : क्यों नही जाया करती…शायद आप उन्हें कमजोर हृदय वाली समझते हैं…लेकिन यह क्यों भूल रहे हैं कि मैं जादूगर कुणाल की पत्नी हूँ और उससे भी बढ़कर सम्राट अशोक की पुत्रवधू हूँ…।

जयदत्त : बेटी…मेरे विचार से आपको इस गृहयुद्ध में नही जाना चाहिए। पता नहीं वहाँ की स्थिति कैसी हो…।

कांचनलता : जैसी भी स्थिति होगी मैं अपने पति के साथ मिलकर देख लूँगी। मैं कायर

या बुजदिल औरत नहीं हूँ जो अपने सुहाग को खतरे में डालकर नाता तोड़ लूँ। अब हम दोनों का जीना-मरना एक साथ है। इसलिए आप लोग कृपया यथोचित परामर्श ही दें जिससे मैं एक पतिव्रता नारी की तरह अपने पति की सेवा का अवसर प्राप्त कर सकूँ।

कुणाल : तुम समझती क्यों नहीं कांचन···मैं शीघ्र ही वापस आ जाऊँगा।

विक्रमसिंह : हाँ बेटी···जैसे ही विद्रोह शान्त हो जाएगा···राजकुमार वापस आ जाएगा।

कांचनलता : मैं इन सब बातों को नहीं सुनना चाहती। मैं भी इस गृहयुद्ध में अपने पति के साथ ही भाग लूँगी और विद्रोह को शान्त करने में हम दोनों मिलकर कार्य करेंगे।

कुणाल : ठीक है जैसी तुम्हारी इच्छा।

दृश्य परिवर्तन

[राजकुमार कुणाल के सपत्नीक तक्षशिला जाने की सूचना प्राप्त होते ही रानी तिष्यरक्षिता खुशी से पागल हो उठी। इधर कई दिनों से सम्राट की बीमारी के कारण वह अपने को ही ठीक से सँवार नहीं सकी थी। हर समय केवल एक ही चिन्ता थी कि सम्राट को हर स्थिति में जीवित रखना है भले ही उसके लिए कितनी तपस्या क्यों न करनी पड़े। चूँकि अब सम्राट अशोक का स्वास्थ्य ठीक था अतः वह अपने शृंगार कक्ष में जा पहुँची और उसी आदमकद शीशे के सामने जा खड़ी हुई। अपने चेहरे को शीशे में देखकर बरबस ही उसके होठों पर मुस्कान थिरक उठी। इसी के साथ ही शीशे में उसका प्रतिबिम्ब साकार हो उठा।]

प्रतिबिम्ब : आज तो रानी साहिबा बहुत खुश हैं।

तिष्यरक्षिता : हाँ बहुत खुश···जानती हो एक दिन मैंने तुमसे कहा था कि कुणाल की मौत मेरे हाथों निश्चित है।

प्रतिबिम्ब : याद है रानी साहिबा।

तिष्यरक्षिता : तो सुन···मैंने उसे ही नहीं बल्कि उसकी सुन्दरी को भी विद्रोह की आग में झोंक दिया है। देखना कुछ ही दिन बाद सूचना आएगी कि राजकुमार कुणाल की सुन्दर आँखें और जादुई आवाज सदैव-सदैव के लिए विद्रोह की आग में झुलस गई हैं।

प्रतिबिम्ब : हा···हा···हा···बड़ा सुन्दर स्वप्न है···काश यह साकार हो सकता।

तिष्यरक्षिता : क्या मतलब।

प्रतिबिम्ब : अरे मूर्ख···जिसकी सुन्दर आँखों के भँवर जाल में फँसकर माँ जैसी देवी उसके आगोश में सामने को उद्यत हो उठे···यदि उसी आवाज ने वहाँ की विद्रोही जनता को अपने भँवर जाल में फँसाकर शान्त कर दिया, तब क्या करोगी।

तिष्यरक्षिता : यह असम्भव है···कुणाल जैसा अनुभवहीन कभी भी वहां के विद्रोह की आग को शान्त करने में सक्षम नहीं हो सकता।

प्रतिबिम्ब : सम्भव और असम्भव का फैसला तो आने वाला कल करेगा···लेकिन मान लो यदि वह विद्रोह को शान्त करने में सफल हो गया तब कौन-सा षड्यन्त्र करोगी।

तिष्यरक्षिता : अभी मैंने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं सोचा है···यदि ऐसा हो भी गया तो भी मैं हार मानने वाली नहीं हूँ बल्कि मरते दम तक कुणाल से अपने अपमान का बदला लेकर ही रहूँगी।

प्रतिबिम्ब : कहीं ऐसा न हो कि इस बदले की आग के कारण तुम्हें स्वयं ही इस आग में झुलसना पड़े।

तिष्यरक्षिता : ऐसा कभी नहीं हो सकता···मैं सम्राट अशोक की सबसे प्रिय रानी बन चुकी हूँ···हा···हा···हा।

दृश्य परिवर्तन

[सम्राट अशोक लगभग पूर्णतया स्वस्थ हो चुके थे। परन्तु शारीरिक कमजोरी अभी भी काफी अधिक थी। राजकीय वैद्यों ने अभी उन्हें पूर्ण विश्राम का परामर्श दे रखा था परन्तु इसके बावजूद वह राज कार्यों में अपना पूरा योगदान देते रहते थे यही कारण था कि महत्वपूर्ण मामलों में सेनापति एवं अर्थ मंत्री के साथ अन्य पार्षदगण परामर्श लेने के लिए आया करते थे। आज अर्थ मंत्री विक्रम सिंह कुछ विशेष सूचना लेकर सम्राट अशोक से मिलने आए थे।]

अशोक : कहो विक्रमसिंह राज्य में सब कुछ ठीक-ठाक तो है।

विक्रम सिंह : हां महाराज। आपके आशीर्वाद एवं पराक्रम से सम्पूर्ण राष्ट्र का राज कार्य ठीक ढंग से चल रहा है। देश की पूरी जनता महाराज के स्वास्थ्य लाभ से प्रसन्न है तथा वह आपके दर्शनों के लिए लालायित हो रही है।

अशोक : विक्रम सिंह, यह सब तुम लोगों का परिश्रम, त्याग और जनता का आशीर्वाद ही है, जो मैंने दूसरी जिन्दगी पायी है···विशेष रूप से रानी तिष्यरक्षिता भी धन्यवाद की पात्र हैं, जिन्होंने अपने अथक परिश्रम, त्याग एवं तप के बल पर न केवल मेरी मृत्यु से संघर्ष किया बल्कि मुझे एक नया जीवन दिया है। हां राजकुमार कुणाल की कोई सूचना प्राप्त हुई अथवा नहीं। तक्षशिला का विद्रोह···।

विक्रम सिंह : महाराज, उसी की सूचना तो लेकर आया हूँ।

अशोक : तो जल्दी बताओ, उसने क्या सूचना भेजी है।

विक्रम सिंह : राजकुमार कुणाल एवं उसकी पत्नी ने यह जानकारी चाही है कि पिताश्री का स्वास्थ्य कैसा है, इसकी जानकारी उन्हें तत्काल दी जाए। जहां तक तक्षशिला

मे विद्रोह का प्रश्न है···राजकुमार कुणाल एवं कांचनलता ने मिलकर बिना किसी खून-खराबे के वहां के विद्रोह को ही शान्त नही किया है बल्कि वहां की जनता का सरताज भी बन गया है। अब वहां की स्थिति पूर्णतया सामान्य है तथा वहां की जनता का पूरा समर्थन आपके साथ है। राजकुमार कुणाल ने यह भी सूचना भेजी है कि वहां की जनता सम्राट अशोक के दर्शन करना चाहती है।

अशोक : (निकट ही बैठी तिष्यरक्षिता की ओर उन्मुख होकर) देखा प्रिये···तुम्हारा विश्वास कितना सच था·· हालांकि मैं तो कुणाल को इतने जोखिम भरे कार्य पर भेजने के लिए घबड़ा रहा था, परन्तु जिस आत्मविश्वास के साथ रानी तिष्यरक्षिता ने राजकुमार पर यह भार डाला तथा जिस प्रकार राजकुमार कुणाल ने अपनी जिम्मेदारी को निभाया, उसके लिए मैं एक बार पुनः रानी तिष्यरक्षिता को धन्यवाद देता हूँ।

दृश्य परिवर्तन

[सम्राट अशोक इस समय अपने कक्ष मे विश्राम कर रहे है। उनके निकट ही उनकी प्रिय रानी तिष्यरक्षिता बैठी हुई उनके पैर दबा रही थी।]

अशोक : *प्रिये, निश्चय ही तुम्हारा त्याग, तप प्रशंसनीय है। मैं अब स्वस्थ हो चुका हूँ।* बोलो तुम्हे क्या चाहिए···जो भी मांगोगी मैं तुम्हे दूंगा।

तिष्यरक्षिता : महाराज, निश्चय ही स्वस्थ तो हो गए हैं लेकिन अभी इस योग्य नही है कि आप शारीरिक अथवा मानसिक रूप से कार्य करें। राजकीय वैद्यों ने सलाह दी है कि अभी आप आराम कीजिए।

अशोक : भई, आराम करते-करते तो मैं पस्त हो गया हूं। अब मैं कुछ काम-काज भी करना चाहता हूँ। *लेकिन यहां प्रश्न आराम का नही बल्कि मैं तुम्हारे तप, त्याग* एवं परिश्रम के पुरस्कार स्वरूप कुछ देना चाहता हूँ।

तिष्यरक्षिता : क्या मांगू महाराज। आपके आशीर्वाद से सभी कुछ तो मेरे पास मोजूद है। हां एक इच्छा अवश्य है। लेकिन···।

अशोक : लेकिन क्या···मैं सम्राट अशोक हूँ···यदि तुम चांद-सूरज भी चाहोगी तो उसे भी लाकर तुम्हारे कदमो पर डाल दूंगा।

तिष्यरक्षिता : नही महाराज···चांद-सूरज की आवश्यकता नही है···मेरी केवल एक ही इच्छा है और वह भी काफी पुरानी है···परन्तु कहते हुए भय महसूस होता है।

अशोक : अरे भय कैसा। तुम अपनी इच्छा बताओ। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारी हर इच्छा की पूर्ति मैं करूंगा।

तिष्यरक्षिता : राजन्, मेरी काफी समय से यह इच्छा है कि मैं भी कुछ दिन राजा

बनकर कुछ अनुभव प्राप्त करूँ। यदि आप देना चाहते हैं तो मुझे एक सप्ताह के लिए इस देश का शासक बनने का सौभाग्य प्रदान करने का कष्ट करें।

अशोक : (हँसते हुए) बस इतनी-सी बात।

तिष्यरक्षिता : तो क्या आप मुझे शासक बनने का सौभाग्य प्रदान कर देंगे।

अशोक : निश्चय ही···मैं तुम्हे एक सप्ताह के लिए पूरे देश का शासक नियुक्त करता हूँ तथा इस अवधि मे तुम्हें वह सब अधिकार प्राप्त होंगे जो सम्राट अशोक को प्राप्त हैं।

तेरहवां दृश्य

[महारानी तिष्यरक्षिता सम्राट अशोक के स्थान पर राजगद्दी पर आरुढ हो चुकी थी। यदाकदा लोग अपनी समस्याएँ लेकर महारानी तिष्यरक्षिता के पास जाते तो वह इस सम्बन्ध मे बिना मन्त्रिगणो से परामर्श प्राप्त किए अपना निर्णय सुना देती थी। जब दरबार से जनता के लोग चले गए तब उसने एक भरपूर नजर दरबार पर एवं वहाँ उपस्थित मन्त्रिगणो पर डाली।]

तिष्यरक्षिता : सेनापति, सुना है कि तक्षशिला मे विद्रोह शान्त हो गया।

सेनापति : जी हाँ महारानी जी, वहाँ तो राजकुमार ने ऐसा जादू किया है कि बिना किसी खून-खराबे अथवा युद्ध लड़े ही विद्रोह को ऐसे शान्त कर दिया मानो वहाँ कभी विद्रोह हुआ ही न हो।

तिष्यरक्षिता : अच्छा···तब तो वहाँ की जनता का सरताज बन चुका होगा। क्या तुमने इस सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की इतना बड़ा विद्रोह उसने इतनी आसानी के कैसे शान्त कर दिया।

सेनापति : आपका विचार सही है। हमारे जासूसो ने सूचना दी थी कि राजकुमार कुणाल ने अपनी जादुई आवाज की बदौलत ही वह विद्रोह शान्त कर कर दिया है।

तिष्यरक्षिता : ऐसा प्रतीत होता है कि तुम लोग अपने नाक-कान और आँखें बंद करके काम करते हो। यही कारण है कि तुम लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है।

सेनापति : यह आप क्या कह रही हैं?

तिष्यरक्षिता : मैं जो कह रही हूँ वह सत्य है···अन्यथा इसके पीछे क्या रहस्य छिपा है, इसका पता तुम्हें बहुत पहले ही चल गया होता। मुझे गुप्त रूप से सूचना मिली है कि राजकुमार कुणाल विद्रोही शक्तियों से मिलकर वहाँ की शासन व्यवस्था स्वयं सँभालना चाहता है तथा राज्य की संगठन शक्ति को छिन्न-भिन्न करके··।

सेनापति : लेकिन महारानी जी, मेरे जासूसी संगठन ने ऐसी कोई सूचना मुझे नहीं दी है।

तिष्यरक्षिता : तुम्हारा जासूसी संगठन है ही कहाँ जो तुम्हें स्थिति से अवगत कराए। वास्तविकता तो यह है कि सम्राट अशोक ने सबको इतनी छूट दे रखी है कि वह अपने दायित्व का निर्वहन करने में असमर्थ हो चुके हैं। यही कारण है कि हमारे सैनिकों की तलवारों में जंग लग चुकी है।

सेनापति : महारानी जी, आप हुक्म करें'''तलवारें चमकने में देर नहीं लगेगी।

तिष्यरक्षिता : जो गुप्त सूचनाएँ मुझे एवं सम्राट अशोक को प्राप्त हुई हैं, उसमें यह स्पष्ट हो चुका है कि राजकुमार कुणाल देशद्रोही हो चुका है तथा वह एक अलग राज्य स्थापना का षड्यन्त्र रच रहा है। वास्तविकता यह है कि वह विद्रोही शक्तियों में मिलकर तक्षशिला में एक अलग राज्य की स्थापना करना चाहता है, जिसका वही शासक होगा। इसका स्पष्ट प्रमाण यही है कि इतने बड़े विद्रोह को बिना किसी युद्ध अथवा खून-खराबे के शान्त कर दिया, जिसे संसार का एक महान आश्चर्य ही कहा जाएगा। तमाम परिस्थितियों को देखते हुए इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिल चुके हैं कि राजकुमार कुणाल विद्रोही शक्तियों से मिलकर उनके विद्रोह में हाथ बटा रहा है। अतः सम्राट अशोक से परामर्श के पश्चात् राष्ट्र हित को दृष्टिगत रखते हुए यह आदेश देती हूँ कि राजकुमार कुणाल की आँखें निकाल कर उसे राज्य की सीमा से बाहर खदेड़ दिया जाए तथा यदि पुनः राज्य की सीमा में प्रवेश करता हुआ पाया जाए तो उसे एवं उसकी पत्नी काचनलता को फाँसी पर चढ़ा दिया जाए।

सेनापति : महारानी जी, बिना किसी प्रमाण के इस प्रकार का दण्ड'''।

तिष्यरक्षिता : इस सम्बन्ध में तुम्हें प्रमाण की आवश्यकता नहीं बल्कि सम्राट अशोक एवं मेरे आदेश का अनुपालन सुनिश्चित किया जाए तथा इसके क्रियान्वयन की सूचना मुझे तत्काल उपलब्ध करायी जाए।

सेनापति : जैसी आज्ञा।

दृश्य परिवर्तन

[सम्राट अशोक इस समय अपने कक्ष में बैठे हुए थे। चूँकि राजकाज का सारा भार उन्होंने तिष्यरक्षिता को सौंप रखा था, इसलिए उनके पास कोई विशेष काम नहीं थे। उनके पास गुरु तिस्स मोग्गलिपुत्त तथा उनका पुत्र महेन्द्र कुछ अन्य बौद्ध भिक्षुगणों के साथ बैठे हुए थे।

महेन्द्र : पिताश्री, अब आपका स्वास्थ्य कैसा है?

अशोक : बेटे, तुम्हारी माँ तिष्यरक्षिता के तप एवं त्याग से मुझे यह स्वास्थ्य लाभ प्राप्त हुआ है। निश्चय ही तिष्यरक्षिता ने हमारे जीवन और मृत्यु के लिए जो संघर्ष

किया, उसके लिए वह विजय की पात्र हैं।

महेन्द्र : हम सभी लोग भी माँ जी के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं।

अशोक : उनकी सेवाओं को देखते हुए ही उनकी इच्छानुसार मैंने उसे इस देश का एक सप्ताह के लिए शासक नियुक्त कर दिया है।

महेन्द्र : यह तो और भी अच्छी बात है। हाँ, राजकुमार कुणाल का क्या हाल है ?

अशोक : निश्चय ही राजकुमार की आँखों एवं आवाज में जादू है। उसे तक्षशिला विद्रोह शान्त करने के लिए भेजा गया था। अनुमान तो यही था कि वहाँ खून की नदियाँ बह जाएँगी इस विद्रोह को शान्त करने के लिए, परन्तु मुझे प्राप्त सूचना के अनुसार बिना युद्ध किए अथवा किसी प्रकार का खून-खराबा किए उसने तक्षशिला का विद्रोह शान्त कर दिया।

महेन्द्र : यह तो सच है पिताश्री क्योंकि मैं उससे जाकर तक्षशिला मे मिला था। मुझे तो वहाँ विद्रोह जैसा कोई वातावरण ही नहीं देखने को मिला। राजकुमार कुणाल वहाँ भगवान बुद्ध का एक विशाल मन्दिर बनवा रहा है। जनता ने इस कार्य हेतु खुले दिल से दान देना शुरू कर दिया है। उस समय तक मिली सूचना के अनुसार 150 सहस्र मुद्राएँ केवल जनता से दान के रूप मे प्राप्त हो चुकी थीं।

अशोक : तुम्हारी बात सुनकर मुझे अत्यन्त खुशी हुई है। हाँ, कावनलता का क्या हाल है ?

महेन्द्र : स्वस्थ है। पिताश्री आपने बहुत अच्छी बहू का चुनाव किया है। बिना किसी भेदभाव के उसने हम सभी की सेवा की तथा अपने हाथो से भोजन बनाकर खिलाया। अब तो वह माँ भी बनने वाली है।

अशोक : क्या माँ बनने वाली है ?

महेन्द्र : हाँ पिताश्री।

अशोक : लेकिन मुझे तो इसकी कोई खबर नही है।

महेन्द्र : तिष्यरक्षिता माँ श्री ने बताया नही क्या ?

अशोक : नही बेटे। शायद राजकाज में व्यस्तता के कारण उसे समय ही नही मिला होगा अथवा हो सकता है कि वह भूल गयी हो। खैर बौद्ध धर्म की प्रगति तो चल ही रही होगी। राजकोष से दान आदि···।

तिस्स : राजन्, राजकोष से भरपूर दान तो मिल रहा है कि लेकिन जब से बौद्ध धर्म मे भिक्षुणियों का आना शुरू हुआ है, बौद्ध धर्म का स्तर गिरता जा रहा है। अब तो स्थिति यहाँ तक पहुँच चुकी है कि बौद्ध धर्म के अनुयायी सुरा एवं सुन्दरी के व्यसनी बनते जा रहे हैं।

अशोक : मैंने तो पूरा भार आप पर छोड़ रखा है। मैं स्पष्ट रूप से आदेश दे चुका हूँ कि आप भ्रष्टाचार को रोकने में जैसी भी राजकीय सहायता चाहते हों प्राप्त करें।

चूँकि मैं काफी समय तक अस्वस्थ रहा हूँ, अतः मुझे कोई ऐसी जानकारी नहीं मिल सकी है।

तिस्स : मैंने अपने स्तर से पूरा प्रयास किया है लेकिन बौद्ध भिक्षु के रूप में तरह-तरह के अराजक तत्वों के प्रवेश हो जाने से बौद्ध धर्म की शिक्षाओं एवं उपदेशों का पतन होता जा रहा है। अभी हाल ही में एक बौद्ध भिक्षु एक भिक्षुणी की मदद से पूरे मठ के धन को लूट ले गया। काफी खोज-बीन करने पर भी अभी तक उसका पता नहीं चल सका है।

महेन्द्र : पिताश्री, इधर स्थिति अत्यन्त संदिग्ध होती जा रही है। पता नहीं वे कौन से तत्त्व है, जो बौद्ध धर्म की प्रगति में बाधक बनते जा रहे हैं। जब से आप अस्वस्थ हुए हैं, बौद्ध धर्म संस्थान को राजकोष से बहुत कम मात्रा में दान प्राप्त हुआ है, जिसके कारण बौद्ध धर्म के संचालकों को काफी असुविधा का सामना करना पड़ रहा है। स्थिति यह हो गयी है कि बौद्ध धर्म संस्थान के पास इतना पैसा ही नहीं है कि वह इसकी प्रगति की दिशा में कोई कार्य कर सके।

अशोक : लेकिन हमने तो ऐसा आदेश दिया नहीं फिर वह कौन लोग हो सकते हैं। ठीक है, मैं अब स्वस्थ हो चुका हूँ और इस दिशा में जाँच कराकर उचित कार्यवाही करूँगा। इसके साथ ही मैं आज ही आदेश भेज रहा हूँ कि संस्थान को पूर्ववत दान मिलता रहे।

तिस्स : प्रश्न यहाँ केवल धन का नहीं बल्कि बौद्ध धर्म की गिरती छवि का है। प्रश्न यहाँ यह है कि वह कौन लोग है, जो बौद्ध धर्म के प्रचार में बाधक बन रहे है। धन तो हम लोग जन सहयोग से भी प्राप्त करने का प्रयास कर रहे है लेकिन'''।

अशोक : आप इस दिशा में कार्यवाही करें और जो तथ्य प्रकाश में आए उनसे हमें भी अवगत कराएँ। जहाँ तक ऐसे तत्त्वों का प्रश्न है, आप दोनों मिलकर ऐसे लोगों का पता लगाएँ तथा दोषी व्यक्ति को दण्डित कराएँ। मुझे स्वयं आश्चर्य है कि ऐसे तत्त्व कौन हो सकते है, यदि यह मान लिया जाए कि यह किसी दूसरे धर्म अथवा धर्मों के संयुक्त संगठन की साजिश है, तो इस सम्बन्ध में अभी तक मैंने ऐसी कोई कार्यवाही नहीं की है, जिससे इन धर्मों की मर्यादा को ठेस पहुँचे। मैं सभी धर्मों की उच्च शिक्षाओं का मानवीय दृष्टिकोण से अध्ययन करते हुए उनके प्रचार एवं प्रसार में सहयोग देता रहा हूँ।

महेन्द्र : यही नीति हमारी भी रही है। मैं किसी धर्म विशेष को अपने पद का दुरुपयोग करते हुए किसी पर थोपने के पक्ष में नहीं हूँ। परन्तु जो समर्थन आपके आशीर्वाद एवं संरक्षण से बौद्ध धर्म को मिला है, उससे दूसरे धर्मावलंबियों का उत्कंठित होना स्वाभाविक ही है। मेरे विचार से यह किसी दूसरे धर्मावलंबियों की चाल ही है, जो बौद्ध धर्म की शिक्षाओं एवं उपदेशों को कलुषित करना चाहते हैं।

अशोक : यदि तुम्हारी बात को सच भी मान लिया जाए, तो यह प्रश्न उपस्थित होता

है कि आखिर वह कौन से लोग हैं जो ऐसी कार्यवाही करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं।

तिस्स : मैं किसी धर्म विशेष पर आरोप नही लगाना चाहता हूँ क्योकि यदि सभी धर्मों की वस्तुस्थिति देखी जाए तो स्पष्ट विदित होगा कि सभी धर्म मानव हित के लिए ही बनाए गए हैं और हर धर्म मास मदिरा का विरोधी है। हर धर्म का उद्देश्य सत्य और अहिंसा का मार्ग अपनाना है, इसलिए किसी धर्म अथवा उनके धर्मावलंबियों की आलोचना करना अथवा उन पर दोषारोपण करना उचित नही है। जहाँ तक बौद्ध धर्म की वर्तमान आन्तरिक विसंगतियों का प्रश्न है, यह निश्चय ही शोचनीय है और इस बात का आभास करा रही है कि कही-न-कहीं हमारी कमी अवश्य है। राजन् बौद्ध धर्म के अन्दर भ्रष्टाचार की जड़ें इतनी गहरा चुकी हैं कि उनका एकदम नष्ट किया जाना कदापि सम्भव नही है। जिन बौद्ध भिक्षुओ ने मास-मदिरा का सेवन शुरू कर दिया है, उन्हें कड़ा दण्ड देने की व्यवस्था की जाए। चूँकि पूर्व की भाँति अब संस्थान को उस मात्रा में धन उपलब्ध नही हो पा रहा है अतः बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का प्रसार एव उपदेशो का प्रचार बाधित हो गया है। यदि उपरोक्त भ्रष्टाचार को समाप्त करना है तो निश्चय ही संस्थान के पास धन के साथ ही शक्ति का होना अनिवार्य है।

अशोक : आप पैसे के प्रति निश्चिन्त रहिए। मैं आज ही तिष्यरक्षिता को आदेश भेज रहा हूँ कि पूर्व की भाँति ही बौद्ध धर्म के विकास, प्रचार एवं प्रसार के लिए तत्काल यथोचित मात्रा मे धन उपलब्ध करा दें। वैसे भी मात्र एक सप्ताह की बात है। मैं भी भगवान बुद्ध के आशीर्वाद से स्वस्थ हो गया हूँ, अतः आप चिन्तित न हो। मैं पूरा प्रयास करूँगा कि न केवल धन सुलभ कराया जाए वरन् ऐसे असामाजिक तत्वों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही भी सुनिश्चित की जाए।

तिस्स : राजन्, केवल धन से ही विकास नही हो सकता, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि आप समय-समय पर बौद्ध मठों, मन्दिरों आदि का निरीक्षण करें तथा बौद्ध धर्म के प्रवचनों एवं सगोष्ठियो में उपस्थित होने का कष्ट करें। आपकी उपस्थिति का ऐसे असामाजिक तत्वों पर यथोचित प्रभाव पड़ सकता है।

अशोक : गुरु महाराज, बौद्ध धर्म के उत्थान, विकास, प्रगति के लिए मैं सदैव ही तत्पर रहा हूँ और जैसा भी आप आदेश देंगे उसका पालन करने को मैं सदैव तैयार रहूँगा।

हृदय परिवर्तन

[राजदरबार लगा हुआ था। महारानी तिष्यरक्षिता राजगद्दी पर विराजमान थी। सेनापति जयदत्त उनके ठीक सामने सर झुकाये खड़ा हुआ था। दरबार में गहन नीरवता छायी हुई थी। मंत्रिगण एवं दरबारियों की नजरें बार-बार महारानी पर केन्द्रित हो उठती थी।]

तिष्यरक्षिता : जयदत्त, मेरे आदेश का पालन हुआ अथवा नहीं।

जयदत्त : जी हाँ ! महारानी के आदेश के अनुसार राजकुमार कुणाल की आँखें निकाल दी गई हैं तथा उसे एवं उसकी पत्नी कांचनलता को राज्य की सीमा के बाहर घने जंगलों में खदेड दिया गया है। लेकिन···!

तिष्यरक्षिता : लेकिन क्या···।

जयदत्त : अब सम्राट अशोक को पता चलेगा···!

तिष्यरक्षिता : जयदत्त, मत भूलो कि मैं इस देश की शासक हूँ और इस समय सम्राट अशोक शासक नहीं हैं। वैसे यह जो आदेश दिए गए हैं, वह सम्राट अशोक के परामर्श से ही दिए गए हैं। खैर राज्य की स्थिति क्या है ?

जयदत्त : देश की आन्तरिक स्थिति ठीक नहीं है। इस वर्ष देश में सूखा पड जाने के कारण खेत-खलिहान निर्जन पड़े हुए हैं। इस प्राकृतिक विपदा को देखते हुए इस वर्ष राजस्व कर माफ कर दिया गया है।

तिष्यरक्षिता : क्या तुमने इस सम्बन्ध में मुझसे सलाह-मशविरा करना आवश्यक नहीं समझा।

जयदत्त : क्षमा करें, सम्राट अशोक ने यह अधिकार मुझे दे रखा है। फिर अभी आपने दो दिन पूर्व ही राजगद्दी को ग्रहण किया है, जबकि यह आदेश बहुत पहले ही एक सभा के माध्यम से पारित किए जा चुके हैं।

तिष्यरक्षिता : जयदत्त, तुम जानते ही हो कि राजकोष की स्थिति क्या है। राजकोष में धन नाम मात्र को ही है, जिससे जनहित के कार्य करना मुश्किल हो गया है। यही नहीं तुम लोगों की तनख्वाह का व्यय भार वहन करने में भी अब राजकोष समर्थ नहीं है। ऐसे समय में हम यदि इस प्रकार करों को माफ करते रहे तो यह राजहित में नहीं होगा। अतः मैं यह आदेश देती हूँ कि राजस्व कर की पूरी वसूली की जाए और जो आदेश पूर्व में सभा के माध्यम से पारित किया गया है, निरस्त कर दिया जाय।

जयदत्त : लेकिन ··!

तिष्यरक्षिता : जयदत्त, तुम्हारी हर बात में 'लेकिन' लगाने की आदत बहुत बुरी है। मैं जो कुछ करूँगी राजहित और तुम लोगों के हित में करूँगी। अतः मैं यह आशा करूँगी कि तुम सब लोग मुझे इस कार्य में सहयोग दोगे।

जयदत्त : जैसी आज्ञा।

[इसी समय अर्थ मंत्री विक्रम सिंह उठकर खड़े हो गए।]

तिष्यरक्षिता : विक्रम सिंह, क्या कोई खास खबर है।

विक्रम सिंह : जी हाँ ! सम्राट अशोक ने एक सन्देश भेजा है।

तिष्यरक्षिता : क्या सन्देश है ?

विक्रम सिंह : सम्राट ने यह आदेश दिया है कि बौद्ध धर्म के संरक्षक गुरु मोगलिपुत्त तिस्स एवं सम्राट अशोक के ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्र को एक-एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएं तत्काल दान रूप में भेज दी जाएं।

तिष्यरक्षिता : विक्रम सिंह, अब तक कितनी मुद्राएँ दान में दी जा चुकी हैं।

विक्रम सिंह : संख्या तो विदित नहीं है। अनुमानतः अरबों मुद्राएँ तो दी ही जा चुकी होंगी।

तिष्यरक्षिता : विक्रम सिंह, तुम्हारे विचार में क्या अशोक द्वारा अपेक्षित धन दिया जाना चाहिए।

विक्रम सिंह : क्षमा करें। इस सम्बन्ध में मैं अपना कोई मत नहीं दे सकता।

तिष्यरक्षिता : जब तुम अपना मत नहीं दे सकते तो क्या तुम्हें राजदरबार की शोभा बढ़ाने के लिए मंत्री बनाया गया है।

विक्रम सिंह : आपका अनुमान सही है, यदि आप कहें तो अपना इस्तीफा इसी समय प्रस्तुत कर दूं।

तिष्यरक्षिता : बात इस्तीफे की नहीं बल्कि बात धन के अपव्यय की है।

विक्रम सिंह : क्षमा करें, सम्राट अशोक के आदेश का पालन करना ही हमारा सबसे बड़ा धर्म है।

तिष्यरक्षिता . तो इसका तात्पर्य यह धन राशि दे दी जानी चाहिए।

विक्रम सिंह : निश्चय ही दी जानी चाहिए।

तिष्यरक्षिता : इसका मतलब तो यही हुआ कि तुम मुझे सम्राट नहीं मानते।

विक्रम सिंह : ऐसी बात नहीं है। आप तो वैसे भी मेरे लिए सम्राट से कम नहीं हैं। जहां तक सम्राट अशोक के आदेशों का प्रश्न है, उनका आदर किया जाना आपका सबसे बड़ा धर्म है।

तिष्यरक्षिता : मैं तुम्हारी भावनाओं की कद्र करती हूँ। लेकिन यहाँ मूल प्रश्न राजकीय कोष की गिरती स्थिति का है। यदि इसी प्रकार दान-दक्षिणा में धन लुटता रहा तो निश्चय ही एक वक्त ऐसा भी आ सकता है जबकि राजकोष खाली हो जाएगा और तुम लोगों का वेतन…!

विक्रम सिंह : उसकी हमें कोई चिन्ता नहीं है। फिर भगवान बुद्ध का आशीर्वाद हमारे साथ है।

तिष्यरक्षिता : मैं सब समझती हूँ। तुम लोगों के मन में क्या है। यह क्यों नहीं कहते कि तुम लोगों ने इतना धन जमा कर रखा है कि तुम्हें वेतन की आवश्यकता नहीं है।

विक्रम सिंह : महारानी जी, यह मेरे चरित्र पर आरोप है। आप कृपया मेरा त्याग-पत्र स्वीकार करके किसी ईमानदार मंत्री की नियुक्ति कर लीजिए।

तिष्यरक्षिता : ऐसा ही करती विक्रम सिंह। परन्तु मैं तो मात्र एक

शासक हूँ। हालांकि मैं तुम्हारा त्याग पत्र तो स्वीकार नही कर सकती परन्तु मेरा आदेश है कि जब तक मैं इस पद पर विराजमान हूँ, किसी भी धर्म, सम्प्रदाय अथवा धर्मार्थ उद्देश्य के लिए अथवा इस प्रकार के कार्यों के लिए किसी प्रकार की दान दक्षिणा नही दी जाएगी। मेरे इस आदेश से अशोक जी को भी अवगत करा दिया जाए।

विक्रम सिंह : लेकिन महारानी जी अशोक आपके पति और इस देश के शासक हैं।

तिष्यरक्षिता : तुम्हारा विचार सही है। लेकिन राजगद्दी पर बैठने वाले शासक का किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। यदि उसका कोई सम्बन्ध होता है तो केवल न्याय से। न्याय के आगे सभी सम्बन्ध नगण्य हैं। चूंकि राजकोष का धन बौद्ध धर्म की आड मे लूटा जा रहा है, अतः यह अन्याय है और इस अन्याय के विरुद्ध निर्णय लेना इस देश का शासक होने के नाते मेरा परम् कर्त्तव्य है।

विक्रम सिंह : जैसी आज्ञा।

हृदय परिवर्तन

[जब विक्रम सिंह ने सम्राट अशोक को महारानी तिष्यरक्षिता द्वारा लिए गए निर्णय की सूचना दी तो उनकी भृकुटियों में बल पड गए। चूंकि इस समय शासक पद पर तिष्यरक्षिता मौजूद थी, अत: उन्होने कुछ कहना उचित नही समझा। धीरे-धीरे एक सप्ताह का समय व्यतीत हो गया और वह समय भी आ गया जब तिष्यरक्षिता को अपने पद का पूरा भार सम्राट अशोक को सौंपना पड़ा। अब साम्राज्ञी कही जाने वाली तिष्यरक्षिता एक साधारण रानी मात्र रह गई थी।

इस समय राजदरबार लगा हुआ था। सभाकक्ष मे सभी सांसद मौजूद थे। सम्राट अशोक चिन्तित अवस्था में राजगद्दी पर विराजमान थे। सभी सांसदों के चेहरे पर चिन्ता व्याप्त थी। निकट ही महेन्द्र गम्भीर मुद्रा मे बैठा हुआ था।]

अशोक : महेन्द्र, तुमने गुरु महाराज को जाने क्यों दिया। केवल कुछ ही दिनों की तो बात थी।

महेन्द्र : पिताश्री गुरु महाराज कब एकान्तवास में चले गए, किसी को कोई खबर ही न लग सकी।

अशोक : लेकिन गुरु महाराज जा कहां सकते हैं ?

महेन्द्र : मेरा अनुमान तो यही है कि वह हिमालय की ओर कही एकान्त स्थान पर चले गए हैं।

अशोक : तुम्हें ठीक मालूम है।

महेन्द्र : वैसे पिताश्री इस सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता है। पिताश्री इधर जबसे बौद्ध धर्म में भ्रष्टाचार बढा है, तब से वह काफी उदास और

परेशान रहने लगे थे। अक्सर वह कहते थे कि अब मेरा यहाँ रहना बेकार है। भिक्षुगण मांस-मदिरा का सेवन करने लगे हैं। ऐसी स्थिति में हिमालय की गोद में जाकर भगवान बुद्ध के यश को कीर्तिमान करने का उल्लेख अक्सर किया करते थे।

अशोक : लेकिन उस दिन हुई वार्ता में उन्होंने इस बात का कोई उल्लेख नहीं किया था।

महेन्द्र : पिताश्री, गुरुजी का अनुमान था कि राजकोष से यथोचित मात्रा में धन मिल जाने पर वह इस दिशा में कठोर कार्यवाही सुनिश्चित करेंगे। चूंकि धन समाप्त हो चुका था तथा बौद्ध भिक्षुओं के भोजनादि का प्रबन्ध तक करना मुश्किल हो गया था, इसलिए वह और भी चिन्तित रहने लगे थे। यहाँ तक कि बौद्ध भिक्षुओं ने उन पर यह आरोप भी लगाना शुरू कर दिया था कि वह राजकीय कोष से प्राप्त धन का दुरुपयोग कर रहे हैं। यह गम्भीर समस्या उस समय और उग्र स्वर धारण गई जब माँश्री ने यह स्पष्ट आदेश भिजवा दिया कि अब किसी प्रकार का कोई दान बौद्ध धर्म को नहीं दिया जाएगा।

अशोक : इसकी जानकारी मुझे भी मिली थी और मैंने यह सूचना भिजवा दी थी कि गुरु महाराज कुछ दिन और प्रतीक्षा कर लें'''।

महेन्द्र : परन्तु जब अवसर होता तब न। वास्तविकता तो यह थी कि वहाँ की आन्तरिक स्थिति इतनी कलहपूर्ण हो गई थी कि एक क्षण को चैन नहीं मिल रहा था।

अशोक : खैर जो होना था, हो गया। रानी तिष्यरक्षिता ने मेरे साथ जो तप, त्याग और परिश्रम किया है, उसको देखते हुए उसे कोई दण्ड देना उपयुक्त नहीं है, फिर भी चेतावनी अवश्य दूँगा। अब तुम गुरु महाराज को पुनः वापस बुलवाने का प्रयास करो। उनसे मेरा सन्देश कहला दो कि उन्हें जितने भी धन की आवश्यकता है, उसकी पूर्ति मैं तुरन्त करने को तैयार हूँ। और हाँ, जब तक गुरु महाराज वापस नहीं आते, तुम बौद्ध धर्म के प्रसार का कार्य अपने हाथ में ले लो। भ्रष्टाचार फैलाने वाले भिक्षुओं को दण्डित करने के लिए विशेष न्यायालयों का गठन करके न्याया-धीशों की नियुक्ति कर लो।

महेन्द्र : जैसी आज्ञा पिताश्री।

अशोक : विक्रम सिंह, इस अवधि में रानी तिष्यरक्षिता ने जो भी आदेश पारित किए हैं, उन्हें निरस्त कर दिया जाए तथा सूखे से पीड़ित किसानों का लगान माफ कर दिया जाए।

विक्रम सिंह : आपके आदेश का पालन तत्काल सुनिश्चित किया जाएगा। परन्तु'''!

अशोक : परन्तु क्या।

विक्रम सिंह : साम्राज्ञी जी के आदेशों के अनुपालन में अनेक किसानों के खेत-खलिहानों को बिकवाकर लगान वसूली की गई है। सूखा पीड़ित किसानों के दुधारू जानवरों

को नीलाम कर दिया है, जिसमें उनके यहाँ भुखमरी की स्थिति पैदा हो गई है।

अशोक : ऐसे सभी कृषकों को यथोचित राजकीय सहायता प्रदान की जाए तथा उनके खेतों एवं जानवरों को वापस दिलाया जाए। भूमिहीन किसानों को खेती योग्य भूमि दी जाए। इसके साथ ही सूखे से प्रभावित क्षेत्रों में सिंचाई की समुचित व्यवस्था की जाए।

चौदहवाँ दृश्य

[रात्रि का प्रथम पहर बीत चुका था। चारों ओर गहनतम अन्धकार भरी नीरवता छायी हुई थी। राजमहल के द्वार पर आसपास के स्थानों के अन्धकार को दूर करने के लिए जगह-जगह मशालें जल रही थीं। ऐसे समय में दो छायाएँ सुदूर पूर्व से आती हुई प्रकट हुई और राजमहल के मुख्य द्वार के निकट आकर बैठ गयीं। कुछ दूर तक तो वह दोनों छायाएँ मौन बैठी रहीं परन्तु कुछ ही देर बाद एक छाया ने कंधे पर टँगी वीणा को उतारकर हाथ में पकड़ा और उसके तारों को छेड़ दिया। इसी के साथ उसने एक गीत गाना शुरू कर दिया।]

दृश्य परिवर्तन

[सम्राट अशोक इस समय अपने शयन कक्ष में विश्राम कर रहे थे। एकाएक उनके कानों में मधुर स्वर में गाए जा रहे मार्मिक गीत की ध्वनि गुंजरित हो उठी, धीरे-धीरे यह ध्वनि तीव्र होती जा रही थी।]

अशोक : (बुदबुदाते हुए) अरे यह गीत···कितना मार्मिक है···लेकिन स्वर···ऐसा प्रतीत होता है, मानो यह स्वर पहले भी सुना है। पता नहीं कौन दुखियारा है··· चलकर उसकी करुण व्यथा सुनना चाहिए···शायद किसी सहायता की जरूरत हो।

[इसके साथ ही सम्राट अशोक उठ खड़े हुए और तीव्र कदमों से राजमहल के मुख्य द्वार की ओर चल दिए। संतरी से मुख्य द्वार खुलवा कर वह बाहर आ गए और अपने बायीं ओर की दिशा में दो छायाओं में से एक को ही मार्मिक गीत गाते हुए देखा। निकट पहुँचने पर विदित होता है कि उनमें से एक पुरुष है और एक स्त्री। दोनों के शरीर पर नाम मात्र को ही वस्त्र है एवं दोनों ही अत्यन्त निर्धन अवस्था में दिखाई देते हैं।]

अशोक : कौन हो तुम लोग और इतनी रात में यहाँ यह मार्मिक गीत क्यों गा रहे हो ? जानते नहीं यह सम्राट अशोक का राजमहल है।

युवक : जानता हूँ सम्राट अशोक···लेकिन अब हम इस नारकीय जिन्दगी को जीने में असमर्थ हो गए हैं और आपके आदेशानुसार हम दोनों फाँसी के फन्दे पर लटकना चाहते हैं।

अशोक : क्या···तुम लोग कौन हो और तुमने ऐसा कौन-सा अपराध किया है जो तुम लोग फाँसी के फन्दे पर लटकना चाहते हो ?

युवक : पिताश्री, आपका वही अभागा पुत्र कुणाल जिसे आपने तक्षशिला में विद्रोह को शान्त करने के लिए भेजा था। हमने और कांचन ने मिलकर बिना किसी प्रकार के खूनखराबे के विद्रोह को शान्त कर दिया था, परन्तु पता नहीं मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध हो गया जिसके कारण आपने मेरी आँखों को निकलवाकर मुझे राज्य की सीमा के बाहर खदेड़ दिया था।

अशोक : क्या···क्या···तुम कुणाल हो।

युवक : हाँ पिताश्री···चूँकि आपका यह आदेश था कि यदि मैं अथवा मेरी पत्नी कांचन राज्य की सीमा में प्रवेश करे तो इन्हें मृत्युदण्ड दिया जाए इसलिए मैंने पुनः राज्य की सीमा में घुसने का अपराध किया है और इसलिए मैं मृत्युदण्ड का भागी हूँ।

युवती : हाँ पिताश्री, हम दोनों इसीलिए आए हैं कि आपके आदेशानुसार हम दोनों को मृत्युदण्ड दे दिया जाए, जिससे हम दोनों इस नारकीय जीवन से मुक्ति पा सकें।

युवक : पिताश्री, जो जिन्दगी आपने मुझे जीने के लिए दी है, उसका और बोझ सहन करने में मैं अब असमर्थ हूँ। मैंने आत्महत्या करने का प्रयास किया था परन्तु कांचन ने ऐसा करने से रोक दिया और कहा कि आत्महत्या करना पाप है। इससे अच्छा तो पिताश्री के हाथों मृत्युदण्ड प्राप्त करना उचित होगा।

युवती : पिताश्री, मुझे आपके द्वारा दिए गए दण्ड के सम्बन्ध कोई शिकायत नहीं है। परन्तु क्लेश केवल इस बात का है कि आप जैसा न्यायप्रिय शासक का कम-से-कम हम दोनों को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर तो देना चाहिए था।

अशोक : बस करो···बस करो···आखिर मैं यह क्या सुन रहा हूँ···अपने सबसे प्रिय पुत्र को मैं आँख निकलवाने का आदेश दूँगा···मैं उसे प्राणदण्ड की सजा दूँगा···नहीं···नहीं···यह झूठ है···तुम लोग झूठ बोलते हो···तुम लोग कुणाल और कांचन नहीं हो सकते।

युवती : पिताश्री, आप यकीन मानिए यह मेरे पति और आपके पुत्र कुणाल ही हैं और मैं आपकी पुत्रवधू···।

अशोक : उफ···कुछ समझ में नहीं आता···ऐसा अनर्थ भरा कार्य किसने और किसलिए किया है···और···तुम लोग महल के अन्दर आओ···मैं अभी इसी वक्त पूरे मामले की जानकारी करता हूँ कि···।

[इसके साथ ही सम्राट अशोक कुणाल को सहारा देकर अपने राजमहल स्थित कक्ष में ले आए। सर्वप्रथम उन्होंने उन दोनों के नहाने-धोने का प्रबन्ध किया और उसके बाद भोजनादि की व्यवस्था की।]

कुणाल : पिताश्री, हम यहाँ भोजन ग्रहण करने नही बल्कि अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए मृत्युदण्ड पाने के लिए आए हैं।

कांचन : हाँ पिताश्री, अब तो हम लोगों की खाने-पीने की इच्छा भी मर चुकी है। भूखे-प्यासे रह-रहकर पेट की आँते इतनी सिकुड़ गयी हैं कि अब खाने-पीने का प्रश्न ही नही उठता। चूँकि आत्महत्या करना पाप है, इसलिए हम लोग स्वयं अपनी इच्छा से आपकी शरण में मौत को आलिंगन करने के लिए आ गए हैं।

अशोक : कांचन···मैं भगवान बुद्ध की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैंने ऐसा कोई आदेश नही दिया था।

कुणाल : पिताश्री, आश्चर्य है यदि आपका यह आदेश नही था तो सम्राट अशोक के रहते किसने ऐसा साहस कर दिया है, जो उनके पुत्र को इस दुर्गति पर पहुँचाने का कार्य कर सकता है।

अशोक : बेटे, मैं तुम्हें यकीन दिलाता हूँ कि जिसने भी ऐसा साहस किया है, मैं उसे जिन्दा नही छोड़ूँगा···उसे ऐसी मौत दूँगा कि मौत भी मौत के उस विकराल रूप को देखकर कांप उठेगी···कांचन तुम निश्चिन्त रहो···अब तुम सम्राट अशोक की छत्रछाया में आ गयी हो और सम्राट अशोक की सबसे प्यारी पुत्रवधू हो, जिसके साहस का मैं सदैव प्रशंसक रहा हूँ। मैं तो यही समझ रहा था कि कांचन माँ बनने वाली होगी···लेकिन ऐसे अनर्थ की तो मैं कल्पना भी नही कर सकता था।···कुणाल अब तुम दोनों खाना खाओ···तुम लोगों को मेरी कसम है··· भगवान बुद्ध की सौगन्ध···यदि तुम लोगो ने अन्नादि ग्रहण न किया तो मैं इसी समय अपनी गर्दन तलवार से अलग कर दूँगा।

कांचन : ठीक है पिताश्री···मैं आपके आदेश का पालन कर रही हूँ लेकिन···।

अशोक : तुम निश्चित रहो कांचन···अब आगे क्या होता है, तुम स्वयं अपनी आँखों से देखना। भले ही कुणाल को आँखें तो वापस मैं दिलवा नही सकता परन्तु कुणाल की आँखें निकलवाने वाले की जो दुर्दशा होगी उसका वर्णन तुम कुणाल से कर देना। [इसके साथ ही सम्राट अशोक चीखकर द्वारपाल को आदेश देता है···द्वारपाल ···सेनापति जयदत्त को तत्काल मेरे समक्ष उपस्थित किया जाए।]

दृश्य परिवर्तन

[लगभग एक घण्टे बाद सेनापति जयदत्त ने सम्राट अशोक के कक्ष में प्रवेश किया। उस समय सम्राट अशोक किसी गहन विचारधारा में डूबे हुए इधर-उधर टहल रहे थे। जैसे ही उनकी नजर जयदत्त पर पड़ी वह रुक गए और क्रोध भरी नजरों

से उसे देखते रहे। इसके विपरीत जैसे ही इस सेनापति की नजर कुणाल और कांचनलता पर पड़ी वह हड़बड़ा-सा उठा।]

जयदत्त : महाराज, क्षमा चाहूँगा। महारानी तिष्यरक्षिता ने सही ही कहा था कि हमारा जासूसी संगठन निष्क्रिय हो चुका है, अन्यथा कुणाल और कांचनलता यहाँ तक पहुँच गए और मुझे खबर तक न लगी। मैं अभी अंगरक्षकों को बुलाकर इसे गिरफ्तार करवाता हूँ और आदेशानुसार आज प्रातः काल ही इन दोनों को फांसी के फन्दे पर लटका दिया जाएगा।

अशोक : (चिंघाड़कर) क्या बकते हो जयदत्त···क्या तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है···।

जयदत्त : (आश्चर्य से) यह क्या कह रहे हैं महाराज···जो गलती मुझसे हुई है, वह मेरे गुप्तचरों द्वारा सूचना न मिल सकने के कारण हुई है,···मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि भविष्य में शिकायत का मौका नहीं मिलेगा।

अशोक : मैं पूछता हूँ कि कुणाल की आँखें निकालने का आदेश किसने और क्यों दिया था ?

जयदत्त : आश्चर्य है···आपने ही तो यह आदेश दिया था कि राजकुमार विद्रोही हो गया है और तक्षशिला में विद्रोही संगठन से मिलकर वहाँ का शासक बनना चाहता है, इसलिए आपके परामर्श के बाद रानी तिष्यरक्षिता ने शासक पद पर रहते हुए राजकुमार कुणाल की आँखें निकालने का आदेश देते हुए कहा था कि इसे राज्य की सीमा के बाहर खदेड़ दिया जाए और यदि पुनः राज्य की सीमा में प्रवेश करे तो इसे तथा इसकी पत्नी को फांसी के फन्दे पर लटका दिया जाए।

अशोक : मैंने ऐसा कोई आदेश नहीं दिया था। यदि रानी तिष्यरक्षिता ने ऐसा दण्ड दिया भी था तो कम-से-कम तुम्हें परामर्श तो करना चाहिए था।

जयदत्त : महाराज, मैंने यह बात कही थी इस पर महारानी जी नाराज हो उठी थी और कहा था कि जो दण्ड उन्होंने दिया है, सम्राट अशोक के परामर्श से दिया है। उन्होंने इस सम्बन्ध में यह भी आदेश दिया था कि चूंकि सम्राट अशोक का स्वास्थ्य पुनः खराब हो गया है अतः उन्हें फिलहाल कष्ट देने की आवश्यकता नहीं है।

अशोक : ओह···लेकिन तिष्यरक्षिता ने ऐसा क्यों किया ? बोलो कुणाल, रानी तिष्यरक्षिता से तुम्हारा क्या कोई बैर था।

कुणाल : नहीं पिताश्री···वह मेरी माँ हैं और माँ ने जो कुछ किया है, वह सही ही किया है। मैं वास्तव में विद्रोही शक्तियों से मिल गया था और इसी कारण विद्रोह को शान्त करने में सफलता प्राप्त की थी।

कांचनलता : यह आप क्या कह रहे हैं···नहीं नहीं···आप ऐसा नहीं कर सकते···मैं कहती हूँ कि आप स्पष्ट कर दें कि आप देशद्रोही नहीं हैं···आपका विद्रोही

शक्तियों से कोई वास्ता नहीं है।

कुणाल : नहीं कांचन···मांश्री को जो सूचना मिली थी वह सही थी और उसने मुझे जो भी दण्ड दिया न्याय की दृष्टि से उचित ही था।

अशोक : देखो कुणाल···मैं तुम्हारा पिता हूँ और पिता से झूठ बोलना पाप है। तुम भगवान बुद्ध की सौगन्ध खाकर कहो कि तुम विद्रोही शक्ति से मिल गए थे···नहीं ···कुणाल यह नहीं हो सकता···इसके पीछे अवश्य कोई राज है···और राज पर से मैं पर्दा उठाकर ही मैं चैन लूंगा।···उस एक सप्ताह में उसने क्या-क्या गुल खिलाए इसकी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था···जयदत्त, तिष्यरक्षिता ने न तो इस सम्बन्ध में मुझसे कोई परामर्श किया और न ही मेरे गुप्तचर विभाग ने ऐसी कोई सूचना ही दी थी कि कुणाल देशद्रोही हो गया है अथवा विद्रोही शक्ति से मिल गया है।

जयदत्त : सच महाराज···रानी तिष्यरक्षिता ने ऐसा दण्ड क्यों दिया···आश्चर्य तो यह है कि जब हम लोगों ने इस सजा को कम करने की अपील की तो उसने हम लोगों को भ्रष्टाचारी बताते हुए कहा कि तुम लोग नमकहराम हो गए हो।

अशोक : ओह···यह बड़े ही आश्चर्य का विषय है जयदत्त···निश्चय ही यदि उसे एक माह के लिए शासक बना दिया जाता तो वह मुझे भी फांसी पर लटकाने में न हिचकती।

कुणाल : नहीं पिताश्री, मांश्री ऐसी नहीं है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, मांश्री ने जो भी दण्ड दिया है वह···।

अशोक : मैं इस सम्बन्ध में फिलहाल कुछ नहीं सुनना चाहता···मैं अपने स्तर से जांच करूँगा और जो भी दोषी पाया जाएगा, वह दण्ड का भागीदार होगा।

[इसी समय कक्ष में एक दासी प्रवेश करते हुए बोली—महाराज, यदि मुझे क्षमा प्रदान किया जाए तो मैं वास्तविकता से अवगत करा सकती हूँ।]

अशोक : तुम निश्चित होकर सारी स्थिति स्पष्ट करो।

दासी : यह घटना महाराज एक काली व डरावनी रात्रि की है जबकि राजकुमार कुणाल वीणा वादन के साथ ही एक मधुर गीत गा रहा था तभी···

कुणाल : (चीखते हुए) नहीं नहीं···मैं कहता हूँ चुप रहो···भगवान के लिए मां पर ऐसा दोषारोपण मत करो···वह मां ही नहीं देवी है पिताश्री देवी है···।

अशोक : तुम खामोश रहो कुणाल···हाँ दासी पूरी बात बताओ···।

दृश्य परिवर्तन

[सम्राट अशोक राजगद्दी पर विराजमान थे। निकट ही नेत्रहीन कुणाल एवं उनकी पत्नी कांचनलता बैठे हुए थे। सम्पूर्ण दरबार में उत्तेजना एवं भय का

मिला-जुला वातावरण बना हुआ था। वर्षों बाद आज पुनः सम्राट अशोक का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। उनकी आँखो से चिनगारियाँ फूट रही थी तथा शरीर में कँपकँपाहट स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रही थी। इसी समय जयदत्त राजदरबार में प्रवेश करते हुए सम्राट अशोक के सामने हाथ बाँधकर खड़ा हो गया।]

अशोक : सेनापति, अभियुक्ता तिष्यरक्षिता को तत्काल दरबार मे हाजिर किया जाए।

जयदत्त : जैसी आज्ञा।

[इसके साथ ही वह पुनः राजदरबार के बाहर चला गया और जब वापस लौटा तो तिष्यरक्षिता को बन्दी अवस्था में साथ लेता आया।]

तिष्यरक्षिता : महाराज ! मैं पूछती हूँ कि मुझे इस प्रकार बन्दी बनाकर लाने का आदेश आपने क्यों दिया है?

अशोक : जयदत्त, मैंने इसे हथकड़ी बेड़ी के साथ राजदरबार में प्रस्तुत करने का हुक्म दिया था…।

तिष्यरक्षिता : महाराज, यह आप क्या कह रहे है।

अशोक : तिष्यरक्षिता…तुमने बीमारी की अवस्था मे जिस प्रकार मेरी सेवा की थी, उसी से वशीभूत होकर मैंने तुम्हें एक सप्ताह के लिए इस देश का शासक नियुक्त कर दिया था।

तिष्यरक्षिता : लेकिन मैंने इस अवधि में ऐसा कौन-सा अपराध किया है जो कि…।

अशोक : मैं पूछता हूं, तुमने ऐसा कौन-सा कार्य किया है जिससे जनता अथवा राज-दरबार में सम्मान प्रदान किया जाए…सूखे की भीषण मार से ग्रस्त किसानों पर जुल्म ढाने के आदेश देकर उनका शोषण किया…बौद्ध धर्म को दान देने से इन्कार कर दिया…तुम्हारे ही आचरण के कारण हमारे गुरु तिस्स महाराज गुप्त स्थान पर चले गए।

तिष्यरक्षिता : लेकिन महाराज, मैंने जो कुछ किया है वह राजहित में किया। राजकोष की स्थिति अत्यन्त दयनीय होने के कारण ही मैंने ऐसा किया था। इसमें मेरा कोई भी व्यक्तिगत स्वार्थ निहित नहीं था।

अशोक : और हमारे मन्त्रिगणो, पार्षदों तथा गणमान्य सदस्यों को भी अपमानित करना राजहित मे था।

तिष्यरक्षिता : मैंने किसी मन्त्री, पार्षद अथवा गणमान्य नागरिक को परेशान करने अथवा अपमानित करने का कोई कार्य नहीं किया। हाँ इन्होंने मेरे आदेशों के पालन में अनेकानेक तर्क पेश किए, जिसके कारण मुझे कठोर रुख अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

अशोक : ओह…और कुणाल की आँखें निकालने के पीछे कौन-सा राजहित था ?

तिष्यरक्षिता : (चौंककर कुणाल एवं उसकी पत्नी कांचनलता को देखते हुए) ओह··· महाराज मुझे गुप्त रूप से यह सूचना मिली थी कि कुणाल देशद्रोही हो गया है। उसने तक्षशिला की शासन व्यवस्था अपने हाथ में लेने का षड्यन्त्र रचना शुरू कर दिया था। मुझे यह भी सूचना प्राप्त हुई थी कि वास्तव में विद्रोह को शान्त करने के पीछे रहस्य यह है कि यह विद्रोही शक्तियों से मिल गया है।

अशोक : तुम झूठ बोलती हो तिष्यरक्षिता। वास्तविकता तो यह है कि कुणाल ही एक ऐसा कुमार था, जो तुम्हारी राहों का कांटा बन गया था। तुम्हें यह भय था कि यह तुम्हारे भेद को हमारे सामने न खोल दे।

तिष्यरक्षिता : नहीं महाराज, ऐसा कोई भेद नहीं है। मुझे ऐसा लगता है कि मेरे विद्रोहियों द्वारा रचा गया यह मात्र एक आरोप है।

अशोक : आरोप नहीं सत्य है। जबसे तुमने शासन व्यवस्था संभाली है, राज्य में त्राहि-त्राहि मच गई है। तुम्हारे ही आचरण के कारण गुरु महाराज से मुझे विलग होना पड़ा और तुम्हारे ही कारण युवा कुमार कुणाल···।

तिष्यरक्षिता : मैंने जो कुछ भी किया है, राजहित में किया है और यही मेरा धर्म भी था।

अशोक : बहुत खूब···तुमने जो कुछ किया है राजहित में किया है। राजकुमार कुणाल की आँखें राजहित में निकलवा दीं···बौद्ध धर्म को दान राजहित में रुकवा दिया ···सूखे से पीड़ित किसानों की जमीन और मवेशियों को राजहित मे बिकवा दिया और इसके साथ राज्य का विकास कार्य भी इसलिए रुकवा दिया कि उसमे राजहित निहित था।

तिष्यरक्षिता : हाँ···हाँ···मैंने जो कुछ किया राजहित में किया।

अशोक : बहुत अच्छा राजहित किया है तुमने तिष्यरक्षिता। अपने पाप को छुपाने के लिए मेरी दिन-रात सेवा करके मुझे मरने से बचाया था। इसी बीच तक्षशिला में विद्रोह का नाटक रचाकर मासूम राजकुमार को विद्रोह शान्त करने के लिए भेज दिया···परन्तु हमारी आशा के विपरीत कुणाल न केवल विद्रोह शान्त करने में सफल हो गया वरन् वहाँ की जनता का मन मोह लिया। जब तुम्हे इसकी खबर मिली तो तुमने दूसरा नाटक किया, मेरे स्वस्थ होते ही शासन-व्यवस्था संभालने की जिद की और मैंने तुम्हारी सेवाओं के वशीभूत होकर तुम्हे राजगद्दी का भार सौंप दिया। राजगद्दी पर बैठते ही तुमने राजकुमार से पुरानी दुश्मनी का बदला लेने के लिए न केवल आँखें निकालने का आदेश दिया वरन् राज्य-सीमा मे पुनः प्रवेश करने पर उसे फाँसी पर लटकाने की सजा भी दे दी। परन्तु यहाँ भी तुम्हारा स्वप्न पूरा न हो सका और राजकुमार कुणाल तुम्हारे आदेशानुसार फाँसी पर झूलने के लिए मेरे पास चला आया। परन्तु तिष्यरक्षिता यह तुम्हारी बदकिस्मती ही कही जाएगी कि उसके आते ही वर्षों से पड़े राज पर से पर्दा उठ चुका है।

तिष्यरक्षिता : यह झूठ है महाराज ! मेरी राजकुमार कुणाल से कोई दुश्मनी नहीं है बल्कि···।

अशोक : झूठ और सच का पता चल चुका है। मुझे नही पता था वासना की गुड़िया कि तू एक माँ होकर भी ऐसा अधर्मी कार्य करने में भी नही हिचकेगी। मुझे पता लग चुका है कि तू चाहती थी कि राजकुमार कुणाल तुम्हारी वासना की आग को शान्त करे परन्तु···।

तिष्यरक्षिता : नही···नही···नही···महाराज, यह मेरे ऊपर लगाया आरोप बिल्कुल झूठा है···कुणाल ने अपना अपराध छुपाने के लिए ही ऐसा झूठा और मनगढ़न्त आरोप लगाया है।

अशोक : यही तो अफसोस है कि यह बात राजकुमार ने नही बल्कि उन दासियों ने बताई है, जो उस समय राजकुमार के गीत में डूबी हुई थी और जब तुमने अपनी वासना के ज्वर को शान्त करने के लिए वहाँ पहुँचकर गीत में व्यवधान उत्पन्न कर दिया था।

तिष्यरक्षिता : नही महाराज, यह झूठ है···मैं एक पतिव्रता नारी हूँ और मैंने आपकी बीमारी···।

अशोक : काश···मुझे अगर यह बात पहले पता चल गई होती तो मैं तेरे गन्दे हाथों से जहर पीना भी पसन्द न करता।

तिष्यरक्षिता : महाराज···।

अशोक : तिष्यरक्षिता, जिस कुमार की तू जान लेना चाहती थी, आज से उसी कुणाल को मैंने स्वतन्त्र रूप से शासक नियुक्त कर दिया है। चूँकि उसकी आँखें नही है, इसलिए राजकार्य में कांचनलता सहयोग करेगी और तुम्हें अर्थात तिष्यरक्षिता को षडयन्त्र रचने एवं राजकुमार कुणाल की आँखें निकालने के आरोप में जलती चिता में जिन्दा झोंकने का आदेश दिया जाता है।

तिष्यरक्षिता : महाराज, इतना क्रूर निर्णय···। कहते-कहते वह रो पड़ी।

अशोक : तिष्यरक्षिता·· तू शायद यह भूल गई है कि मैं बहुत ही क्रूर शासक था। परन्तु आज तूने अपने कर्मों से मेरी सोयी हुई क्रूरता जो जगा दिया है। सेनापति, मेरे निर्णय का इसी समय अनुपालन सुनिश्चित किया जाए। तिष्यरक्षिता के इस दण्ड के साथ ही उन पौरो को जिन्होने राजकुमार कुणाल की आँखें निकाली हैं, उन्हे मृत्यु दण्ड दिए जाने की सजा दी जाए।

कुणाल : पिताश्री···माँश्री को क्षमा कर दें। आखिर उसके मरने से मेरी आँखें तो वापस नही आ जाएँगी।

अशोक : कुणाल·· जिसे तू माँ कह रहा है वह एक जहरीली नागिन है···वासना की गर्त में डूबी हुई एक ऐसी नारी···जिसने माँ के पवित्र रिश्ते को भी कलंकित कर

दिया है। अतः उसके अपराध को देखते हुए तो यह सजा भी कम ही प्रतीत होती है।

[इस समय सम्राट अशोक का चेहरा अत्यन्त क्रूरता से भर चुका था। उसके चेहरे को देखकर किसी की भी हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि रानी तिष्यरक्षिता को दिए गए दण्ड के सम्बन्ध में अपना कोई विचार व्यक्त कर सके। अन्ततः कुछ ही देर में लकड़ियां एकत्रित कर ली गईं और राजदरबार के बाहर पड़ी रिक्त भूमि पर चिता बना दी गई। इसके साथ ही रानी तिष्यरक्षिता को पकड़कर राज-दरबार के बाहर ले जाया जाने लगा।]

तिष्यरक्षिता : (विलाप करते हुए) महाराज, मैं अपना अपराध स्वीकार करती हूं··· बस···बस मुझे एक बार माफ कर दीजिए···मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि मैं सदैव आपकी पतिव्रता नारी की तरह सेवा करती रहूंगी···मैं राजकुमार कुणाल से भी अपने द्वारा किए गए पाप के लिए क्षमा-याचना करती हूं·· बस मुझे एक अवसर···

अशोक : सेनापति···मेरे आदेश का तुरन्त पालन किया जाए।

सम्राट अशोक की आवाज गूंजते ही तिष्यरक्षिता को पकड़ने के लिए सेनापति के आदेश पर चार सिपाही आगे बढ़ लिए और उसे उठाकर राजदरबार के बाहर जलती चिता के पास ले गए। उनके पीछे ही सम्राट अशोक भी आ खड़े हुए थे और क्रूर नजरों से तिष्यरक्षिता को घूरते जा रहे थे।

कुछ ही क्षणों के अन्तराल में विलाप करती तिष्यरक्षिता को उठाकर सिपाहियों ने जलती चिता में झोंक दिया। कुछ देर तक तिष्यरक्षिता की मार्मिक आवाज वातावरण में गूंजती रही और अन्ततः सब कुछ शान्त हो गया।

•

पन्द्रहवां दृश्य

[सम्राट अशोक इस समय अपने विशेष कक्ष में बैठे हुए थे। इस कक्ष में एक ओर भगवान बुद्ध की आदमकद प्रतिमा स्थापित की गई थी। सम्राट अशोक के पास उनका पुत्र महेन्द्र तथा अन्य बौद्ध भिक्षुगण बैठे हुए बौद्ध धर्म के आगामी कार्यक्रमों पर विचार-विमर्श कर रहे थे।]

अशोक : महेन्द्र···सात वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके हैं। मैंने बौद्ध धर्म के विकास एवं प्रसार में काफी कार्य किए हैं तथा इसमें पैदा हो गई विसंगतियों को दूर करने का

भी जो प्रयास किया है, उसमे तुम्हारे सहयोग एवं बौद्ध मठों मे नियुक्त न्यायाधीशों के माध्यम से काफी सफलता मिली है। लेकिन···

महेन्द्र : लेकिन क्या पिताश्री···आप इस तरह उदास मत रहा कीजिए···मुझे बताइए ···यदि कोई कमी रह गई हो तो मैं उसका निराकरण करने का प्रयास करूँ।

अशोक : बेटा, भूल तो मुझसे हुई है। न मैं तिष्यरक्षिता को इस देश का शासक बनाता और न ही गुरु महाराज हमें इस प्रकार बीच मँझधार मे छोड़कर चले जाते''।

महेन्द्र : पिताश्री, जो कुछ हो चुका है, उस पर अब और पश्चाताप करने से कोई फायदा भी तो नही है। मैंने अनेकानेक बौद्ध भिक्षुओं को उनके पास इस आशय मे भेजा था कि वे वापस आकर बौद्ध धर्म की प्रगति का मार्ग प्रशस्त करें, परन्तु इनका तो यही कहना है कि अब वह मोक्ष प्राप्ति के निकट हैं और अब कोई योग-दान करने में न तो शारीरिक दृष्टि मे सक्षम हैं और न ही मानसिक दृष्टि से।

अशोक : लेकिन महेन्द्र, उन्हें किसी भी प्रकार लाना है। बिना गुरु महाराज मोगलिपुत्त तिस्स के बौद्ध धर्म की प्रगति के द्वार बन्द हो चुके हैं। यदि तुम लोग सच्चे हृदय से बौद्ध धर्म की युग-युगान्तर तक प्रगति के पथ को प्रशस्त करना चाहते हो तो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें पाटलीपुत्र में लाना ही होगा, भले ही इसके लिए कोई भी कुर्बानी क्यों न देनी पड़े। इन्ही तमाम बातों को दृष्टिगत रखते हुए मैंने अब अन्तिम निर्णय ले लिया है। इसलिए तुम इस बार 101 बौद्ध भिक्षुओं और पार्षदों को साथ लेकर अन्तिम बार जाकर मेरा अन्तिम सन्देश उन तक पहुँचा दो।

महेन्द्र : अन्तिम सन्देश ! आप कहना क्या चाहते हैं।

अशोक : महेन्द्र, मैं उनकी हर इच्छा की पूर्ति करने के लिए तैयार हूँ। बस मैं उन्हें एक बार सिर्फ एक बार और पाटलीपुत्र मे लाना चाहता हूँ।

महेन्द्र : लेकिन पिताश्री, गुरु महाराज की भी मजबूरी है, वह इतने कमजोर हो चुके हैं···शरीर इतना जर्जर हो उठा है कि अब वह चल-फिर सकने में भी असमर्थ हो चुके हैं।

अशोक : नहीं महेन्द्र···वास्तविकता तो यह है कि अब वह आना नही चाहते हैं···यदि वास्तव में उनकी कमजोरी की बात मान ली जाए तो उनके लिए रथ भेजा जा सकता था अथवा उन्हें गोदी मे उठाकर लाया जा सकता था।

महेन्द्र : यह प्रस्ताव मैंने भी रखा था पिताश्री, लेकिन उनका कथन है कि जहाँ उनका अपमान होता हो, जहाँ पर उन पर आक्षेप लगाए जाते हों, वहाँ वह कैसे जा सकते हैं। उनका कहना है कि उन्हें धन-दौलत का कोई मोह नही है। वह बस भगवान बुद्ध के बताए रास्ते पर चलकर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं।

अशोक : इसीलिए तो मैं कह रहा हूँ कि उन्हें हर स्थिति में पाटलीपुत्र लाना है। महेन्द्र इस बार अपने साथ मंत्रिगणों को एवं बौद्ध भिक्षुओं को लेकर रथ सहित जाओ और मेरा अन्तिम सन्देश उन तक पहुँचा दो।

महेन्द्र : लेकिन अन्तिम संदेश···।

अशोक : वही मैं तुम्हें बता रहा हूँ। सर्वप्रथम तो तुम उन्हें यह अवगत करा दो कि बौद्ध मठों एवं बौद्ध भिक्षुओं के लिए एक अलग कोष की स्थापना की गई है, जिसमें राज्य की जनता से प्राप्त धन एवं राज्य से प्राप्त सहायता को पूरा लेखा-जोखा रखा जाता है। दूसरी स्थिति से भी अवगत कराते हुए उन्हें सूचित कर दो कि बौद्ध धर्म मे आ गई विकृतियों को दूर किया जा चुका है तथा उनके लिए एक अलग न्यायिक कोष्ठ की स्थापना कर दी गई है जो ऐसे असामाजिक तत्त्वों को दण्डित करती है। इस प्रकार उन्हें सम्पूर्ण स्थिति से अवगत कराते हुए अनुरोध करो कि अब वे आकर बौद्ध धर्म के सरक्षक का पद-भार ग्रहण कर लें।

महेन्द्र : जैसी आज्ञा पिताश्री। वैसे इस स्थिति से गुरु महाराज को पहले भी अवगत कराया जा चुका है।

अशोक : ठीक है यदि गुरु महाराज इसके बाद भी आने को तैयार ही होते हैं तो उन्हें मेरा अन्तिम सन्देश दे देना।

महेन्द्र : वह क्या पिताश्री ?

अशोक : यदि गुरु महाराज इस पर भी आने को तैयार नही होते तो उन्हें अवगत करा देना कि सम्राट अशोक अर्थात् उनका शिष्य गंगा तट पर खड़ा हुआ बड़ी बेसब्री से उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। यदि वह चलने को तैयार नही होते और यह दल खाली हाथ वापस लौटता है तो सम्राट अशोक गंगा माँ की गोद में अपने को अर्पित करके सदा-सदा के लिए दुनिया से विदा ले लेंगे।

महेन्द्र : पिताश्री···यह आप क्या कह रहे है !

अशोक : यही मेरा अन्तिम सन्देश है और यही अन्तिम फैसला भी।

महेन्द्र : लेकिन पिताश्री, आपको ऐसा निर्णय नही लेना चाहिए अन्यथा बौद्ध धर्म···

अशोक : बेटा, सम्राट अशोक का निर्णय अडिग होता है। जहाँ तक बौद्ध धर्म की प्रगति एवं उसके भविष्य का प्रश्न है, इसका सारा श्रेय गुरु महाराज के निर्णय पर निर्भर करता है। वैसे भी बिना गुरु महाराज के योगदान के बौद्ध धर्म की प्रगति की आशा करना निरर्थक ही होगा।

महेन्द्र : नही पिताश्री, आपको भविष्य मे बौद्ध धर्म की प्रगति के लिए एवं राजहित को दृष्टिगत रखते हुए अपना निर्णय बदलना ही होगा।

अशोक : *हाँ, बदलना तो होगा लेकिन जब गुरु महाराज अपना निर्णय बदलकर वापस* पाटलीपुत्र आ जाते हैं।

दृश्य परिवर्तन

[महेन्द्र, मंत्रिगणों एवं हजारों बौद्ध भिक्षुओं के साथ हिमघाटी में स्थित एक जंगल मे जा पहुँचे। बर्फ से घिरे क्षेत्र में स्थित एक जंगल मे एक कुटिया बनी हुई

थी। कुटिया जंगली घास-फूस से बनाई गई थी। कुटिया के आसपास कुछ बौद्ध भिक्षु क्यारियों में पानी दे रहे थे तथा कुछ बौद्ध भिक्षु उपासना में लीन थे। जैसे ही इन बौद्ध भिक्षुओं की नजर महेन्द्र आदि पर पड़ी, वे उनके निकट आकर उनका अभिवादन करते हुए कुटिया के अन्दर लेकर चले गए।

कुटिया के अन्दर मोगलिपुत्त तिस्स ध्यानमग्न मुद्रा में बैठे हुए थे। महेन्द्र तथा कुछ मंत्रिगण उनके निकट जाकर शांतिपूर्वक बैठ गए जबकि अन्य सभी बौद्ध भिक्षुगण कुटिया के बाहर बैठकर आराम करने लगे थे। कुछ देर बाद गुरु महाराज ने आँखें खोलकर उन सभी को देखा तथा उनके अभिवादन को स्वीकार किया।

मोगलिपुत्त : बेटा महेन्द्र, सब कुशल मंगल तो है।

महेन्द्र : जी हाँ गुरु महाराज। लेकिन शीघ्र ही बौद्ध धर्म की नींव पर वज्र गिरने की संभावना बलवती हो उठी है।

मोगलिपुत्त : यह तुम क्या कह रहे हो। सम्राट अशोक तो कुशल मंगल से हैं।

महेन्द्र : महाराज, वैसे तो ठीक हैं, परन्तु आपकी याद में तड़प रहे हैं।

मोगलिपुत्त : यह तो उनकी महानता है बेटे, अन्यथा मैं किस योग्य हूँ।

महेन्द्र : महाराज, आप कितने महान एवं योग्य हैं, इस बात को पिताश्री अथवा मैं ही जानता हूँ। सात वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन शायद ही कोई क्षण ऐसा जाता हो, जिसमें वह आपकी स्तुति न करते हों।

मोगलिपुत्त : बेटा, सम्राट अशोक के आग्रह पर ही मैंने इतनी बड़ी वीणा उठाई थी। परन्तु मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। सोचा था'''भगवान बुद्ध के उपदेशों से दुनिया को नई दिशा दूंगा'''सुख-दुःख के बीच मौजूद गहरी खाई को समूल नष्ट कर दूंगा'''अमीर-गरीब की भावना को जड़ से नष्ट करके एक स्वच्छ समाज की रचना करने में सम्राट अशोक का योगदान प्राप्त करूंगा'''सुरा और मांस का सेवन करने वाले लोगों में इसके प्रति नफरत की आग भरके जीवों के प्रति दया-भावना का संचार प्रत्येक मानवों के अन्दर कर दूंगा'''परन्तु बेटे, मैं ऐसा करने में नाकामयाब रहा।

महेन्द्र : आप ऐसा क्यों सोचते हैं गुरु महाराज। इस अवधि में पिताश्री ने बहुत से परिवर्तन किए हैं। भगवान बुद्ध के उपदेशों की अवहेलना करने वाले बौद्ध भिक्षुओं एवं अन्य असामाजिक तत्त्वों जो बौद्ध मत के विरोधी हैं, का समूल नाश कर दिया गया है। पूरे राज्य में मांस-मदिरा पर रोक लगा दी गई है। जीवों की सुरक्षा एवं उनकी बीमारियों के निवारण के लिए जगह-जगह चिकित्सालय खुलवा दिए गए हैं। जीव हत्या को अपराध घोषित कर दिया गया है। अब तक अपराधिक गतिविधियों में लीन लगभग 600 लोगों को मृत्यु दण्ड दिया जा चुका है तथा सुर, सुरा एवं अन्य दुष्प्रवृत्ति में लिप्त लोगों को दण्डित किया जा चुका है।

मोगलिपुत्त : यह तो अतिसुन्दर है। लेकिन बेटे···अब मेरे जीवन का दीप सदैव के लिए बुझने वाला है। मेरी तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम सम्राट अशोक के माध्यम से···।

महेन्द्र : गुरुजी, यह आप क्या कह रहे हैं। आपको तो आदेश···।

मोगलिपुत्त : नहीं बेटे, मैं आदेश देने की तो कल्पना भी नहीं कर सकता। आदेश तो राजा दे सकता है। साधू तो केवल आने वाले काल के प्रति सचेत करने के लिए अनुनय-विनय एवं सलाह ही दे सकता है। अब तो बस मेरी अन्तिम इच्छा यही है कि मेरी मृत्यु के बाद भी बौद्ध धर्म दिन-दूनी रात चौगुनी गति से फले-फूले और इसका प्रसार तीव्र गति मे हो। मैं चाहता हूँ कि तुम इस दिशा में अपना सक्रिय योगदान प्रदान करो।

महेन्द्र : गुरुजी, मैं बौद्ध धर्म की प्रगति के लिए यदि आवश्यकता पड़ी तो अपने जीवन की आहूति तक चढ़ा दूँगा। परन्तु हर स्थिति मे आपको अपने आशीर्वाद के साथ ही आपका योगदान भी काफी जरूरी है। इसके अतिरिक्त अबकी बार तो पिताश्री ने भी बड़ा ही कठोर एवं भयंकर निर्णय लिया है।

मोगलिपुत्त : कैसा निर्णय बेटे ?

महेन्द्र : पिताश्री आपकी प्रतीक्षा गंगा तट पर कर रहे हैं। उन्होंने अन्न-जल तक त्याग दिया है। उन्होंने अपना अन्तिम सन्देश भेजते हुए कहा है कि यदि आप दल के साथ वापस नही आते हैं, तो गंगा नदी मे कूदकर आत्महत्या कर लेंगे।

मोगलिपुत्त : नहीं बेटा, वह ऐसा नही कर सकते। भगवान बुद्ध की सौगन्ध खाकर कहो कि वह ऐसा कदापि नहीं कर सकते।

महेन्द्र : गुरु महाराज···पिताश्री के निर्णय हमेशा अडिग रहा करते है।

मोगलिपुत्त : समझ में नही आता कि इस जर्जर शरीर, जो अब मात्र एक चलती फिरती लाश की तरह मालूम हो रहा है, के लिए सम्राट अशोक ने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की है।

विक्रम सिंह : महाराज···यह आपका भ्रम है, हम लोगों की दृष्टि में तो आप जैसा महान व्यक्तित्व सदियों में कहीं एक बार देखने को मिलता है···जैसे महेन्द्र ने सही ही कहा है···यदि आप इस बार भी चलने से इन्कार करते हैं तो निश्चय ही सम्राट अशोक का अस्तित्व सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाएगा।

मोगलिपुत्त : यह तो बड़ी विकट समस्या उठ खड़ी हुई है। सम्राट अशोक का जीवन बहुत कीमती है, न केवल बौद्ध धर्म के लिए वरन् देश के लिए भी। तुम लोग देख ही रहे हो कि मेरा शरीर अब इस योग्य नही रह गया है कि मैं कहीं आ-जा सकूँ। मेरी समझ मे नही आता कि मैं क्या करूँ।

महेन्द्र : गुरुजी, उसकी व्यवस्था पिताश्री ने करवा कर भेजी है। बाहर रथ खड़ा है। हमलोग आपको गोदी में उठाकर रथ में बिठा देते हैं और आप···।

मोगलिपुत : ओह···ठीक है···तुम्हारे पिताश्री की जान मेरे इस बेमोल शरीर से ज्यादा कीमती है। यदि उनकी यही इच्छा है तो मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग करता हूँ।

महेन्द्र : धन्य हैं गुरुदेव। हम सभी आपके अत्यन्त आभारी हैं ··।

मोगलिपुत : इसमें आभारी होने की क्या बात है। साधू का तो धर्म ही मानवता की रक्षा करना है।

महेन्द्र : चलिए गुरु महाराज, रथ तैयार है···आपको गोदी में उठाकर उसमें बिठाल देता हूँ।

मोगलिपुत्त : नहीं बेटे, मैं भी तुम लोगों की तरह पैदल चलूंगा, मुझे बस तुम्हारा सहारा चाहिए।

महेन्द्र : आपका शरीर इस योग्य नहीं कि आप पैदल सफर करें···।

मोगलिपुत्त : नहीं बेटे···जहाँ तुम्हारे जैसे त्यागी पुरुष का सहारा हो···सम्राट अशोक जैसे राजा का साया हो···वहाँ तो मैं विकट से विकट सफर तय करने में भी नहीं हिचकूंगा। चलो सम्राट अशोक बेसब्री से इन्तजार कर रहे होंगे।

दृश्य परिवर्तन

[सम्राट अशोक गंगा तट पर खड़े हुए थे। निकट ही उनके अंगरक्षक भी खड़े हुए थे। सम्राट अशोक बार-बार चहलकदमी करते और फिर रुक कर गंगा नदी के उस पार देखने लगते थे, जहाँ एक विशाल क्षेत्र में जंगल फैला हुआ था। आज उन्हें 4 दिन गंगा तट पर व्यतीत हो चुके थे, परन्तु न तो उन्होंने अन्न ग्रहण किया था और न ही जल पिया था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे इस बार सम्राट अशोक ने अपने जीवन का आखिरी फैसला कर लिया हो।

अशोक : (बड़बड़ाते हुए) कितना समय बीत चुका है, लेकिन अभी तक वह लोग नहीं आए···कहीं ऐसा तो नहीं कि गुरु महाराज ने आने से फिर इन्कार कर दिया हो और इसी कारण वह लोग आने में विलम्ब कर रहे हों···कुछ भी हो···चाहे जितना विलम्ब करें···मैं यहीं इसी तरह प्रतीक्षा करता रहूँगा···यदि इस बार भी गुरु महाराज आने से इन्कार कर देते हैं तो···आज···नहीं तो कल···अथवा किसी भी दिन···जब भी वे लोग वापस आएँगे···मेरा शरीर गंगा माँ की चरणों में समर्पित हो जाएगा।

इसी प्रकार प्रतीक्षा करते-करते दो दिन और बीत गए। भूख-प्यास से उनका स्वास्थ्य काफी गिर गया था। परन्तु वह बार-बार चहलकदमी कर रहे थे, ऐसा प्रतीत होता था मानो उन्हें अब अपने जीवन से कोई मोह नहीं रह गया हो। बार-बार उनकी आँखें गंगा के उस पार दूर-दूर फैले उपवन में कुछ तलाशती चली जाती थी फिर पुनः निराशा भाव से चहलकदमी करने लगते थे।

अचानक उनके कानों में गगन भेदी नारे पड़े तो वह चौंक कर इधर-उधर देखने लगे। नारे अस्पष्ट थे परंतु उनकी आवाज से उन्हें अनुमान लगाते देर न लगी कि यह नारे गंगा के उस पार से आ रहे हैं। धीरे-धीरे नारों के स्वर स्पष्ट होने लगे थे····"गुरु महाराज की जय···गुरु महाराज दीर्घायु हों···सम्राट अशोक···।"

चहलकदमी करते हुए सम्राट अशोक अचानक रुक गए और गंगा के उस पार उनकी नजरें स्थिर हो गयी। बरबस ही वह बड़बड़ा उठे····"गुरु महाराज आ रहे हैं···गंगा माँ ने मेरी विनती सुन ली····" इसके साथ ही गंगा माँ के निर्मल जल को हाथ मे लेकर मस्तक से लगाया और इसी के साथ ही उन्होने जल पीकर अपना उपवास भंग किया।

इसके बाद अपनी भूख-प्यास से कमजोर हो गई आवाज में वहाँ उपस्थित सैनिकों को आदेश दिया—"तुम लोग खड़े-खड़े क्या देख रहे हो···जाओ सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दो कि गुरु महाराज वापस आ गए हैं···उनके आगमन के उपलक्ष्य मे जोर-शोर से उनके स्वागत की तैयारियाँ की जायें, सारे नगर को सजाया जाए···।"

इसी समय उनकी नजर गंगा तट के उस पार सामने खड़े गुरु मोगलिपुत्त तिस्स पर पडी तो हर्षातिरेक से पागल हो उठे। गुरु महाराज को एक नाव में स्वयं बिठाकर महेन्द्र एवं अन्य नियंत्रक उसे खेने लगे थे।

जैसे ही गुरु महाराज की नाव गंगा तट के निकट पहुँची, सम्राट अशोक गंगा नदी मे कूद पडे और कमर तक पानी में पहुँचकर गुरु महाराज की अगवानी करते हुए उन्हें अपनी बाँहों में उठा लिया और गोदी में लेकर गंगा नदी के तट पर आ गए।

दृश्य परिवर्तन

[राजमहल के विशेष कक्ष में सम्राट अशोक मोगलिपुत तिस्स के साथ बैठे हुए थे। इस कक्ष में एक ओर भगवान बुद्ध की आदमकद प्रतिमा स्थापित की गई थी। उस प्रतिमा को आज फूल माला से विशेष रूप सजाया गया था। सम्राट अशोक और मोगलिपुत्त तिस्स इसी प्रतिमा के ठीक सामने बैठे हुए थे। उनके बगल में महेन्द्र तथा महेन्द्र के पीछे कुछ अन्य गणमान्य बौद्ध भिक्षुगण बैठे हुए थे।]

मोगलिपुत्त : सम्राट अशोक, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आपने इन सात वर्षों मे बौद्ध धर्म की प्रगति के लिए जो कार्य किये हैं, उससे भगवान बुद्ध निश्चय ही प्रसन्न हो रहे होगे। आपके इन कार्यों के लिए हम किस प्रकार अपना आभार प्रदर्शित करें।

अशोक : आप मुझे शर्मिन्दा कर रहे हैं गुरु महाराज। मैंने जो कुछ भी किया है, आपकी प्रेरणा और आपके आशीर्वाद से ही किया है। इसलिए इसमे मेरा आभार प्रकट

करने का प्रश्न ही नही उठता है।

मोगलिपुत्त : यही तो आपकी सबसे बड़ी महानता है। निश्चय ही आपने इस अवधि में बौद्ध भिक्षुओं में व्याप्त विसंगतियों को समाप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, अन्यथा मैं तो निराश हो चुका था। इसके साथ ही भगवान बुद्ध के उपदेशों एवं शिक्षाओं के प्रचार एवं प्रसार में काफी सक्रिय योगदान प्रदान किया है।

अशोक : यह सब तो आपके आशीर्वाद का फल है, अन्यथा मैंने तो कुछ भी नही किया है। आपकी अनुपस्थिति में मार्गदर्शन के अभाव में यदि मुझसे कोई गलती हो गई हो तो उसके लिए मैं क्षमा चाहूँगा।

मोगलिपुत्त : गलती भी इन्सान से होती है और यह गलती तब होती है जब इन्सान क्रोध अथवा पश्चाताप के कारण अपना मानसिक सन्तुलन खो देता है। जैसे आपने रानी तिष्यरक्षिता को जिन्दा ही अग्निदेव की सेवा में समर्पित करके जघन्य पाप किया है।

अशोक : लेकिन महाराज उसका आचरण ही ऐसा था कि मुझे उक्त दण्ड देना पड़ा। उसके ही कारण मुझे आपका वियोग सहना पड़ा, यही नहीं उसने···!

मोगलिपुत्त : मैं सब जानता हूँ राजन्···लेकिन इन्सान चाहे जितना पतित इन्सान क्यों न हो भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार उसमें सुधार लाने का अवसर देना चाहिए। भगवान बुद्ध के मुख्य उपदेशों में एक उपदेश यह भी है कि पापी इन्सान को क्षमा प्रदान करना ही सबसे बड़ा दण्ड है।

अशोक : महाराज, मैं उस समय क्रोधाग्नि में इतना अंधा हो चुका था कि मुझे···!

मोगलिपुत्त : राजन्, मैंने पहले भी आपसे कहा था कि क्रोध और पश्चाताप ऐसे कारक हैं, जो अनेकानेक दु:खों का जन्म देते हैं।

अशोक : इसीलिए मुझे आपसे विलग होकर असह्य दुःखों का सामना करना पड़ा।

मोगलिपुत्त : राजन्, मुझसे ऐसी कोई विशेषता नही है, बल्कि यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं आपके दु:खों का कारक बना।

अशोक : महाराज, ऐसा मत कहें। मैं अपनी गलती स्वीकार करता हूँ और उस गलती के लिए क्षमा मांगता हूँ। अब मैं निश्छल भाव से अपना सम्पूर्ण जीवन भगवान बुद्ध के कदमो मे अर्पित करते हुए उनके उपदेशों के पालन की सौगन्ध खाता हूँ।

मोगलिपुत्त : राजन्, पश्चाताप करना भी दुःख का एक कारक है, अतः इसके लिए आवश्यक है कि आप उन सभी न्याय अन्यायों को अपने हृदय से निकाल दें तभी आप भगवान बुद्ध के उपदेशों और शिक्षाओ का अनुपालन सुनिश्चित कर सकेंगे।

अशोक : ठीक है महाराज ! मैं अपने मन से पश्चाताप को जड़ से समाप्त करते हुए भगवान बुद्ध के उपदेशो के प्रचार एवं प्रसार की नई योजनात्मक रूपरेखा प्राप्त करने के लिए आपका मार्गदर्शन चाहता हूँ।

मोगलिपुत्त : निश्चय ही राजन्, इसमें कोई सन्देह नही है कि आपने बौद्ध धर्म की

शिक्षाओं के प्रचार एवं प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इस दिशा में आपने उत्कृष्ट कार्य करके सम्पूर्ण भारत ही नही बल्कि अन्य देशों जैसे चीन, तिब्बत, मेघालय, श्रीलंका, कोरिया आदि मे भी भगवान बुद्ध के उपदेशो का प्रचार करवाया एवं बौद्ध मठो एवं स्तूपो का निर्माण करवाया, जिसके लिए बौद्ध धर्म आपका सदैव आभारी रहेगा।

अशोक : महाराज, इस प्रकार के छोटे-मोटे कार्यों के लिए मेरी प्रशंसा करने का कोई औचित्य नही है। मैंने जो कुछ किया है, उसका मूल उद्देश्य केवल राष्ट्र हित ही नही वरन् भगवान बुद्ध के उपदेशो के प्रचार एवं प्रसार के लिए यथोचित काय करना है। चूंकि भगवान बुद्ध के उपदेश एक नये समाज के निर्माण मे सहायक सिद्ध हुए हैं, इसीलिए मैंने उसको स्वीकारा है। चूंकि मेरे पास धन का विशाल भण्डार है, इसलिए मैंने उस धन का सदुपयोग किया। लेकिन महाराज क्या आपने यह कभी सोचा है कि वास्तविक रूप में प्रशंसा का पात्र मैं नही बल्कि वे अभागे हैं, जिनके ऊपर अत्याचार करके, कत्ले आम करके, खून की नदियाँ बहाकर इस धन को संचित किया था। चूंकि जो धन मेरे पास था एवं इस समय है, वह उन्ही अभागों का है, इसलिए निरर्थक मेरी प्रशंसा करके मेरा सम्मान न बढ़ाएँ बल्कि उन अभागों की आत्माओं की शान्ति प्रदान करने के लिए भगवान बुद्ध से प्रार्थना करें।

मोग्गलिपुत्त : अब मुझे विश्वास हो गया है कि निश्चय ही आप भगवान बुद्ध के सच्चे अनुयायी बन गए है। निश्चय ही हमें उन अभागों की आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। लेकिन इसके बावजूद भी राजन् आपका महत्त्व कम नहीं हो जाता। जिस प्रकार एक साधु का यह कर्तव्य होता है कि वह नये युग के निर्माण के लिए बीते हुए युग की उपलब्धियों एवं परिलब्धियों का मूल्यांकन करते हुए वर्तमान के लिए एक ऐसी शिक्षा नीति का विकास करे, जिससे मानव में न केवल पाप पुण्य का ज्ञान हो सके वरन् एक सुखद भविष्य का निर्माण भी कर सके। राजन् प्राचीन काल मे मानव नरभक्षी था, लेकिन आज नही है। केवल इसलिए कि साधु महात्माओ ने तब और ज्ञान के माध्यम से ऐसे माध्यमों की खोज करने मे अपना सम्पूर्ण जीवन इसीलिए अर्पित कर दिया कि मानवो का विकास हो, उसका बौद्धिक स्तर बढे, सोचने विचारने की क्षमता विकसित हो, पाप-पुण्य के सम्बन्ध में चिन्तन मनन करे। परिणामतः मानवो में सभ्यता का विकास हुआ और इसी के साथ राजा पद की स्थापना हुई। राजा का मूल उद्देश्य जनता की रक्षा करना उसे समान रूप से जीने का अवसर प्रदान करना एवं समाज में आ रही विकृतियों को दूर करने का प्रयास करना था। चूंकि राजा का उद्देश्य समाज मे आ रही विकृतियों को दूर करना था इसलिए राजा के साथ ही साधु का महत्त्व कम नही था क्योंकि समाज का वास्तविक अध्ययन एव एक भावी स्वच्छ समाज

की रूपरेखा साधु ही तप और बल से प्रदान कर सकता है। परन्तु धीरे-धीरे राजा के अधिकारो में वृद्धि होती गयी, जिसके कारण राजा का जीवन विलासितापूर्ण हो गया। राजा सिर्फ धन को महत्त्व देने लगा न कि समाज की सुरक्षा का। समाज मे क्या हो रहा है, इससे राजा का कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। फलस्वरूप समाज कई भागों में विभक्त हो गया और हर वर्ग में एक राजा के पद की स्थापना होने लगी।

राजन् राजा का मूल उद्देश्य मात्र खून की नदियाँ बहाना, कत्ले आम करके जनता को लूटना, दूसरे राज्य को जीतकर वहाँ की जनता का शोषण करना ही रह गया। आप भी उसी में मे एक थे। इसलिए आपने जो कुछ किया वह निश्चय ही पाप की परिभाषा में नही आना चाहिए क्योंकि साधुओं का मत है कि राजा जब अपना यही धर्म समझने लगता है तो वह पाप नहीं कहलाता। परन्तु आपने एक नये युग की स्थापना की दिशा में पाप पुण्य की जो परिभाषा की है, आपने जिस प्रकार राजा एवं संन्यासी पद का भार एक साथ ग्रहण किया एवं राज कार्य के साथ ही जनहित में कार्य किया है, उससे निश्चय ही आप प्रशंसा के पात्र ही नही बल्कि आने वाले नये युग निर्माण के प्रवर्तक भी बन चुके हैं।

अशोक : महाराज, तर्क बल पर आपसे जीतना मेरे लिए सम्भव नहीं है। अब आप आ गए हैं, इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप बौद्ध धर्म को और प्रगति की राह पर अग्रसर करने में अपना योगदान प्रदान करें।

मोगलिपुत्त : राजन्, अब तक बौद्ध धर्म की प्रगति के लिए जो कुछ भी किया गया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। लेकिन मेरी एक अन्तिम इच्छा भी है। अन्तिम इच्छा का तात्पर्य यह है कि चूँकि अब मैं मोक्ष प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करने वाला हूँ अतः अपनी इच्छा पूर्ति से आपके योगदान की कामना करता हूँ।

अशोक : महाराज, आप ऐसा न कहें। आप अपनी इच्छा बताएँ।

मोगलिपुत्त : राजन्, मेरी अन्तिम इच्छा काफी कठिन है। और इसलिए मेरा यह उद्देश्य नही है कि आप मेरी इस अन्तिम इच्छा की पूर्ति करने के प्रस्ताव को स्वीकार ही कर लें। चूँकि इस इच्छा पूर्ति में काफी धन व्यय होगा, काफी परिश्रम करना होगा इसलिए आप जो भी निर्णय लें, वह जनहित एव राजहित को दृष्टिगत रखते हुए ही लें!

अशोक : महाराज, आप बिल्कुल निश्चित होकर अपनी इच्छा का वर्णन करें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आपकी इच्छा पूर्ण करने का पूरा प्रयास ही नहीं करूँगा, बल्कि इस बात का भी पूरा प्रयास करूँगा कि आपकी इच्छा पूर्ति मे किसी भी प्रकार का जनता का शोषण न हो और राष्ट्र की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति पूर्ववत सुदृढ़ रहे।

मोगलिपुत्त : नही राजन्, ऐसा नहीं होगा। फिर भी आपके आग्रह को देखते हुए अपनी

इच्छा बता रहा हूँ। मेरी अन्तिम इच्छा बौद्ध संगीत के आयोजन की है। अब तक बौद्ध संगीत काफी अन्तराल पर हुए हैं तथा अब तक दो बौद्ध संगीतों का ही आयोजन हो सका है। यह संगीत 9 माह तक चलता है, जिसमें देश-विदेश से बौद्ध भिक्षु आकर भाग लेते हैं। इसमें काफी धन व्यय होता है। इस प्रकार के संगीत का उद्देश्य बौद्ध धम्म में व्याप्त हो गई विसंगतियों को दूर करने के साथ ही भगवान् बुद्ध के दर्शन करना होता है। कहा जाता है कि इस अवसर पर भगवान बुद्ध स्वयं आकर अपने भक्तों को दर्शन देते हैं।

राजन्, द्वितीय बौद्ध संगीत का आयोजन सैकड़ों वर्ष पूर्व हुआ था। चूँकि अब मैं इस योग्य नहीं हूँ कि इतने विशाल संगीत का आयोजन कर सकूँ और न ही मेरे पास इतना धन है कि इसकी कल्पना भी कर सकूँ। यही नहीं मुझे कब मोक्ष प्राप्त हो जाए, इस सम्बन्ध में भी कोई भविष्यवाणी कर सकना सम्भव नहीं है। अतः मेरी अन्तिम इच्छा यही है कि आप तृतीय बौद्ध संगीत का आयोजन कराएँ परन्तु इसके लिए किसी प्रकार का जनशोषण अथवा अत्याचार न हो। मुझे विश्वास है राजन् कि इस अवसर पर भगवान बुद्ध आपको दर्शन देंगे।

अशोक : महाराज, बस इतनी छोटी-सी बात के लिए आप इतना परेशान हो रहे हैं। अरे 9 माह तो क्या 9 वर्ष का कार्यक्रम हो तो भी मैं उसे पूरा करा सकता हूँ।

मोगलिपुत्त : राजन्, आप शासक हैं, इसलिए आपके लिए यह छोटी-सी बात है, जबकि मेरे जैसे व्यक्तियों के लिए यह कल्पना मात्र ही है। वैसे मैं फिर यही कहूँगा कि राजन्, इस मामले में काफी सोच-विचार के बाद ही जनहित एवं राजहित में अपना निर्णय लें।

अशोक : कैसी बात करते हैं महाराज ! आपका आदेश और मैं इन्कार करूँ, ऐसी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। फिर ऐसे मामलों में किसी प्रकार के सोच-विचार का प्रश्न ही कहाँ उठता है।

मोगलिपुत्त : भगवान बुद्ध इस आयोजन में आपकी अवश्य सहायता करेंगे।

अशोक : भगवान बुद्ध सहायता करें या न करें लेकिन बिना आपके सहयोग के यह आयोजन कर सकना संभव नहीं है। अतः आपको इस तृतीय बौद्ध संगीत के आयोजन के लिए अध्यक्ष बनाया जाता है।

मोगलिपुत्त : राजन्, यह उचित नहीं है। मेरी मृत्यु का कोई भरोसा नहीं है, इसलिए उचित यही होगा कि आप अध्यक्ष पद सँभालें अन्यथा महेन्द्र को बना दें।

महेन्द्र : गुरु महाराज, मैं इतने बड़े पद के योग्य नहीं हूँ। मेरी तो प्रार्थना यही है आप ही इस पद का भार संभालें। मैं आपको हर तरह का सहयोग एवं सेवा करने के लिए तत्पर रहूँगा।

अशोक : गुरु महाराज, इस पद को आप ही सुशोभित कीजिए। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, आपने पहले से ही इतना बड़ा दायित्व सौंप रखा है। शासन के साथ इस पद का

भार सँभालना मेरे लिए अत्यन्त दुष्कर होगा और ऐसी स्थिति में तृतीय संगीत सफल भी होगा, इसमें सन्देह पैदा हो जाता है।

मोगलिपुत्त : लेकिन राजन्, यदि इस बीच मेरी मृत्यु हो गयी तो…।

अशोक : मुझे विश्वास है कि आपको कुछ नहीं होगा। भगवान बुद्ध का आशीर्वाद आपके साथ रहेगा।

मोगलिपुत्त : ठीक है। जैसी आपकी इच्छा।

सोलहवाँ दृश्य

[सम्राट अशोक ने तृतीय बौद्ध संगीत का विशाल आयोजन वैशाली नामक नगर में किया। इस अवसर पर पूरे वैशाली नगर को सजाया गया एवं जगह-जगह अस्थायी एवं स्थायी आवासों की व्यवस्था की गयी थी। वैशाली नगर की एक दिशा में विशाल पाण्डाल बनवाया गया, जिसके अन्दर कम-से-कम 50,000 व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था की गयी थी। इसी पाण्डाल के अन्दर एक बड़ा-सा स्टेज बनवाया गया था, जिस पर भगवान बुद्ध की आदमकद अष्ट धातु की प्रतिमा स्थापित की गयी थी। इस अवसर पर वैशाली नगर में जगह-जगह धर्मशालाओं का निर्माण करवाया गया एवं विभिन्न स्थलों पर जलपान आदि की व्यवस्था निःशुल्क करवायी गयी थी, जिससे आने-जानेवाले अतिथियों एवं यात्रियों को किसी प्रकार की असुविधा का सामना न करना पड़े।

जब तृतीय संगीत के आयोजन की व्यवस्था पूर्ण हो गयी, तब देश-विदेश से हजारों दर्शनार्थी वैशाली नगर में एकत्रित होने लगे। बौद्ध भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों से वैशाली नगर भर उठा। चारों ओर भगवान बुद्ध के उपदेशों पर आधारित भजनों का गान होने लगा।

अन्ततः वह दिन भी आ गया, जिस समय उक्त तृतीय संगीत के आयोजन का शुभारम्भ होना था। पूरा पाण्डाल बौद्ध भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के साथ अनेकानेक सम्प्रदाय के बौद्ध धर्म के अनुयायी एवं अन्य अतिथियों से खचाखच भर चुका था। मोगलिपुत्त तिस्स की अध्यक्षता में इस कार्यक्रम की शुरुआत होनी थी। एक दिशा में भगवान बुद्ध की आदमकद प्रतिमा के पास मोगलिपुत्त तिस्स बैठे थे। उनके दायें और सम्राट अशोक बैठे थे तथा बायीं ओर महेन्द्र योगासन की मुद्रा में बैठे थे।

मोगलिपुत्त तिस्स ने कार्यक्रम आरम्भ करने की घोषणा करते हुए भगवान बुद्ध की विशाल प्रतिमा के समक्ष रखे जल कलश से कुछ जल अंजुलि में भरा और

उसे भगवान बुद्ध की प्रतिमा पर छिड़कते हुए मंत्रोच्चारण करने लगे। इसके बाद फूल माला से भगवान बुद्ध की प्रतिमा को सुशोभित करते हुए उन्होंने प्रकाश दीप जलाया। चूंकि इस दीप को अबाध गति से नौ माह तक जलते रहना था, अतः इस दीप को विशेष तौर से बनाया गया था।

भगवान बुद्ध की पूजा अर्चना के बाद मोग्गलिपुत्त तिस्स ने सभा पर एक दृष्टिपात किया, तदोपरान्त बोले—"देश-विदेश से आए भगवान बुद्ध एवं उनकी शिक्षाओं में आस्था रखने वाले उनके अनुयायियों एवं बौद्ध भिक्षुगणों का स्वागत करते हुए हम अपने को धन्य पा रहे हैं। जिन्होंने इस ऐतिहासिक महत्त्व के तृतीय संगीत कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए यहां अपनी उपस्थिति प्रदान की। इसके साथ ही हम उन सभी लोगों के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए तन-मन-धन से अपने को समर्पित किया।

इस कार्यक्रम की शुरुआत करने के पूर्व हम भगवान बुद्ध के जीवन पर एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर देना चाहते हैं। भगवान बुद्ध, जिनका वास्तविक नाम सिद्धार्थ था, का जन्म बड़े ही आश्चर्यजनक ढंग से हुआ था। उस समय जबकि उनकी मां वन विहार के लिए निकली थी, तभी उन्हें प्रसव पीड़ा हुई और उन्होंने जिस पुत्र रत्न को जन्म दिया, उसका नाम ही आगे चलकर सिद्धार्थ पड़ा। सिद्धार्थ के पिता शुद्धोधन लुम्बिनी नामक देश के राजा थे, जो कि नेपाल में स्थित है।

सिद्धार्थ बाल्यकाल से ही विचारशील रहा करते थे। उनका राजकाज से कोई लगाव नहीं था। जब वे किसी दुःखी, पीड़ित व्यक्ति को देखते तो उन्हें काफी दुःख होता और वे अक्सर सोचा करते कि आखिर मानव को दुःख और पीड़ा क्यों होती है, उसके रोगों का कारण क्या है। वह अक्सर सोचा करता कि आखिर इन्सान मरता क्यों है, क्या वह अमर नहीं हो सकता। स्थिति यह थी कि जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती जा रही थी, उसका ध्यानाकर्षण इन्हीं रहस्यों के प्रति बढ़ता जा रहा था।

राजा शुद्धोधन ने सिद्धार्थ की हस्तरेखाओं का परीक्षण राजज्योतिषियों से कराया। उन्होंने अनेकों ग्रहों पर नजर डालकर एवं उनकी स्थितियों पर विचार करने के बाद बताया कि सिद्धार्थ या तो चक्रवर्ती सम्राट बनेगा अथवा बहुत बड़ा संन्यासी।

जहां राजा शुद्धोधन को उसके चक्रवर्ती सम्राट बनने की भविष्यवाणी से सुख की अनुभूति हुई, वहीं संन्यासी बनने की बात को लेकर उनका मन विचलित हो उठा। क्योंकि बालक सिद्धार्थ की प्रकृति सन्यास जीवन में प्रवेश की सूचक थी। उन्होंने बालक सिद्धार्थ की प्रकृति को बदलने के लिए काफी प्रयास किए परन्तु जब वह निष्फल हो गए तो उन्होंने बालक सिद्धार्थ का विवाह चौदह वर्ष की आयु में ही कर दिया। विवाहोपरान्त भी उनकी प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं

आया और पूर्व की तरह वह उन्हीं समस्याओं पर चिन्तन मनन किया करते थे। इसी अवधि में उन्हें एक पुत्र रत्न भी प्राप्त हुआ।

जब पारिवारिक जीवन से उनकी शंका का समाधान नहीं हो सका एवं पुत्र रत्न प्राप्ति के बाद भी उन्हें शान्ति न मिल सकी, तब उन्होने एक भयानक फैसला किया। हां, इसे भयानक फैसला ही तो कहा जाएगा कि एक काली रात को वह अपनी सुन्दर पत्नी और फूल जैसे कोमल पुत्र का मोह त्याग कर अज्ञातवास में चले गए। वह कहां गए, इसकी किसी को कोई जानकारी नही थी। राजा शुद्धोधन ने उन्हे ढुंढवाने का काफी प्रयत्न भी किया परन्तु वह तो तमाम माया मोह से विरक्त होकर जंगलों और पहाड़ों का भ्रमण कर रहे थे, यह जानने के लिए कि आखिर दु:ख है क्या, रोग के कारण क्या हैं और इन्सान की मृत्यु क्यों होती है। वह कब तक जंगलों, पहाड़ो आदि में घूमते रहे इसका तो कोई विस्तृत उल्लेख उपलब्ध नही है, परन्तु जब वह प्रकाश में आए तो उन्हें उपरोक्त बातों का पूरा ज्ञान हो चुका था और इसी ज्ञान के माध्यम मे उन्होने मानव दुःख के कारणों एव उनके निवारण के उपायों पर कुल सात मार्ग बताए।

अब हम इस आयोजन के मुखिया का भी परिचय देना चाहते हैं। इस कार्य-क्रम के आयोजक है सम्राट अशोक। सम्राट अशोक कौन हैं, इससे आप सभी लोग परिचित ही होगे। यह सम्राट अशोक ही है, जिन्होने अपना सब कुछ त्याग कर बौद्ध धर्म को न केवल अपने जीवन में अंगीकार किया वरन् उन्होने इसके पुन-रुत्थान के लिए जो संघर्ष किया है, उसके लिए बौद्ध धर्म उनका सदैव आभारी रहेगा। उन्होने जहां अपने पुत्र को बौद्ध भिक्षु बनाकर बौद्ध धर्म के इतिहास को स्वर्णिम बनाने मे योगदान दिया है वहीं अपनी जवान पुत्री को भिक्षुणी बनाकर जो संकल्प लिया है, उसके लिए भी बौद्ध धर्म सदा के लिए उनका आभारी रहेगा। हालांकि हम बौद्ध भिक्षु इतने विशाल कार्यक्रम का आयोजन करने में सक्षम नही थे, परन्तु यह सम्राट अशोक ही हैं, जिन्होने इतने विशाल कार्यक्रम की न केवल रूपरेखा ही तैयार की वरन् इसको पूर्ण कराने मे तन-मन-धन से अपने को समर्पित किया है। मैं ऐसे महान व्यक्तित्व के स्वामी एवं भगवान बुद्ध के अनुयायी सम्राट अशोक से आग्रह करना चाहूंगा कि वह अपने बहुमूल्य विचार इस आयोजन के प्रति रखने का कष्ट करें।]

अशोक : देश-विदेश से आए सम्मानित अतिथिगण एवं भगवान बुद्ध के भक्तों का मैं हृदय से आभारी हूं, जिन्होने इस आयोजन मे भाग लेकर इसे सफल बनाने के लिए इतना लम्बा सफर तय किया है। जहां तक भगवान बुद्ध के जीवन का प्रश्न है, उसे तो मैं नही जानता परन्तु उनके संघर्षमय जीवन की जो कहानी गुरु महाराज मोग्गलिपुत्त तिस्स से सुनी है, उससे मैं उनका अनन्य भक्त बन गया हूं। गुरु महाराज मोग्गलिपुत्त तिस्स की शिक्षा-दीक्षा मे मुझे जो नया ज्ञान मिला है, जोने

का जो माध्यम मिला है, उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैंने जीवन के उन क्षणों मे भगवान बुद्ध के उपदेशों को अपने जीवन में अंगीकार किया, जबकि मैं अपने जीवन से निराश हो चुका था। मेरा मन दुःख, कलेश और पश्चाताप से इतना व्यथित हो चुका था कि मैं स्वयं अपने को नष्ट कर देना चाहता था। परन्तु ऐसे नाजुक क्षण में भगवान के रूप मे गुरु मोगलिपुत्त तिस्स ने मेरे जीवन में प्रवेश किया। गुरु तिस्स ने जहाँ मुझे जीवन के अनेकानेक रहस्यों से अवगत कराया, वहीं मुझे जीने के लिए मजबूर कर दिया। उन्होंने ही मुझे भगवान बुद्ध के उपदेशो से जनसेवा की नयी एवं सही दिशा का ज्ञान कराया, अन्यथा मुझे तो इस बात का ज्ञान ही नही था कि जनसेवा होती क्या है। मैंने सदा खून की होली खेली थी, खून की नदियाँ बहायी थीं और रोते-गिड़गिड़ाते लोगों के सीने पर चढ़कर ठहाके लगाए और उनकी सम्पदाओं को लूटा था। परन्तु एक समय ऐसा आया जबकि इन रोते-गिड़गिड़ाते मानवों के प्रति मेरे मन में ऐसी दया उमड़ी कि मुझे स्वयं अपने से नफरत-सी हो उठी और मुझे केवल एक मार्ग दिखाई दे रहा था कि इस जीवन से मुक्ति पा लूं। परन्तु जब मैंने महायोगिराज मोगलिपुत्त तिस्स द्वारा बताए गए सात मार्गों को अपने जीवन मे अंगीकार किया तो मुझमे एक अजीब से परिवर्तन की अनुभूति हुई। फलतः मैंने बौद्ध धर्म को अपनाकर मानव ही नही बल्कि समस्त जीवों के हित में अनेकानेक कार्य कराए तथा विदेशों में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता बढ़ाने के उद्देश्य से प्रचार एवं प्रसार कराया एवं इसके लिए अपने पुत्र एवं पुत्री को विदेशों मे भेजा।

प्रायः लोगो में यह चर्चा होती रही है कि सम्राट अशोक केवल बौद्ध धर्म का अनुयायी है तथा अन्य धर्मों के प्रति उसमें कोई आस्था नही है। बन्धुवर इसमें कोई दो राय नही है कि मैं बौद्ध धर्म का अनुयायी हूँ एवं भगवान बुद्ध का अनन्य भक्त हूँ, क्योंकि जीवन के अन्तिम क्षणों में इसी धर्म में मुझे जीने की नई दिशा ही प्रदान नहीं की बल्कि जनता के प्रति दया, भावना और ममता का विकास भी किया। लेकिन इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि मुझे अन्य धर्मों मे कोई आस्था नही है अथवा उनकी प्रगति में मैं बाधक हूँ। बौद्ध धर्म का अनुयायी होते हुए भी मैं यहाँ केवल यही कहना चाहूँगा कि सब धर्मों में केवल वही धर्म श्रेष्ठ है, जो मानवता की सेवा के साथ ही मानवों के विकास के लिए सही दिशा का ज्ञान कराता हो। चूंकि बौद्ध धर्म के उपदेशो मे मानवता को बल दिया गया है, मानवो के दुःखों के कारणो पर विस्तृत व्याख्या ही नही की गयी है वरन् उसके निवारण के उपाय भी बताए गए हैं। बौद्ध धर्म की इन्ही तमाम विशेषताओ के कारण मैं बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया। इसके बावजूद मैं अन्य धर्मों का अनादर नही करता। हर धर्म, जो मानवता की रक्षा करने में सक्षम है तथा उनके उपदेश

एवं शिक्षाएँ मानवता प्रगति की द्योतक हैं, उनके लिए न केवल मेरे मन में आस्था है बल्कि उनकी प्रगति के लिए तन-मन-धन से योगदान करने को सदैव तैयार एवं तत्पर हूँ।

जहाँ तक इस संगीत का प्रश्न है, इस ऐतिहासिक बौद्ध संगीत का आयोजन ऐसे समय में किया गया है, जबकि मानव स्वयं मानव का ही नहीं बल्कि अपने का भी दुश्मन बन चुका है और यही कारण है कि आज मानव प्रगति रुकती-सी प्रतीत हो रही है। दिन पर दिन काम, लोभ, मोह से ग्रस्त मानव अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को भूलता जा रहा है। वह भूल गया है कि कितने परिश्रम के बाद उसने यह प्रगति हासिल की है और उसका मूल ध्येय मानव विनाश नहीं बल्कि उसकी प्रगति को सही दिशा प्रदान करना है। अतः यह आवश्यक है कि मानव को उसके अन्दर व्याप्त दुःख, भय, पश्चाताप के परिणामों से अवगत कराया जाए। इसीलिए इस संगीत का आयोजन करते हुए मैं आशा करता हूँ कि आप सभी लोग मानवों में मानव के प्रति ही नहीं बल्कि समस्त जीवों के प्रति दया भावना पैदा करते हुए इस बात का विश्वास दिलाएँगे कि वह भी उनके जीवन के एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

मैं यहाँ यह भी स्पष्ट कर दूँ कि कई धर्म-मानवों को विभक्त कर देते हैं जिससे मानव की एकता बाधित हो जाती है और इससे एक धार्मिक द्वन्द्व की शुरुआत हो जाती है। जैसा कि वर्तमान में प्रचलित है कि हर धर्म अपने को श्रेष्ठ साबित करने का प्रयास कर रहा है, भले ही उसके लिए उसे हिंसा का भी प्रयोग क्यों न करना पड़े। हर धर्म के अनुयायी अपने को सर्वोपरि समझ रहे हैं और वह नहीं चाहते कि उनके धर्म के समक्ष कोई अन्य धर्म पनप सके। अतः इस विकृति से बचने के लिए एक विकल्प है कि सभी धर्मों को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया जाए। मेरे विचार से इस विकल्प को चुनने में किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा। यदि आज के युग में मानव जाति के बीच विद्यमान सभी धर्मों का सार देखा जाए तो स्पष्ट विदित होगा कि सभी धर्म इस मत के हैं कि जो भी कार्य किए जाएँ, वह मानव हित मे हो। माँस-मदिरा के सेवन का सभी धर्म विरोध करते हैं। मेरी तो यही समझ में नहीं आता कि जब सभी धर्मों की शिक्षाएँ और उपदेश एक समान हैं तो आपस में यह विरोधाभास क्यों। अतः यदि इन सभी धर्मों को एकीकृत करके उनकी शिक्षाओं एवं उपदेशों को एक सूत्र मे पिरोकर एक नये धर्म की संरचना की जाए, इसमे न केवल मानव कल्याण निहित होगा वरन् मानव प्रगति के द्वार सदैव खुलते रहेंगे। ऐसे धर्म को हम आप सभी की सहमति से मानवता के धर्म की संज्ञा देते हैं और आशा करते हैं कि आप सभी मेरे इस प्रस्ताव से सहमत होंगे।

अन्त मे मैं पुनः अपने अतिथिगणों का आभारी हूँ, जिन्होंने इस विशाल और

लम्बे समय तक चलते रहने वाले कार्यक्रम में भाग लिया है। हाँ, मैं इतना अवश्य चाहता हूँ कि जब आप स्वदेश वापस जाएँ तो अपने साथ एक व्रत लेकर जाएँ कि आपको बौद्ध धर्म की शिक्षाओं एवं उपदेशों का प्रचार ही नहीं करना है वरन् इसी माध्यम से मानवता धर्म की एक नयी संरचना करनी है। अन्त में मैं यही चाहता हूँ कि भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में बन्धुत्व, सहयोग, आत्मनिर्भरता एवं समस्त जीवों के प्रति दया भावना का विकास हो तथा मानव विनाश के लिए जा रहे कार्यों पर मानवता धर्म के माध्यम से रोक लगाने का प्रयास किया जाए।

मोगलिपुत्त तिस्स : अभी आप लोगों ने सम्राट अशोक की मृदुवाणी को सुना। विश्व के इतिहास में शायद ही ऐसा कोई शासक हो, जिसने साधू एव राजा का दायित्व एक साथ सँभाला हो। जहाँ एक ओर सम्राट अशोक ने शासन व्यवस्था का संचालन किया है, वहीं उन्होंने मानवता के लिए ही नहीं वरन् समस्त जीवों के हित में उल्लेखनीय कार्य किए हैं। कितना आश्चर्य है कि जहाँ उन्होंने एक राजा के रूप में इतने विशाल राष्ट्र की शासन-व्यवस्था का संचालन किया, वहीं उन्होंने सन्यासियों की भाँति भगवान बुद्ध की छत्रछाया में न केवल भगवान बुद्ध की शिक्षाओं एवं उपदेशों का प्रचार एवं प्रसार किया है वरन् समस्त धर्मों को एक-सूत्र में पिरोने की जो बीणा उठाई है तथा सभी धर्मों से इस कार्य में योगदान का जो उद्घोष किया है, उसके लिए आने वाला इतिहास उनका आभारी रहेगा। जैसा कि आप भी परिचित हैं कि शासक और संन्यासी यदि एक-दूसरे शत्रु नहीं तो मित्र भी नहीं कहलाते। जहाँ शासक हिंसा में आस्था रखते हैं और इसके लिए तरह-तरह से युद्ध, लूट-मार, नारियों का अपहरण, बलात्कार आदि के पुजारी हैं वहीं अपने कोष को हीरे-जवाहरात से सदाबहार हरा-भरा बनाए रखना चाहते हैं। सुरा और सुन्दरी के शिकार शासक वर्ग साधू-सन्यासी की शिक्षाओं का सदा विरोधी रहा है। इसके विपरीत साधू-संन्यासी मायामोह के जाल से मुक्त एक ऐसा प्राणी होता है, जिसका उद्देश्य मानव हित की दिशा में तप और संघर्ष करके प्रेरणात्मक शिक्षाओं का प्रचार एवं प्रसार करना होता है, जिससे मानव का शोषण न हो सके और मानवों को चाहे वह जिस जाति अथवा जिस वर्ग का हो, समान रूप से जीने का अधिकार मिले। परन्तु आज हमारे बीच में ऐसे भी साधू-संन्यासी आ गए है, जो पाखण्डवाद को जन्म देकर राजा को गुमराह करने का भी प्रयास करते हैं और मायामोह के जाल में फँसकर मुँह में राम और बगल में छुरी का सिद्धान्त मानते हैं। जबकि एक सच्चा साधू-संन्यासी कठोर-से-कठोर तप इसलिए करता है कि वह मानव दुःखों के कारणों के निवारण के लिए उपाय खोजे जिससे मानवों के बीच आ गयी कुरीतियों का समूल नाश किया जा सके। सच्चे संन्यासी के मानव हित में किए जा रहे तप के आगे राजा इन्द्र तो क्या कामदेव तक नत-मस्तक हो जाते हैं। परन्तु सम्राट अशोक ने राजा इन्द्र और कामदेव की उपस्थिति

में भी एक संन्यासी-सा जीवन व्यतीत किया। आपको जानकर आश्चर्य तो होगा ही कि सम्राट अशोक के महल में एक से एक सुन्दर अप्सराएँ मौजूद हैं, जिनके आगे बड़े से बड़े ऋषि-मुनियों तक की तपस्या भंग हो सकती है, वहीं दूसरी ओर सम्राट अशोक हैं, जिन्होंने इन दोनों के मध्य रहते हुए जो तप किया है, उसका ही परिणाम है कि हम इस विशाल संगीत का आयोजन करने में सक्षम हो सके हैं।

अन्त में हम आशा करते हैं कि आप सभी सम्राट अशोक के विचारों से सहमत होंगे और विश्व में बंधुत्व की भावना के विकास की दिशा में कार्य करके एक नये युग के निर्माण में अपना योगदान प्रदान करेंगे। आप लोग इस संगीत समापन के बाद जब अपने देश वापस लौटें तो एक संकल्प के साथ जाएँ और आपसी धार्मिक लड़ाई, वर्ग भेद आदि के विनाश के लिए कृत संकल्प होकर जाएँ, जिससे आने वाले इतिहास में यह संगीत सदियों तक याद किया जाता रहे।

सत्रहवाँ दृश्य

[राजमहल के सभाकक्ष में सम्राट अशोक अपने विश्वस्त मंत्रिगणों के साथ ही सम्मानित पार्षदों के साथ बैठे हुए थे। आज की यह महत्त्वपूर्ण बैठक सम्राट अशोक ने आपातकालीन परिस्थिति में बुलायी थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो आज कोई बहुत ही महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया जाने वाला था क्योंकि सम्राट अशोक के चेहरे पर गहनतम चिन्ता के भाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहे थे।]

अशोक : जैसा कि आप सभी को विदित है कि मैंने इस देश की शासन-व्यवस्था का संचालन पूर्ण कर्त्तव्यपरायणता के साथ किया है। मैंने इस अवधि में अनेकानेक परिवर्तन अनुभव किए हैं। मेरे राजकार्य संचालन में आप लोगों ने जो योगदान दिया, उसके लिए मैं आभारी हूँ। वैसे वह भी एक युग था, जब मेरे नाम से लोग दहल उठते थे और उस समय मेरी भी इच्छा थी कि मैं सम्पूर्ण पृथ्वी का शासक बनूँ परन्तु मेरी यह महत्त्वाकांक्षा अपूर्ण ही रह गयी। इसी बीच में परिस्थितियों ने ऐसा पलटा खाया कि मैं खून-खराबे से सख्त नफरत करने लगा और जनसेवा का एक नया व्रत लेकर जो कार्य किया, उससे आप सभी परिचित ही हैं। परन्तु अब मैं थक चुका हूँ, राजकाज में मेरा कोई आकर्षण नहीं रह गया है। इसके साथ ही मेरी जिन्दगी का भी अब कोई भरोसा नहीं है। अत: अब यह आवश्यक हो गया है कि मैं अपने समस्त पुत्रों में किसी योग्य पुत्र को युवराज चुन लूँ जो मेरे बाद इस देश का राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक संचालन न्यायप्रिय ढंग से कर सके।

इसी सम्बन्ध मे मैंने आप लोगों की यह आपातकालीन बैठक बुलाई है।

विक्रमसिंह : महाराज, मेरे विचार से तो अभी आपको कुछ और प्रतीक्षा करनी चाहिए। विशेष रूप से उस समय तक जब यह बौद्ध संगीत समाप्त नहीं हो जाता है।

अशोक : मैं भी पहले यही सोच रहा था, लेकिन जब से मैं बौद्ध संगीत में व्यस्त हुआ हूँ, कुछ विद्रोही ताकतें सर उठाने लगी हैं और उन्होंने विद्रोह पैदा करने के प्रयास शुरू कर दिए हैं। मुझे विदित हुआ है कि इस अवधि में देश की राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था गिरती जा रही है। मुझे स्पष्ट आभास हो रहा है कि वे लोग मेरी व्यस्तता का नाजायज फायदा उठाने का प्रयास कर रहे हैं। अतः मैं यह भी चाहता हूँ कि मेरी अनुपस्थिति में आप लोगों के परामर्श से चयनित उत्तराधिकारी इस देश की बागडोर को अभी से ही सँभाल ले और विद्रोही शक्तियों को मुँहतोड़ जवाब दे।

जयदत्त : महाराज का विचार सही है। मेरे गुप्तचरों ने सूचना दी है कि इन विद्रोहों का उद्देश्य धार्मिक संप्रभुता कायम करना है। जनता जनार्दन को धर्म के आधार पर विभिन्न धार्मिक संस्थाओं द्वारा भड़काने का प्रयास किया जा रहा है, जिससे यह संगीत पूर्ण न हो सके। मेरे गुप्तचरो के अनुसार ऐसी धार्मिक संस्थाएँ जनता को गुमराह करने के उद्देश्य से भड़का रही है कि सम्राट अशोक ने जनता के धन का दुरुपयोग करके इस संगीत का आयोजन किया है।

विक्रमसिंह : चूँकि महाराज का आदेश है कि राज्य में खून-खराबे की स्थिति न लाई जाए, इसका भी लोग लाभ उठा रहे हैं। यही कारण है कि जहाँ जनता में आपके विरुद्ध विद्रोह को भड़काया जा रहा है, वही राजमहल मे विद्रोह पनप रहा है। सम्भावना है कि इस बौद्ध संगीत का समापन अधूरा ही रह जाए।

अशोक : नहीं विक्रमसिंह'''बौद्ध संगीत अवश्य पूर्ण होगा। लेकिन देश की स्थिति को देखते हुए युवराज का चयनित होना भी आवश्यक है। यदि इस अवधि में मेरा देहान्त हो गया तो तुम्हे यह वचन देना होगा कि तुम लोग इस संगीत को पूर्ण कराने में पीछे नही हटोगे।

जयदत्त : महाराज, आप ऐसा मत कहिए। हम लोग तो चाहते हैं कि हम लोगों की उम्र आपको लग जाए। फिर महाराज अभी तो एक और नया इतिहास लिखा जाना है।

अशोक : जयदत्त, तुम लोगो के अमूल्य योगदान, अनुभव से जो कुछ मैंने हासिल किया है, जनसेवा मे वशीभूत होकर जो कार्य किया है एवं बौद्ध धर्म की शिक्षाओ के प्रचार एव प्रसार मे जो योगदान आप लोगों से मिला है, वही इतिहास होगा। मैं चाहता हूँ कि तुम लोग अपने आगामी शासक का चुनाव अभी से कर लो, जो मेरे द्वारा डाली गयी नीव को और मजबूत करके आने वाले इतिहास को स्वर्णिम बना सके।

जयदत्त : ठीक है महाराज···यदि आप मेरा परामर्श चाहते हैं तो मेरे विचार से कुणाल के पुत्र संप्रति युवराज बनाए जाने योग्य हैं।

अशोक : आश्चर्य है कि मेरे सभी पुत्रों को छोड़कर तुमने संप्रति को ही क्यों योग्य पाया।

विक्रमसिंह : राजहित एवं जनहित को दृष्टिगत रखते हुए मैं भी जयदत्त के प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।

अशोक : आश्चर्य है।

विक्रमसिंह : महाराज, इसमें आश्चर्य करने का कोई प्रश्न नहीं है। वैसे कारण स्पष्ट है कि यदि आपके पुत्रों में से किसी को युवराज बनाया जाता है तो इसमें अनेकानेक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। पहली समस्या तो यह है कि किसी एक पुत्र को युवराज बनाए जाने की अवस्था में सभी पुत्रों में टकराव हो सकता है। दूसरी बात यह है कि सभी पुत्रों को शासन व्यवस्था का पर्याप्त अनुभव नहीं है और किसी अनुभवहीन को राजगद्दी पर बिठाकर प्रगति की कामना निरर्थक ही होगा। ऐसी अवस्था में सम्भावना है कि हर पुत्र अपना अलग राज्य बनाने का प्रयास करे और हर भाई एक दूसरे का दुश्मन बन जाए।

अशोक : हो सकता है तुम्हारी बात सत्य हो लेकिन जहाँ तक राज कार्य के अनुभव का प्रश्न है, उन्हें इस बात का ज्ञान तो होगा ही कि शासन व्यवस्था का संचालन कैसे होता है और एक राजा क्या कर्तव्य है···

विक्रमसिंह : शायद आपको याद होगा कि महारानी तिष्यरक्षिता ने भी शासन चलाने का प्रयास किया था और उसके क्या परिणाम सामने आए थे। हालांकि हम लोगों को महारानी जी के दर्दनाक अन्त पर अत्यन्त पीड़ा पहुँची है लेकिन अब हमारा प्रयास यही होना चाहिए कि राजगद्दी का भार ऐसे व्यक्ति को दिया जाए जो वास्तव में इस योग्य है और वह बिना किसी स्वार्थ के इस देश की शासन व्यवस्था को चलाने में सक्षम है।

अशोक : यदि तुम्हारी बात को मान लिया जाए कि किसी अनुभवी राजकुमार, जिसे शासन तंत्र के नियमों का पूर्ण ज्ञान हो, को ही गद्दी पर बिठाया जाए तो भी यही प्रश्न उपस्थित होता है कि संप्रति में यह अनुभव कहाँ है ?

विक्रमसिंह : निश्चय ही संप्रति भी न तो अनुभवी है और न ही उसे शासन तंत्रों का पूर्ण ज्ञान है। न्याय अन्याय की परिभाषा भी शायद ही उसे मालूम हो लेकिन यदि इन चीज़ों का ज्ञान उसे उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाता है तो निश्चय ही वह इस मामले में शीघ्र निपुण हो सकता है महाराज यदि किसी नौसिखिए को तलवार दे दी जाए तो वह मित्र और दुश्मन की पहचान नहीं कर सकेगा परन्तु किसी ऐसे व्यक्ति को तलवार दे दी जाए, जो उसे सीखने में रुचि रखता है एवं वह इस योग्य समझा जाता है कि वह वास्तव में तलवार चलाने के योग्य है तो उसे वह सभी

कलाएँ सिखाई जानी उचित होंगी, जिससे वह अपनी कला का ज्ञान तो प्राप्त कर ले परन्तु वह उसका दुरुपयोग न करें। चूँकि संप्रति अभी युवा है, उसमें वैभव है एवं सीखने की लालसा है तो उसे ही राजगद्दी का भार सौंपना चाहिए। इसके अतिरिक्त यहाँ मुख्य प्रश्न यह भी है कि राजगद्दी प्राप्त करने के बाद अपने प्रियजनों के मध्य कटुता न पैदा हो और गद्दी के लिए आपस में खून-खराबे की स्थिति न आए। चूँकि राजकुमार सप्रति को सभी प्यार करते हैं, अतः ऐसी स्थिति की सम्भावना नहीं है।

जयदत्त : महाराज···राजगद्दी के मामले मे वरिष्ठता क्रम को निर्धारित न करके योग्यता और अनुभव के आधार पर ही भावी शासक की नियुक्ति की जानी चाहिए। हालांकि आपके पुत्र वरिष्ठ तो हैं लेकिन उनको इस पद का भार सौपना किसी दृष्टिकोण से उचित नहीं है। इसके अतिरिक्त भी राजगद्दी का भार ऐसे व्यक्ति को सौंपना उपयुक्त होगा जिसके कारण किसी प्रकार का वैमनस्य अथवा आपसी कटुता पैदा न हो और उसे सभी शासक के रूप में स्वीकार करने के समर्थन में हो। यदि इस सम्बन्ध मे जन समर्थन एकत्र कर लिया जाए, तो ज्यादा उचित होगा।

विक्रमसिंह : महाराज···अभी जनसमर्थन एकत्र करने मे अनेकानेक समस्यायें हैं, फिर इसके लिए कोई ठोस तकनीक अपनानी होगी, जिस पर शासकीय व्यय भी काफी हो सकता है। फिर अभी हम किसी को शासक नहीं चुन रहे हैं, जिसके लिए जनसमर्थन की आवश्यकता महसूस हो। अभी तो हम केवल उत्तराधिकारी का मनोनयन कर रहे हैं। यदि संप्रति इस अवधि में अयोग्य पाया जाता है तो उसके स्थान पर किसी अन्य को उत्तराधिकारी चुना जा सकता है।

अशोक : हाँ, यह बात सही है। फिलहाल मैं तुम लोगों के प्रस्ताव से सहमत हूँ और प्रयोग के तौर पर सप्रति को उत्तराधिकारी बना रहा हूं, इस अवधि में आप लोग उसे शिक्षित करने का प्रयास करें तथा शासन तंत्रों, नियमों, अर्थव्यवस्था सम्बन्धी नियम, जनहित की परिभाषाएँ एवं उनके कार्यकलापों को समझाने का प्रयास करें। यदि 6 माह की अवधि मे वह इस योग्य हो जाता है तो उसका राजतिलक कर दिया जाएगा और यदि नही हो पाता है तो जन समर्थन के आधार पर मनोनीत व्यक्ति को राजगद्दी का भार सौंप दिया जाएगा।

विक्रमसिंह : महाराज आप निश्चित रहिए। मुझे पूरा विश्वास है कि संप्रति एक योग्य शासक सिद्ध होगा और ऐसा शासक जो आपके इतिहास को गौरवान्वित करने में पूरा योगदान प्रदान करेगा।

अशोक : अब मुझे अपने इतिहास की कोई चिन्ता नहीं है और यदि कोई चिन्ता है तो केवल इस बौद्ध संगीत को पूरा करने की और अपने स्थान पर ऐसा शासक नियुक्त करने की जो बौद्ध धर्म की शिक्षाओं के अनुसार शासन व्यवस्था का संचालन करते

हुए जनहित में शासन व्यवस्था का संचालन करे।

दृश्य परिवर्तन

[संप्रति को पूरे सम्मान एवं बहुमत के साथ सम्राट अशोक का उत्तराधिकारी मनोनीत कर लिया गया था। संप्रति अपने पिता कुणाल के समान ही शांत एवं विचारक प्रकृति का था। वह अनेकानेक विद्याओं का ज्ञाता था तथा राजकाज के संचालन में यदा-कदा योगदान भी किया करता था। हालाँकि संप्रति के उत्तराधिकारी बनाए जाने पर सम्राट अशोक के पुत्रों को आश्चर्य तो हुआ परन्तु आपसी विचार विमर्श के बाद उन्होंने अपनी कोई आपत्ति नहीं प्रस्तुत की। परन्तु संप्रति के उत्तराधिकारी मनोनीत होते ही उन्होंने संप्रति के समक्ष समस्याओं का एक विशाल भण्डार प्रस्तुत कर दिया। इस समय उन्हीं तमाम समस्याओं पर विचार विमर्श के लिए सम्राट अशोक के पुत्रगण एवं पौत्र दशलय राजमहल के सभाकक्ष में मौजूद थे। उनके साथ ही उनकी मातायें एवं पुत्रगणों की पत्नियाँ भी उपस्थित थीं।]

उज्जैनी : संप्रति हम सभी तुम्हारे उत्तराधिकारी मनोनयन किए जाने पर अपनी शुभकामनाएँ देते हैं और आशा करते हैं कि तुम एक अच्छे शासक सिद्ध होंगे। परन्तु संप्रति, शासन कार्य संचालन के लिए धन की आवश्यकता होती है जबकि आज राजकोष की स्थिति क्या है, इसे तुम स्वयं देख चुके हो। किसी समय यह राजकोष अनेकानेक बहुमूल्य हीरे-जवाहरातों से भरा-पूरा था। हमारे राजकोष की तुलना में विश्व का शायद ही कोई राजकोष रहा हो, जहाँ इतने बहुमूल्य हीरे-जवाहरात मौजूद हों। लेकिन पिताश्री ने भगवान बुद्ध के नाम पर जिस तरह से राजकोष को लुटाया है, उससे सभी परिचित हैं। माता तिष्यरक्षिता का बलिदान इसी राजकोष को बचाने के सम्बन्ध में किए गए प्रयासों का ही फल था। वे नहीं चाहती थीं कि राजकोष का सारा धन बुद्ध के भिखारियों को लुटा दिया जाए। चूँकि वे नहीं चाहती थीं कि हमारे राजकोष का सारा धन टूटी-फूटी इमारतों को बनवाने में बर्बाद कर दिया जाए, इसलिए उन्होंने कुछ नियम बनाए जिससे कुपित होकर पिताश्री ने उन्हें मृत्युदण्ड की सजा सुनायी, अब तो स्थिति और भी बदतर हो चुकी है और राजकोष में नाम मात्र को ही धन है। यदि पिताश्री पर किसी प्रकार का अंकुश लगाने का प्रयास न किया गया तो बौद्ध संगीत समाप्त होते-होते राजकोष में फूटी कौड़ी भी नहीं बचेगी और तब इसके सिवा कोई चारा न रहेगा कि हम लोग भी भगवान बुद्ध के भिखारियों की भाँति भिक्षा ग्रहण करके अपना जीवन यापन करें।

दशलय : उज्जैनी के विचारों से सहमत हूँ और ...

पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयास किया जाए। जहाँ तक मेरा विचार है, इस दिशा में संप्रति ही कोई न कोई ऐसा माध्यम खोज सकता है।

पद्मावती : मेरे विचार से संप्रति को अभी से बीच में खींचना उचित नहीं है। जहाँ तक तिष्यरक्षिता को दण्ड दिए जाने की बात है, दुःख हमें भी कम नहीं है, लेकिन यह कहना कि उसे दण्ड राजकोष के कारण मिला, मैं इसका विरोध करती हूँ। शायद तुम्हें याद नहीं होगा कि उसने मेरे पुत्र कुणाल की आँखें निकाल ली थीं और उसे उसकी नवविवाहिता पत्नी के साथ अर्थात संप्रति की माँ को भिखारियों-सा जीवन बिताने को बाध्य कर दिया था।

दशलय : हो सकता, यह भी एक कारण हो, लेकिन इस सम्बन्ध में यह भी भूलना नहीं चाहिए कि केवल इस अपराध में उसको मृत्युदण्ड देने का कोई औचित्य नहीं था। यदि उसने ऐसा अपराध किया था तो उसकी भी आँखें निकलवा देनी चाहिए थी, परन्तु वास्तविकता यह है कि उसने बौद्ध धर्म के तथाकथित भिखारियों को राजकोष से धन देने पर पाबंदी लगा दी थी तथा राजकोष की दयनीय स्थिति को देखते हुए ही उसने जनता से कर वसूलने के आदेश दे दिये थे। इन्हीं कारणों से विक्षुब्ध होकर सम्राट ने उसे मृत्यु दण्ड दिया था।

तिवाला : पुरानी बातों को उठाकर हम आपस में क्लेश की भावना पैदा करें, यह उचित नहीं है। यदि हम ऐसी बातों के माध्यम से सम्राट अशोक को दोषी सिद्ध करने का प्रयास करते हैं तो हम विभाजित हो जाएँगे और जिस उद्देश्य के लिए हम लोग एकत्रित हुए हैं, वह कभी पूरा नहीं हो सकेगा। हमारा मन्तव्य केवल यह है कि पिताश्री जिस तरह से धन का अपव्यय कर रहे हैं, उस पर नियंत्रण लगाया जाए तथा देश की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ किया जाए। सवाल यहाँ केवल राजकोष का नहीं है। सबसे अहम सवाल यह भी है कि देश में जो राजनीतिक वातावरण पैदा हो गया है उसकी ओर पिताश्री का ध्यान दिलाना है। हमें पिताश्री की आलोचना नहीं बल्कि उन्हें देश की बिगड़ती स्थिति से अवगत कराते हुए यह अपेक्षा करनी है कि राजकोष के धन को अपव्यय से रोका जाए तथा सैनिक शक्ति को बढ़ाया जाए, जिससे देश के विभिन्न स्थानों पर हो रहे विद्रोहों को शान्त किया जाए।

दशलय : तिवाला का कथन सही है। मैं माँ श्री से माफी माँगता हूँ, जिससे उनके अन्तर्मन को ठेस लगी है। वास्तविकता यह है कि देश के आर्थिक ह्रास एवं राजनीतिक स्थिति को देखते हुए मैं अपना मानसिक संतुलन खो बैठा हूँ। अभी दो दिन पूर्व ही मुझे सूचना मिली थी कि कुछ राज्यों की आन्तरिक स्थिति विस्फोटक हो चुकी है। कितना आश्चर्य है कि आज हम इस स्थिति में नहीं है कि हम लोग इस बगावत को शान्त करने का प्रयास कर सकें।

पद्मावती : बगावत और विद्रोह एक ऐसा प्रश्न है, जिसके कारण आप भटक रहे हैं,

आश्चर्य तो मुझे भी है कि जहाँ दूसरे राज्यों में विद्रोह हो रहे हैं, वहीं आज सम्राट अशोक के पुत्र ही उनके विरुद्ध विद्रोह की आवाज बुलन्द कर रहे हैं। अन्यथा सम्राट अशोक ने कभी भी ऐसे निर्देश नहीं दिए हैं कि इन विद्रोहों को शान्त करने के लिए आप लोग कुछ न करें। यदि आप लोग चाहते हैं तो खुद जाकर इन विद्रोहों को शान्त कर सकते हैं।

उज्जैनी : आपका विचार सही है, लेकिन मूल प्रश्न यह है कि सैनिक शक्ति इतनी अधिक क्षीण हो चुकी है कि हम लोग जाकर वहाँ करेंगे भी क्या। हमारी सेना के हथियार तो जंग खा चुके हैं और उनमें अब वह दिलेरी भी नहीं दिखाई देती है। सेनापति जयदत्त तो केवल बौद्ध संगीत का ही संचालन कर रहे हैं, उन्हें कोई चिन्ता नहीं है, विक्रमसिंह उस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए धन उपलब्ध करा रहे हैं, उन्हें जनता की परेशानियों को समझने एवं देश की आर्थिक समस्याओं की ओर ध्यान देने का समय नहीं है। फिर हम किस प्रकार वहाँ जाएँ ?

जलोका : निश्चय ही सम्पूर्ण स्थिति का मूल्यांकन करके हम सभी जहाँ पहुँचते हैं वहाँ अपने आपको असहाय ही पाते हैं। इसका कारण यह है कि हम कुछ करने में सक्षम नहीं हैं। न तो हमारे पास अधिकार है और न ही जनसमस्याओं को समझने की बुद्धि। हम लोग पूरी तरह से भटक चुके हैं और आज पुनः भटक रहे हैं, क्योंकि हम जिस समस्या पर विचार करने आए हैं, वह हमसे अलग होती जा रही है।

दशलथ : नहीं जलोका, हम जिन समस्याओं पर विचार करने के लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं, उसका सार एक ही है। यदि हम समस्या के आधारभूत सिद्धान्तों एवं मूलभूत बिन्दुओं पर परामर्श नहीं करते हैं तो उस समस्या को सही रूप में प्रस्तुत कर सकना संभव नहीं है। सवाल यहाँ पर राजकोष का है, लेकिन इस सम्बन्ध में इस बिन्दु पर भी विचार करना है कि राजकोष की आवश्यकता मुझे क्यों है। इसके लिए यह आवश्यक है कि देश की आन्तरिक स्थिति का मूल्यांकन किया जाए एवं इस बात का पिताश्री को एहसास दिलाया जाए कि देश की आन्तरिक स्थिति अत्यन्त विस्फोटक है और इससे निबटने के लिए सेना का आधुनिकीकरण किया जाना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त अन्य जनहित के कार्यों के लिए धन की आवश्यकता है और ऐसी स्थिति में राजकोष में मौजूद धन का दुरुपयोग न किया जाए एवं राजकोष को सुदृढ़ करने की दिशा में प्रयास किया जाए।

जलोका : फिर वही सवाल पैदा होता है कि जब हमारे पास कोई अधिकार ही नहीं है तो हम समस्या को कैसे प्रस्तुत करेंगे। परन्तु अब जबकि युवराज संप्रति को उत्तराधिकारी बना दिया गया है, तब हम उन्हीं के माध्यम से इन समस्याओं को पिताश्री के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं।

संप्रति : लेकिन अभी मुझे ऐसा कोई अधिकार नहीं मिला है, जिससे मैं आपकी एवं राष्ट्र की समस्याओं को सम्राट अशोक के सामने रख सकूँ। फिर आप लोग बड़े

हैं, मेरे सम्मानित हैं, आप लोग स्वयं सम्राट अशोक के समक्ष इन समस्याओं को प्रस्तुत कर सकते हैं। फिर यह समस्याएँ राष्ट्र हित से संबंधित हैं अतः आप लोग इस मामले में किसी प्रकार का संकोच न करें।

दशलथ : युवराज संप्रति, यदि मेरे पास अधिकार होता तो निश्चय ही मैं सम्राट अशोक के कार्यकलापों का विरोध ही नहीं करता वरन् उनपर अंकुश लगाने का भी प्रयास करता। अब चूँकि अन्तिम रूप से तुम्हें युवराज घोषित कर दिया है, अतः अब अधिकार तुम्हारे पास सुरक्षित हो गया है कि तुम राष्ट्रहित में अपना परामर्श ही प्रस्तुत न करो वरन् उनके कार्यों पर अंकुश लगाने की दिशा में यथोचित् कार्यवाही करो।

संप्रति : लेकिन जब तक सम्राट अशोक जीवित हैं, मैं उनके कार्यों में दखल देने का अधिकारी नहीं हूँ। जहाँ तक अधिकार का प्रश्न है, हमारे परिवार के सभी सदस्य सम्मानित हैं और उन्हें अपनी समस्याएँ रखने का पूरा अधिकार है।

अशोका : तुम्हारा विचार गलत नहीं है। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि हमारे अन्दर इतनी शक्ति नहीं है कि हम लोग इन समस्याओं को पिताश्री के समक्ष प्रस्तुत करें। वैसे भी तुम्हें शासक बनना है और अब तुम्हें ही देश का आर्थिक एवं राजनीतिक भार संभालना है। मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ कि क्या तुम विरासत में ऐसा राज्य चाहते हो जहाँ न तो पैसा और न ही शान्ति अर्थात् पूरा राष्ट्र विद्रोह की आग में सुलग रहा हो।

दशलथ : वास्तविकता तो यह है कि हम लोगों के हाथ कट चुके हैं। अब इस देश की बागडोर तुम्हारे हाथ में पिताश्री ने सौंप दी है। अतः पूरे तौर पर तुम्हीं इस देश के भविष्य हो और तुम्हीं इस देश निर्माता हो। हम लोग तो केवल तुम्हें राय दे सकते हैं। राज्य के हित और अहित का मूल्यांकन करने का कार्य तुम्हारा है। आगे जैसी तुम्हारी इच्छा।

संप्रति : मैं आप लोगों के बहुमूल्य परामर्श से सहमत हूँ लेकिन आप लोगों के रहते मैं यदि इन समस्याओं को सम्राट के समक्ष रखता भी हूँ तो हो सकता है कि न केवल वे मुझे पदच्युत कर दें वरन् दण्ड भी दें।

दशलथ : देखो संप्रति, इस प्रकार भयभीत होने से कुछ होने वाला नहीं है। सर्वप्रथम तुम पिताश्री को राजकोष की स्थिति से अवगत कराते हुए उन्हें समझाने का प्रयास करो कि राज्य की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो चुकी है, जिसका फायदा पड़ोसी राज्य उठा रहे हैं। अनेकानेक राज्यों में विद्रोह की स्थिति पैदा हो चुकी है, जिसके कारण देश के विभाजित होने की संभावना बढ़ती जा रही है। अतः इस बौद्ध संगीत पर हो रहे फिजूल खर्च को बंद करके सैनिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया जाए तथा जनहित के कार्यों के लिए धन उपलब्ध कराया जाए।

संप्रति : ठीक है। मैं आपके परामर्श के अनुसार ऐसा करूँगा। लेकिन यदि पिताश्री न माने अथवा उसके फलस्वरूप मुझे दण्डित किया अथवा•••।

जलोका : बेटे, इससे तुम निश्चिन्त रहो। हम सभी तुम्हारे साथ हैं। राज्य का पूरा प्रबुद्ध वर्ग तुम्हारे साथ है। यदि पिताश्री ने ऐसा कुछ किया तो एक बार पुनः वही पुराना इतिहास दुहराया जाएगा और राजमहल के इसी कक्ष में खून की नदियाँ बह उठेंगी।

संप्रति : ठीक है। यदि आप लोगों का आशीर्वाद मेरे साथ है तो हम सब मिलकर पिताश्री को समझाएं। हो सकता है बहुमत के समक्ष वह झुक जाएँ और•••।

दशरथ : हाँ, यह ठीक रहेगा। हम सभी सम्राट अशोक के समक्ष युवराज संप्रति के नेतृत्व में अपनी समस्याएँ रखेंगे। इसके बाद जो कुछ होगा, उसका हम लोग सामना करेंगे।

दृश्य परिवर्तन

[राजमहल के सभाकक्ष में सम्राट अशोक अपने सभी पुत्रगणों एवं पौत्रों के साथ मौजूद थे। कक्ष में उपस्थित सभी लोग मौन थे। सबके चेहरे पर अनिश्चितता के बादल मंडरा रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानों सभी कुछ कहना चाहते हों परन्तु पता नहीं क्यों उनकी जुबान पर ताले लगे हुए थे।]

अशोक : आखिर तुम सभी लोग मौन क्यों हो? इस बैठक में मुझे क्यों आमंत्रित किया गया है तथा इसके पीछे क्या उद्देश्य है?

संप्रति : महाराज, हम सभी लोग बड़ी ही अजीबोगरीब परिस्थितियों से घिर गए हैं? कुछ कहना चाहकर भी हम लोग कुछ कहने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं।

अशोक : तुम लोग जो भी कहना चाहते हो निर्भय होकर कहो। फिर अब तो तुम राजगद्दी के उत्तराधिकारी मनोनीत कर लिए गए हो, फिर भय किस बात का है।

संप्रति : महाराज, हमारे मध्य जो बातें फैली हुई हैं, वह अत्यन्त कड़वी हैं। परन्तु उनके पीछे राष्ट्रहित और जनहित भी निहित है।

अशोक : जहाँ देशहित एवं जनहित हो, वहाँ संकोच कैसा। तुम लोग अपने परामर्श प्रस्तुत कर सकते हो।

संप्रति : महाराज, हम लोग देश की वर्तमान स्थिति को देखकर अत्यन्त दुःखी हो उठे हैं। देश के विभिन्न भागों में विद्रोह हो रहे हैं, परन्तु हमारे पास न तो शक्ति है और न ही साधन हैं, जिससे इन विद्रोहों को शान्त करने की दिशा में कोई सक्रिय कदम उठाया जा सके। हमारी सेना की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई है। उसके पास जो हथियार हैं, वह जंग लगे हुए पुराने हथियार हैं। चूँकि हमारे सभी मंत्रिगण एवं सेनानायक बौद्ध संगीत के समापन में व्यस्त हैं इसलिए हमारी सेना पितृविहीन एवं दिशाविहीन हो चुकी है और उन्हें निर्देश देने वाला कोई नहीं है।

अशोक : इसकी मुझे भी खबर मिल चुकी है, लेकिन मैंने बौद्ध धर्म की शिक्षाओं और उपदेशो के पालन का व्रत ले रखा है, इसलिए किसी प्रकार का खून खराबा करने की स्थिति में नही हूँ। फिर भी यदि तुम लोगों के पास कोई ऐसी योजना है कि बिना खून खराबे के इन विद्रोहों को शान्त किया जाय तो मैं अपनी सहमति प्रदान करता हूँ।

संप्रति : मूल समस्या योजना की नहीं है। योजनाएं तो हमारे पास बहुत हैं, परन्तु समस्या धन की है। राजकोष की स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। जो धन उसमें बचा भी है, उसे भी बौद्ध संगीत के आयोजन में व्यय किया जा रहा है। अतः हम लोगों का विचार है कि इन योजनाओं के क्रियान्वयन के उद्देश्य से एवं राष्ट्रहित मे बौद्ध संगीत का समापन करा दिया जाए तथा उससे बचे धन से सेना का आधुनिकीकरण करके इन विद्रोहों को शान्त किया जाए।

अशोक : नही संप्रति, ऐसा कभी नही हो सकता। यह संगीत समारोह अपनी अवधि के बाद ही समाप्त होगा।

संप्रति : लेकिन महाराज, तब तक राजकोष खाली चुका होगा और राष्ट्र की आन्तरिक स्थिति…।

अशोक : बेटे, चाहे राजकोष खाली हो जाए या हम लोग भिखारी बन जाएँ, यह कदापि नही बन्द हो सकता।

संप्रति : ठीक है, यदि संगीत नही बन्द हो सकता तो बकाया राजस्व की वसूली तो हो सकती है। जैसा आपको स्वयं भी विदित हो चुका होगा कि पड़ोसी राज्य आपकी इस कमजोरी का पूरा फायदा उठा रहे हैं। इस समय हर स्थिति में धन चाहिए जिससे राष्ट्र की संप्रभुता की सुरक्षा की जा सके।

अशोक : मैं सब जानता हूँ, इसीलिए मैंने तुम्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया है। अब तुम्हारा यह कर्त्तव्य है कि तुम इस देश की रक्षा करो तथा जहाँ-जहाँ विद्रोह हो रहे हैं, वहाँ अपने पिता कुणाल के आदर्शों का पालन करते हुए उन्हें शान्त कराने का प्रयास करो। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं एक ऐसी सीमा के अधीन कैद हो चुका हूँ कि मैं कुछ कर सकने की स्थिति मे नही हूँ। राजस्व वसूली, जो कि राष्ट्र की आय का एक प्रमुख साधन है, के प्रश्न पर भी जनहित को दृष्टिगत रखते हुए ही विचार करना है। इधर गत वर्षों से देश के विभिन्न भागो में सूखे एवं अतिवृष्टि से स्थिति अत्यन्त भयावह हो उठी है। इसलिए गरीब जनता पर अत्याचार करके राजस्व वसूली की अनुमति हम कदापि नही दे सकते हैं, विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जबकि देश के नागरिक बौद्ध संगीत मे तन-मन-धन से पूरा योगदान दे रहे हैं।

दशलथ : बड़ी ही असमंजस पूर्ण स्थिति पैदा हो गई है दादाजी। न तो आप बौद्ध संगीत का समापन करवाने के पक्ष में हैं और न ही बकाया राजस्व की वसूली के

पक्ष मे हैं, फिर किस प्रकार हम अपनी सुरक्षा सम्बन्धी योजनाओं का क्रियान्वयन करें। मुझे तो यही लग रहा है कि अब इस देश को तबाही से बचाने के प्रयास निरर्थक हैं।

अशोक : (गरजते हुए) दशलथ।

दशलथ : क्यों चीख रहे हैं अब आप? यह चीख न तो अब एक शासक की है और न ही संन्यासी की। आपने अपने ही परिवार के सदस्यों को कैदियो की भाँति रख रखा है, जिन्हें न तो कुछ कहने का अधिकार है और न ही करने का। आप ही इस परिवार के सर्वेसर्वा हैं। लेकिन दादाजी, आप भी याद रखिए कि भले ही आप हमारी आवाज दबा दें, परन्तु उन विद्रोही शक्तियों की आवाज अब नहीं दब सकेगी।

अशोक : ओह तो तुम लोग भी विद्रोह पर आमादा हो उठे हो।

दशलथ : विद्रोह तो देश में हो रहा है महाराज। यही कारण है कि आज की चिन्ताजनक स्थिति को देखते हुए आपने हम लोगों को विद्रोह करने लिए बाध्य कर दिया है।

अशोक : देखो, अब केवल दो माह की ही बात है, इसके बाद मैं स्वयं संप्रति का राज्याभिषेक कराकर संन्यासी बन जाऊंगा।

दशलथ : लेकिन जब राजकोष मे धन ही नहीं रहेगा तो संप्रति क्या करेगा? धनविहीन राज्य का शासक कभी भी देश की रक्षा करने में सक्षम नही हो सकता।

अशोक : नही दशलथ, संप्रति तुम लोगों के सहयोग से सम्राट अशोक की ही तरह शासन करेगा। अपने देश एवं प्रजा की भलाई के लिए वह एक अच्छा शासक सिद्ध होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह भगवान बुद्ध के उपदेशों में आस्था रखते हुए जनहित के कार्यों को प्राथमिकता देगा।

संप्रति : महाराज, मैं भी बौद्ध धर्म का अनुयायी हूँ और उनकी शिक्षाओं में मेरी पूर्ण आस्था है। लेकिन…।

अशोक : लेकिन क्या…।

संप्रति : महाराज, एक राजा के अधिकार की सीमा होती है। एक अच्छे राजा के ऊपर जनता एवं राज्य की संप्रभुता बनाए रखने का एक महान दायित्व होता है। इसलिए राजा का प्रथम कर्त्तव्य यही है कि वह देश की सप्रभुता की रक्षा करते हुए उसके विकास को महत्त्व दे एवं जनता के सुख-दुख में अपने को सदैव तत्पर रखे। इसी के साथ ही राज्य की सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ बनाए रखने के लिए संगठित सेना का होना भी अनिवार्य है। यदि राज्य की सुरक्षा व्यवस्था कमजोर है और सैनिकों के पास हथियारो की कमी है तो वह राज्य कभी भी शान्त नहीं रह सकता। जहाँ तक धार्मिक अनुष्ठानों एवं कार्यक्रमों के संचालन का प्रश्न है, इसके लिए राजकोष लुटाना जनता के साथ अन्याय करना है। किसी भी शासक

का धर्म निरपेक्ष होना जरूरी है। किसी एक धर्म को मान्यता देकर उसका प्रसार करना एवं उस पर धन व्यय करना जनहित में नहीं हो सकता। अतः एक राजा का यह भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने देश के सभी धर्मों को समान रूप से मान्यता प्रदान करे।

अशोक : मेरे विचार से भी एक आदर्श राजा में यह सभी गुण होना अनिवार्य है। जहाँ तक धर्मों को मान्यता देने की बात है मैंने किसी धर्म को मान्यता नहीं दी है बल्कि बौद्ध धर्म के माध्यम से सभी धर्मों को एक सूत्र में पिरोकर एक आदर्शवादी धर्म की नींव डाल रहा हूँ, जिसका मूल मंत्र मानवता की रक्षा करना, समस्त जीव जन्तुओं के प्रति दया भावना रखना, अहिंसावादी नीतियों को अपनाकर सत्य पर विजय पाना एवं मास-मदिरा का त्याग करना है। बेटे, मैंने जिन्दगी में जो कुछ देखा है एवं जैसा किया है, उसका सार यही ज्ञात हुआ है कि मानवों के बीच जितने भी युद्ध होते हैं, दंगे-फसाद होते है, विद्रोह सर उठाकर खून की नदियाँ बहाने को लालायित हो उठते हैं। बेटे, शान्ति के यह दुश्मन सदैव गरीब जनता को ही अपने उद्देश्य पूर्ति के लिए बलि का बकरा बनाते हैं। न केवल ऐसे व्यक्ति गरीबों के रक्त मे अपनी प्यास बुझाते है वरन् उनका तरह-तरह का शोषण करते हैं एवं उनकी सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाते हैं। शायद तुमको इस बात का ज्ञान न हो, लेकिन मुझे मालूम है कि यह सब तभी होता है जब अनेकानेक धर्मों का आपसी टकराव होता है। यह लोग एक धर्म को दूसरे धर्म से सर्वोच्च स्तर प्रदान करने के लिए सब कुछ करते हैं। इसीलिए मैं इस बौद्ध संगीत के माध्यम से विश्व के सभी धर्मों के अनुयायियो को यह बता देना चाहता हूँ कि जब सभी धर्मों का निर्माता मानव है, तब यह धार्मिक लड़ाई क्यों? बेटे, एक बात हमेशा याद रखना कि अगर तुम धर्म के दास हो गए तो वहाँ विद्रोहात्मक स्थिति पैदा होगी, और वही कुछ आज हमारे राज्य में भी हो रहा है। तथ्यात्मक स्थिति यह है कि जहाँ मानव धर्म का दास हो गया, वहाँ विद्रोहात्मक स्थिति पैदा हो जाएगी। भले ही इससे धर्म को विजय मिल जाए परन्तु मानवता सदैव सिसकती रहेगी। इसके विपरीत यदि धर्म मानव का दास हो जाए तो वहाँ कर्म को विजय मिलती है। वास्तविकता तो यह है कि धर्म सदैव कर्म की पूजा करता है न कि कर्म धर्म की। जहाँ धर्म अधर्म हो जाता है, वहाँ कर्म ही धर्म को नियन्त्रित करके पुनः उसे वास्तविक रूप में लाता है। अतः आज हमारा उद्देश्य धर्म का दास न बनकर धर्म को दास बनाना है, जिससे हम अपने कर्म रूपी धर्म से मानवतावादी धर्म की नींव डाल कर जनसेवा की भावना को जागृत कर सकें।

संप्रति : हम आपके विचारों का आदर करते हैं। लेकिन क्षमा करें महाराज, राजकाज मे दार्शनिकता से कार्य चल सकना संभव नही है। जब तक आप सभी धर्मों को एक सूत्र में पिरोकर एक नये धर्म के निर्माण की कल्पना को साकार रूप प्रदान करेंगे,

तब तक यह देश विखंडित हो चुका होगा और तब फिर न यहाँ सम्राट अशोक सम्राट रहेगा और न ही उसकी कल्पना का साकार रूप देखने को मिलेगा। राजन् हमारा उद्देश्य शासन करना है, इसलिए शासन करना है कि गरीबों को न्याय मिले, असहाय को संरक्षण मिले और देश के सभी राज्यों को एक सूत्र में पिरोकर एक आदर्श राष्ट्र की स्थापना की जा सके।

दशलथ : महाराज, हम सभी आपके विचारों से सहमत हैं और उसमें हम लोगों की पूरी आस्था भी है। भगवान बुद्ध के विचारों से हम भी सहमत हैं और इसलिए हम सभी उनके मतों का प्रचार करना अपना धर्म समझते हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण यही है कि आपके सभी पुत्रों को राजगद्दी मे कोई मोह नही था और न है। हमारे परिवार के किसी सदस्य ने कभी भी आपकी आलोचना नही की है। लेकिन देश की जो स्थिति वर्तमान समय में देखने को मिल रही है, उससे इस बात का स्पष्ट आभास मिलता है कि इस स्थिति का एकमात्र कारण केवल एक धर्म का प्रचार एवं उसके पुनरुत्थान के लिए देश की प्रजा का धन बर्बाद किया जाता है। महाराज, राजनीति का तात्पर्य यह नही है कि किसी एक समूह या एक संप्रदाय अथवा एक धर्म को संरक्षण देकर देश का सम्पूर्ण धन उसी पर बलिदान कर दिया जाए और वह भी केवल इसलिए कि पूर्व कर्म का प्रायश्चित करना है। पिताश्री, राजनीति का तात्पर्य यह नहीं है कि चन्द लोगों के बहकावे मे आकर विचारों की दासता को स्वीकार कर लें बल्कि राजनीति का तात्पर्य कर्म से नहीं अथवा अपने कर्मों के प्रायश्चित से नही। देश की जनता के विचारों में समानता लाने के लिए होता है। एक राजा का कर्त्तव्य है कि वह अपने देश की सीमा के अन्दर रहने वाली जनता की सुख-सुविधा का पूरा ख्याल रखे और यह तभी सम्भव है जबकि राजा धर्म निरपेक्ष हो और समस्त धर्म एवं संप्रदायों को अपने विचार व्यक्त करने का पूरा अवसर प्राप्त हो। केवल यह आधार मान लेना कि बौद्ध धर्म की शिक्षाएं जनहित मे है तो इसका तात्पर्य यही होगा कि अन्य सभी धर्मों की शिक्षाएँ मानवता विरोधी हैं। अर्थात् आपके दृष्टिकोण के आधार पर कहा जा सकता है कि हर धर्म की शिक्षाओं में कुछ-न-कुछ विकार है। यहीं पर राजनीति अपना कार्य करके एक निर्धारित लक्ष्य प्रस्तुत करती है और इन राजनीतिक सिद्धान्तों के तहत राजा का यह पहला धर्म बन जाता है कि वह ऐसी शिक्षा-नीति का निर्माण करे, जिससे इन धर्मों के उपदेशों मे मौजूद विकारों को हटाकर एक नई नीति निर्धारित की जाए, जिसमें हमारे समाज का चतुर्मुखी विकास हो सके।

अशोक : निश्चय ही तुमने जो राजनीति की व्याख्या की है, उसमें मैं अपने को सहमत पाता हूँ और इस बात की प्रशंसा भी करता हूँ कि तुमने राजनीतिक क्षेत्र मे इतनी प्रगति हासिल कर ली है। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि इस राजनीति का उद्देश्य

इस संगीत को बंद करना है। लेकिन मैं तुम्हें इतना स्पष्ट कर दूं कि यह संगीत अपनी अवधि समाप्त करने के बाद ही समाप्त होगा। यही मेरा अन्तिम निर्णय है। मैं जानता हूँ कि राजमहल के अन्दर षड्यन्त्र रचा जा रहा है और यही कारण है कि पहले जिन स्वर्ण बर्तनों में बौद्ध पुजारियों को भोजन दिया था, बाद मे उनका स्थान चाँदी के बर्तनों ने लिया। लेकिन इस पर भी तुम लोगों को संतोष न हुआ और उन्हें कांस्य के बर्तनों में भोजन देने को बाध्य कर दिया। परन्तु जब से मैंने संप्रति को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया है, तुम लोगों का षड्यन्त्र तीव्र हो उठा है और अब स्थिति यह है कि कांस्य के बर्तनों के स्थान पर अपने अतिथि बौद्ध पुजारियों को पत्तल में भोजन देने के लिए बाध्य हो गया हूँ। लेकिन अब यह कहना कि इस कार्यक्रम का समापन कर दूं, यह कदापि सम्भव नहीं है। हाँ कार्यक्रम समाप्त होते ही मैं विधिवत् संप्रति का राज्याभिषेक कर दूंगा तब तुम लोग अपने इस राजनीतिक दर्शन का उपयोग करना।

संप्रति : पिताश्री, आपका यह निर्णय राजहित में उचित नहीं है। हमारे देश की जनता इस समय संकट में है। देश की शान्ति-व्यवस्था दांव पर लगी हुई है। जगह-जगह विद्रोहियों के सिर उठ रहे हैं और कत्ले आम हो रहा है। चूंकि मैं इस देश का भावी शासक हूँ अतः यह सब देख सकने में असमर्थ हूँ हालांकि आपके निर्णय के विरुद्ध तो हम नहीं जा सकते लेकिन मेरा आज अन्तिम निर्णय यह है कि आज से बौद्ध भिक्षुओं के भोजन आदि पर व्यय की जाने वाली राशि आधी कर दी जाए और यदि एक माह की अवधि के अन्दर यह कार्यक्रम समाप्त नहीं किया जाता है तो इस समारोह का व्यय भार वहन करने में राज्य अपने को असमर्थ पाते हुए आर्थिक सहायता देना बन्द कर दें।

अशोक : मत भूलो संप्रति, कि मैं इस देश का शासक हूँ और तुम्हें पदच्युत करने का अधिकार अभी मेरे पास सुरक्षित है।

संप्रति : निश्चय ही आप मुझे पदच्युत कर सकते हैं, लेकिन इसके लिए आपको बहुमत एकत्रित करना पड़ेगा।

अशोक : (चीखते हुए) संप्रति।

संप्रति : चीखने-चिल्लाने से अब कोई काम चलने वाला नहीं है। यह बहुमत से लिया गया मेरा अन्तिम फैसला है।

अशोक : (तलवार म्यान से निकालते हुए) संप्रति मेरा बहुमत यह सिद्ध करेगी।

उज्जैनी : पिताश्री, जंग लगी तलवारों से बहुमत सिद्ध नहीं होता। जहाँ तक रहा इस नंगी तलवार का प्रश्न, पिताश्री, हम आज और इसी वक्त से संप्रति को अपना राजा स्वीकार करते हैं और आपका बहिष्कार करते हैं।

अट्ठारहवाँ दृश्य

[सम्राट अशोक अपने कक्ष में बैठे हुए थे। उनके चेहरे पर आते-जाते भावों से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता था कि वह किसी गहनतम सोच-विचार में मग्न थे। कभी तो उनके चेहरे पर क्रोध की आभा झलकने लगती तो कभी उनका चेहरा बेबसी के कारण सिकुड़ उठता था। इस समय उनके समक्ष मोगलिपुत्त तिस्स और महेन्द्र बैठे हुए थे एवं चेहरे पर आते-जाते भावों का अवलोकन कर रहे थे।]

अशोक : गुरु महाराज, अब तो मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ? राजकोष से धन आना बिल्कुल बन्द हो गया और इस संगीत को पूरा होने में अभी 15 दिन की अवधि और शेष है।

तिस्स मोगलिपुत्त : राजन्, आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। हम लोग भिक्षुक हैं और जनता जनार्दन से भिक्षाटन करके एवं दान प्राप्त करके धन एकत्र करेंगे और इस संगीत को अवश्य पूरा करेंगे।

अशोक : नहीं··· ऐसा कभी नहीं हो सकता। मेरे जीते-जी आप भिक्षाटन करें, यह मेरा नहीं सम्राट अशोक का अपमान है। यह संगीत अवश्य पूरा होगा चाहे इसके लिए अपने ही पुत्रों के खून से···।

मोगलिपुत्त : नहीं राजन्···ऐसा अनर्थ मत कीजिएगा अन्यथा यह संगीत अधर्मी हो जाएगा और जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने इस विशाल आयोजन को अन्तिम चरण तक पहुँचा दिया है, वह विखंडित हो जाएगा। अब आपको काम-क्रोध, मान-अपमान, यश-अपयश सभी कुछ त्यागकर केवल भगवान बुद्ध के उपदेशों पर ही चिन्तन करना चाहिए।

अशोक : आपका, विचार सही है। लेकिन एक सम्राट के बुलावे पर आए दूर-दराज क्षेत्रों के अतिथियों को जब हम पत्तल में भोजन परोस रहे हैं तो वे क्या सोच रहे होंगे।

मोगलिपुत्त : राजन्···पत्तल मानव का जन्म-जन्मांतर का साथी रहा है। जब मानव सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ रहा था, तो सर्वप्रथम पत्तलों में ही भोजन परोसकर खाता था। इसलिए आप निराश न हों;··हम लोग भिक्षु हैं और हमें सुख-दुःख का कोई बोध नहीं है चाहे हमें अन्न-जल मिले अथवा न मिले।

अशोक : लेकिन इसके बावजूद भी मेरा मन मुझे क्षमा करने को तैयार नहीं है गुरु महाराज। कितने गौरव के साथ मैंने बौद्ध संगीत के आयोजन को सफलता की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचाने के लिए दूर-दराज देश-विदेशों तक से बौद्ध भिक्षुओं एवं अतिथियों को आमंत्रित किया। लेकिन···।

महेन्द्र : पिताश्री, आप अपने मन को इतना छोटा मत कीजिए। हम भिक्षुगण तो भिक्षाटन करके भोजन करने के आदी हैं और यही हमारा कर्त्तव्य भी है। यदि भिक्षाटन

से भोजन न प्राप्त हो तो हम लोग भूखे रहने के भी आदी हैं। अगर मेरे भाई मुझे और हमारे श्रद्धालुओं को भोजन नहीं देते हैं तो आप इसमें परेशान मत हों। हम हर स्थिति में बिना अन्न-जल ग्रहण किए भी इस संगीत को पूरा करने में कोई कसर नहीं रखेंगे और आपको किसी प्रकार की शिकायत का अवसर नहीं देंगे।

[illegible]

अशोक : ठीक है'''आप कहते हैं तो मैं चिन्तामुक्त होने का प्रयास करता हूँ। लेकिन इस संगीत का हर स्थिति में अपने समय पर ही समापन होना चाहिए।

दृश्य परिवर्तन

[राजमहल के सभा कक्ष में संप्रति की अध्यक्षता में एक आपातकालीन बैठक आहूत की गयी थी। इसमें लगभग परिवार के सभी सदस्य मौजूद थे। सेनापति जयदत्त एवं अर्थ मंत्री विक्रम सिंह को इस बैठक में मुख्य अतिथि के रूप में विशेष रूप से वैशाली से बुलाया गया था।]

संप्रति : मैंने आप सभी गणमान्य लोगों को विभिन्न राज्यों में विद्रोह शान्त करने के लिए भेजा था। हमें मिली सूचना के अनुसार हमारी सेना ने जिस तरह इन विद्रोहों को शान्त करने का प्रयास किया है, उससे मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि हमारी सेना आज भी वही है जो पहले थी। मैं अपने उन सभी बुजुर्ग एवं सम्मानित परिवार के सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस महत्त्वपूर्ण कार्य के समापन में अपना योगदान दिया तथा देश की अर्थव्यवस्था को ऊँचा उठाने में सक्रिय भूमिका निभायी है। मैं सेनापति जयदत्त का आभारी हूँ, जिन्होंने अपने सैनिकों को प्रशिक्षित करके इन विद्रोहों को शान्त करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

दशरथ : यह समय आभार व्यक्त करने का नहीं है बल्कि इस पिछड़ चुके देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर करना है। भले ही हमने विद्रोह को शान्त कर दिया है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इसका स्थायी समाधान हो गया। यह भी हो सकता सकता है कि ऐसे विद्रोही तत्त्व छिप गए हों इसलिए यह संभव है कि वे पुनः विद्रोह करें और हमारे बीच पड़ रही विद्रोह की दीवार के प्रकाश में आते ही वे पुनः इसका फायदा उठाने का प्रयास करें।

उज्जैनी : दशरथ की बात सही है। मैंने अपने क्षेत्र में विद्रोह को शान्त कर दिया है। इसी के साथ ही राजस्व वसूली की दिशा में भी सक्रिय योगदान किया है। जब मुझे विदित हुआ कि पिताश्री की कमजोरी का कुछ विधर्मी लिए फायदा उठा रहे हैं

तथा देश में संकट की स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं तब मैंने इन बिचौलियों के गोदामों, घरों पर छापे मारे जहाँ से काफी धनराशि बरामद हुई है। परन्तु इसके बावजूद विद्रोही तत्त्व गिरफ्त में नहीं आ सके हैं। अतः इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि समय आने पर यह पुनः विद्रोहों का संचालन करेंगे।

जलोका : यहाँ मूल प्रश्न विद्रोह को दबाने का नहीं बल्कि देश की जनता में शासन और शासक के प्रति आस्था पैदा करने का भी है। जब तक हम जनता का विश्वास एवं समर्थन अपने पक्ष में नहीं कर लेते, तब तक यह विद्रोह बार-बार होते रहेंगे और संभावना है कि देश विखडित हो जाए। हम केवल विद्रोही शक्तियों पर दोष मढ़कर अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाते। यदि शरीर के किसी भाग को कोई रोग हो जाता है और उसका उपचार समय से नहीं किया जाता तो वही रोग पूरे शरीर के विनाश का कारण बन जाता है। अतः हम सभी को सम्पूर्ण तथ्यों पर विचार करना होगा। यदि हम पूर्व की राजनीतिक स्थिति पर सूक्ष्म दृष्टिपात करें तो स्पष्ट विदित होगा कि इन विद्रोहों के जनक कर्ता पिताश्री ही हैं। उन्होंने केवल एक धर्म को प्रश्रय देकर अन्य धर्मों को विद्रोह करने को बाध्य किया है। अतः हमारा सर्वप्रथम यह कर्तव्य है कि हम देश को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में परिवर्तित करने की घोषणा करें। उसके बाद जनता के आर्थिक एवं सामाजिक स्तर को उठाने की दिशा में प्रयास किया जाए।

संप्रति : मैं आपके विचारों का आदर करता हूँ। आपने जो सुझाव दिए हैं, वह राष्ट्रहित में हैं और उन्हें लागू करने में कोई कठिनाई नहीं है। यहाँ मूल प्रश्न धन है, राजकोष तो महाराज ने अपने अधीन कर रखा है और वहाँ भी इतना धन नहीं है कि हम जनता के आर्थिक स्तर को उठाने के लिए प्रयास कर सकें। मेरे विचार से उचित तो यह होगा कि आप सब लोग अपने क्षेत्र में जाँच करके इस प्रकार के भ्रष्ट व्यवसायियों, बिचौलियों के यहाँ छापे मारकर धन एकत्रित करें और उस धन को जनकार्यों में व्यय करें, जिससे हम जनता के विश्वास को जीतने में सफल हो सकें। आप सभी लोग इस सम्बन्ध में रक्षामंत्री एवं अर्थमंत्री से परामर्श कर लें और जैसा वह कहें उसी के अनुसार कार्यवाही करें। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि हमारे पुराने एवं अनुभवी मंत्री आपको पूरा सहयोग देंगे, जिससे इस देश की सम्प्रभुता की रक्षा को जा सके।

जयदत्त : मैं अपने भावी शासक के आदेशों का पालन करने के लिए कृतसंकल्प हूँ। लेकिन आप लोगों ने बौद्ध संगीत को जो धन देना बन्द कर दिया है, वह उचित नहीं है। मेरे विचार से बौद्ध संगीत को पर्याप्त मात्रा में धन उपलब्ध कराया जाना उचित प्रतीत होता है क्योंकि अब संगीत समापन में मात्र 14 दिन शेष है और इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि यह सम्राट अशोक की अन्तिम इच्छा है।

संप्रति : अन्तिम इच्छा।

विक्रम सिंह : हाँ···सम्राट का स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता जा रहा है परन्तु वह दिन-रात बौद्ध संगीत को पूरा कराने में व्यस्त हैं। यदि मुझे क्षमा प्रदान करें तो मैं भी कुछ तथ्य आपके सम्मुख प्रस्तुत करूँ।

संप्रति : यह आप क्या कह रहे हैं। आप मेरे सम्मानित सदस्य हैं फिर इस प्रकार का संकोच क्यों ? आप जो कुछ कहना चाहते है, निःसंकोच कहिए।

विक्रम सिंह : मैं देख रहा हूँ कि आप सभी लोग सम्राट अशोक की आलोचना करके सारा दोष उन्हीं पर मढ़ रहे हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि सम्राट अशोक जैसा साहसी और पराक्रमी सम्राट न तो आज तक हुआ है और न ही भविष्य में हो सकता है। सम्राट अशोक एक न्यायप्रिय, विभिन्न धर्मों में आस्था रखने वाले शासक हैं। इस देश को एक सूत्र में पिरोने का जो प्रयास उन्होंने किया है, उसके लिए हम सभी उनके ऋणी हैं। पहले वह एक विद्वान थे परन्तु बाद में उन्हें नरसंहारक बनाने के लिए बाध्य कर दिया गया। लेकिन कुछ ही समय बाद वह दयालु और जनता को न्याय प्रदान करने वाले शासक बन गए। यह सही है कि उन्होंने भगवान बुद्ध की सेवा का व्रत तो लिया परन्तु उन्होंने सभी धर्मों को पूरा प्रश्रय दिया है और किसी भी धर्म के विरुद्ध उन्होने ऐसा कोई कार्य नही किया जिससे अन्य धर्मों की भावनाओं को ठेस लगे। उनकी न्यायप्रियता का मूल्यांकन इसी से किया जा सकता है कि उन्होंने चापलूस धर्मावलंबियों को इसलिए सहायता नही प्रदान की क्योंकि उनका उद्देश्य धर्म के नाम पर राजकोष से धन प्राप्त करके विलासिता पर खर्च करना था। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह घोषणा कर दी थी कि जो भी धर्म मानव हित के लिए मानव विकास की दिशा में सक्रिय भूमिका निभाना चाहता है, सामने आए। यदि उनकी शिक्षाएँ बौद्ध धर्म की शिक्षाओं से मिलती-जुलती हैं तो उनके लिए राजकोष सदैव खुला रहेगा परन्तु मूल्यांकन एवं जाँच करने पर विदित हुआ कि सभी धर्मों की शिक्षाएँ तो एक-सी हैं परन्तु उनके प्रवर्तक अलग-अलग हैं। हर प्रवर्तक के अलग-अलग अनुयायी हैं और हर अनुयायी यही चाहता है कि उनके धर्म के प्रवर्तक को महत्त्व प्रदान किया जाए।

आप लोग आज जो कुछ भी देख रहे हैं, वह पहले नही थी। यहाँ ब्राह्मणवाद के पाखण्ड प्रवर्तकों ने देश की जनता को अपने चंगुल में बाँध रखा था। जन-शोषण के साथ नारी का शोषण उनका मुख्य उद्देश्य था। देश की राजनीति मे उनका पर्याप्त हस्तक्षेप था। ढोंगी साधु-संन्यासी भगवान के नाम पर जनता को लूट रहे थे। वही साधू-सन्यासी जो समाज के सामने यज्ञ, महायज्ञ आदि के प्रस्ताव रखकर भगवान के नाम पर जनता को लूट रहे थे, स्त्री की आलोचना करते थे तथा उन्हे ऐसे पुनीत कार्यों मे भाग लेने से मना करते थे, वही पाखण्डी आश्रम मे रासलीला करते थे। उस समय पर्दा-प्रथा इतनी विकृत थी कि आज के समान आप नारियों को स्वच्छंद विचरण करते नही देख सकते थे। इसी पाखण्डवाद ने मानव समाज को कई भागों

में विभक्त कर रखा है। क्या मजाल थी कि कोई शूद्र पर तरस खाकर उसे प्रश्रय देने का साहस कर दे। यहाँ तक कि शूद्रों का बस्ती तक में प्रवेश वर्जित था और उन्हें समाज का कोढ़ समझा जाता था। इस प्रकार के कितने उदाहरण दूँ आप लोगों को। परन्तु हमारे सम्राट अशोक ने देश को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित करने के उद्देश्य से ही समस्त धर्मों को एक सूत्र मे पिरोने का संकल्प लिया।

जहाँ तक विद्रोह की बात है, यह पाखण्डवाद नहीं चाहता कि राज्य में खुशहाली हो। आज से एक वर्ष पूर्व तक यह विद्रोही शक्ति न के बराबर थे। उज्जैनी और जलोका को याद होगा कि जब पाटलीपुत्र मे विद्रोह हुआ था तो संप्रति के पिता ने ही जनता को अपनी ओर करके इन विद्रोही शक्तियों को कुचल दिया था। अब जब उन्हें यह पता लग चुका है कि सम्राट अशोक संगीत समारोह में व्यस्त हैं, तब फिर उन्हें मौका मिल गया है। परन्तु आप लोगों ने विद्रोह को जिस प्रकार शान्त किया है, उसके लिए हम और हमारे देश की जनता आपके प्रति आभारी है।

मेरा आप लोगो से यही निवेदन है कि आप आलोचना न करके विकास की दिशा मे कार्य करें। जहाँ तक बौद्ध संगीत की बात है, मात्र 14 दिन की अवधि और शेष रह गई है, अतः आप लोग उसे पूर्ण करने में अपना पूर्ण योगदान प्रदान करें।

संप्रति : हम सभी आपके विचारों से सहमत हैं, परन्तु स्थिति तो यह है कि राजकोष में नाममात्र को धन बचा है। देश की स्थिति को देखते हुए हालांकि इस संगीत का और व्यय भार वहन करने की स्थिति में हम लोग नहीं है फिर भी मैं अपने बुजुर्ग साथियों से आग्रह करना चाहूँगा कि 15 दिन तक और आर्थिक सहायता प्रदान की जाए। संगीत समापन के साथ ही राजकोष से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता न दिए जाने का संकल्प ले लिया जाए।

इसी के साथ हम सभी लोगो मे आशा करते है कि सभी लोग अपने राज्यों मे वापस चले जाएँ और न केवल विद्रोही शक्तियों को खोज कर दण्डित करें वरन् जनता का विश्वास प्राप्त करने का भी पूरा प्रयास करें। यदि जनता का विश्वास हमने प्राप्त कर लिया तो यह विद्रोह स्वय ही नष्ट हो जाएँगे और इनके संचालनकर्ताओं से जनता स्वयं ही निपट लेगी।

अन्तिम समापन दृश्य

[आज बौद्ध संगीत का समापन समारोह था। इस अवसर पर सम्राट अशोक के साथ ही अन्य गणमान्य मन्त्रिगणो के साथ पार्षद भी इस समारोह में सम्मिलित हुए थे। रानी पद्मावती के साथ ही संप्रति भी समारोह मे उपस्थित था। चूंकि आज प्रसाद वितरण होना था, इसलिए देश के दूर-दूर भागो से अनेकानेक वर्ग और धर्म के लोग उपस्थित थे। समारोह मण्डप मे बने संगीत स्थल पर भगवान बुद्ध की विशाल प्रतिमा के निकट मोगलिपुत्त तिस्स, सम्राट अशोक, महेन्द्र एवं रानी पद्मावती के साथ ही संप्रति बैठा हुआ था।]

तिस्स : दूर-दूर से आए सम्मानित अतिथिगण एवं भिक्षुगण, हमें हर्ष है कि यह संगीत अपनी अवधि पूर्ण कर चुका है और आज इसका समापन समारोह मनाया जा रहा है। इस संगीत को सफल बनाने में आप लोगों ने तन-मन-धन से जो योगदान दिया, उसके लिए हम सभी लोग आपके आभारी रहेंगे। मुझे विश्वास है कि आप लोगों के सहयोग से अबाध गति से चलते रहने वाला यह संगीत समारोह आने वाले इतिहास में सदियों तक याद किया जाता रहेगा। इसी के साथ ही भगवान बुद्ध के साथ ही सम्राट अशोक की कीर्ति पताका सदियों तक उसी प्रकार प्रकाशमान रहेगी जैसे कि सूरज और चाँद का लहराता प्रकाश जग के अन्धकार को दूर करने में सहायक होता है, उसी प्रकार आज इस संगीत के माध्यम में विश्व में जो प्रकाश फैला वह आने वाले युग में व्याप्त होने वाले अन्धकार को सदैव दूर करता रहेगा। विशेष रूप में सम्राट अशोक का आभारी हूँ जिन्होंने अपना सारा राजसी सुख और वैभव त्याग कर न केवल बौद्ध धर्म को ग्रहण किया वरन् उनके योगदान और साहस से ही इस संगीत का समापन हो सका। यदि सम्राट अशोक के व्यक्तित्व की कल्पना उस दिव्य प्रकाशमान सूर्य से करें तो विदित होगा कि वह दावानल उगलने वाला एक शासक है और जब उसकी उपमा हम चाँद से करते हैं तो वह पूरे विश्व को निर्मल और शांतिमय प्रकाश देकर मानव जगत को भाव-विभोर कर देता है। सम्राट जैसे व्यक्तित्व की कितनी उपमाएँ दी जाएँ, यह तो सम्भव नहीं है। हाँ, मैं सम्राट अशोक से यह अवश्य अपेक्षा करता हूँ कि वह अपने विचार रखकर इस संगीत समारोह का समापन करें।

अशोक : मैं आप सबका किस प्रकार आभार प्रकट करूँ। मुझे तो विश्वास ही नहीं होता कि इतना बड़ा ऐतिहासिक कार्यक्रम सफल बनाने में सक्षम भी हुआ हूँ। हाँ, भगवान बुद्ध के महान उपासक मोग्गलिपुत्त तिस्स के योगदान एवं उनके मार्गदर्शन का आभारी हूँ, जिन्होंने मुझ जैसे क्रूर दरिन्दे शासक का मानवीय जीवन में प्रवेश करने का मार्ग प्रशस्त किया और जो बहुमूल्य परामर्श गुरु महाराज मोग्गलिपुत्त तिस्स द्वारा इस संगीत के आयोजन के सम्बन्ध में दिया गया, उनकी अध्यक्षता में मैंने इसे पूरा करने का प्रयास किया। लेकिन इसके बावजूद मुझे दुःख और पश्चाताप भी है। यह कितने खेद की बात है कि मैं एक सम्राट होते हुए भी भगवान बुद्ध के उपासकों और दूर-दूर राज्यों से आए सम्मानित अतिथि गणों की सेवा करने में वह सफलता नहीं हासिल कर सका जिसकी मैंने कल्पना की थी। हाँ, मैंने प्रयास किया और इस प्रयास में जो व्यवधान उत्पन्न हुआ, उसके फलस्वरूप उपस्थित परेशानियों के लिए मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ और आशा करते हैं कि आने वाले युग-युगान्तर तक हम भगवान बुद्ध की पवित्र शिक्षाओं का प्रसार एवं प्रचार इसी प्रकार करते रहेंगे, जिसके लिए आप सब यहाँ एकत्रित हुए हैं। इसी के साथ मैं इस समारोह का समापन करते हुए अन्तिम विदाई लेता हूँ।

तिस्स : मैं अपने भिक्षुगणों की ओर से सम्राट अशोक को विश्वास दिलाता हूँ कि उनका यह त्याग निरर्थक नहीं जाएगा और हम ही नहीं आने वाली पीढ़ी-दर-पीढ़ी भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करते हुए उनके उपदेशों के प्रचार व प्रसार के लिए दृढ़ संकल्प रहेंगी।

दृश्य परिवर्तन

[सम्राट अशोक वैशाली स्थित महल के कक्ष में चिन्तामग्न अवस्था में बैठे हुए थे। उन्होंने अपने दायें हाथ में आधे आँवले को ले रखा था। आज उन्होंने भोजन तक ग्रहण करने से इन्कार कर दिया था। इसका मुख्य कारण ही ऐसा था कि सम्राट अशोक को भावी कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने को बाध्य होना पड़ा था। चूंकि संगीत समाप्त हो चुका था और अभी भी कुछ गणमान्य अतिथि एवं बौद्ध भिक्षु वैशाली में मौजूद थे, जिनके आदर-सत्कार एव दान-दक्षिणा का कार्य अभी शेष था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए धन की आवश्यकता थी, जबकि स्थिति यह थी राजकोष से धन आना बिलकुल बन्द हो चुका था तथा सम्राट अशोक द्वारा बार-बार किए गए आग्रह को ठुकरा दिया गया था। वह अभी आगे के कार्यक्रम के विषय में विचार कर ही रहे थे कि मोग्गलिपुत्त तिस्स एवं महेन्द्र के आने की सूचना द्वारपाल ने दी। सम्राट अशोक ने उन्हें सादर-सत्कार के साथ कक्ष मे ही लाने का आदेश दे दिया। कुछ ही देर मे मोग्गलिपुत्त तिस्स एव महेन्द्र ने कक्ष में प्रवेश किया और चिन्तामग्न सम्राट अशोक के निकट ही बैठ गए।]

मोग्गलिपुत्त : सम्राट अशोक, शायद किसी चिन्ता मे खोए हुए से लगते हैं।

अशोक : आपका विचार सही है। कैसी घोर विडम्बना है कि इतने प्रयासों के बावजूद भी आप जैसा चिन्तामुक्त प्राणी नहीं हो सका।

मोग्गलिपुत्त : राजन्, चिन्तन-मनन करना तो मानव की प्रवृत्ति है। चिन्तन-मनन की बदौलत ही मानव समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ माना गया है। इसलिए इसमें आपके परेशान होने की आवश्यकता क्या है?

अशोक : परेशान होने वाली तो बात ही है गुरु महाराज। खैर आप बताइए कैसे आना हुआ?

मोग्गलिपुत्त : ऐसी कोई खास बात नहीं है। आपके दर्शनों के लिए चला आया। हाँ कुछ अतिथि एवं भिक्षुगण अतिथि गृह में रुके हुए हैं। उनके खान-पान एवं दान-दक्षिणा के लिए भी आपको कष्ट देना पड़ा है।

अशोक : (आधे आँवले को घूरते हुए) दान-दक्षिणा···खान-पान···कहते हुए बरबस ही उनकी आँखो से आँसुओ की धार बह निकली और आवाज रुँधती-सी चली गई।

महेन्द्र : पिताश्री, मैं यह क्या देख रहा हूँ···सिंह की भाँति सिंहनाद करने वाले···कड़कते बादलों की भाँति गर्जन करने वाले सम्राट अशोक की आँखों मे आँसू···नहीं पिताश्री, ऐसा नहीं हो सकता···

अशोक : नहीं बेटे, आज जो तुम देख रहे हो, यथार्थ है। एक दिन विक्रमसिंह ने सत्य ही कहा था कि आँसू किसी की अमानत नहीं होती और न ही यह राजा और रंक को देखती है। जब इन्सान क्रोध, पश्चाताप, भय और वासना का शिकार होकर व्यथित हो उठता है तब यही आँसू उसके अन्तर्मन की व्यथा को शान्त करने में सहायक होते हैं···बेटे, आँसू बहुत ही कीमती तत्त्व है, जिसे ऐसे ही मौके के लिए इन्सान अपने शरीर के अन्दर संजोकर रखता है। भले ही मैं शासक हूँ और मेरे

पास ऐसी कोई मजबूरी नही है परन्तु भगवान बुद्ध की शिक्षा रूपी हथकड़ी और उपदेश रूपी बेड़ी ने मुझे इस कदर व्यथित कर दिया है कि मैं चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता।

मोगलिपुत्त : मेरी समझ में नही आ रहा है कि आखिर ऐसा कौन-सा कारण है, जिसके कारण आप इतने व्यथित हो उठे हैं।

अशोक : गुरु महाराज, आप मुझे भगवान बुद्ध के मन्दिर ले चलिए और वहीं सभी गणमान्य अतिथियों को बुलवा लीजिए। आखिर शासक होने के नाते उन्हें कुछ दान-दक्षिणा भी तो देनी है।

मोगलिपुत्त : जैसी आज्ञा राजन्।

दृश्य परिवर्तन

[वैशाली स्थित भगवान बुद्ध के मन्दिर के प्रांगण में हजारों बौद्ध भिक्षुगण योगासन की मुद्रा में बैठे हुए थे। सभी के चेहरों पर जिज्ञासा के भाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहे थे। सभी की उत्सुक नजरें बार-बार मुख्य द्वार पर केन्द्रित हो उठती थी। कुछ ही क्षणोपरान्त सम्राट अशोक, मोगलिपुत्त तिस्स एवं महेन्द्र के साथ मन्दिर के प्रांगण मे प्रवेश करते हुए भगवान बुद्ध की विशाल प्रतिमा के निकट जाकर बैठ गए।]

तिस्स : प्रिय गणमान्य अतिथिगण एवं भिक्षुगण'''आज हमारे समक्ष भगवान बुद्ध के महान उपासक एवं बौद्ध धर्म के अनुयायी सम्राट अशोक आपकी सेवा मे अन्तिम रूप से गहनतम चिन्ताओं के साथ उपस्थित हुए हैं। सम्राट अशोक ने जिस भावना से ओत-प्रोत होकर बौद्ध धर्म के उपदेशों को न केवल ग्रहण किया वरन् उन्होंने बौद्ध धर्म के प्रसार मे तन-मन-धन से जैसे भी सम्भव हो सका, उन्होंने इसके प्रचार एवं प्रसार की दिशा में जो महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, उसी का फल है कि एक बार पुनः बौद्ध धर्म का अस्तित्व स्थिर हो सका है। यही वह सम्राट अशोक हैं, जिन्होंने बौद्ध संगीत के शुभारम्भ से अन्त तक बिना किसी की परवाह किए जिस तरह से धन व्यय किया है, उससे राजकोष बुरी तरह प्रभावित हो गया है। हालाँकि सम्राट अशोक माया-मोह से विरक्त होकर इसके लिए चिन्तित नहीं हैं, लेकिन राजमहल के अन्दर एक ऐसा तूफान उठ खड़ा हुआ है, जिससे अब सम्राट अशोक नाममात्र के ही शासक हैं। मैं तथा बौद्ध धर्म के समस्त उपस्थित उपासकों की ओर से सम्राट अशोक को इस बात का पूर्ण आश्वासन देता हूँ कि हम लोग किसी भी प्रकार से असन्तुष्ट नहीं हैं। हमें उनसे किसी प्रकार की शिकायत नहीं है और न ही बौद्ध धर्म अथवा उनके अनुयायी उनसे विलग हुए हैं। मेरा सम्राट अशोक से विनम्र निवेदन है कि वह जो कुछ भी कहना चाहते हैं, स्पष्ट कहें और जो भी सहयोग अपेक्षित है, हम लोगो से निःसंकोच कहे।

अशोक : (कुछ देर तक हाथ में पकड़े आधे आँवले को देखते एवं आँसू बहाते हुए) आदरणीय भिक्षुगण, मुझे यह जानकर हार्दिक पीड़ा हो रही है कि हमारे शासन-काल में आज बौद्ध भिक्षुओं एवं गणमान्य अतिथियों को भोजन तक सुलभ नहीं हो सका है। भगवान बुद्ध के उपदेशों से काम-क्रोध, पश्चाताप से मुक्ति पाने के फल-

स्वरूप आज मुझे यह प्रसाद मिला है। परमादरणीय, आज मेरे पास केवल यही सम्पदा है। यह सम्पदा आज मेरे पास मौजूद है, जिससे मैं अपने पेट की ज्वाला शान्त कर सकूँ। परन्तु अपने प्यारे बन्धुओं को भूखा देखकर मैं इसे नहीं ग्रहण कर सकता। अतः मैं अपनी इस अनमोल सम्पदा को बौद्ध धर्म के महान अनुयायी एवं भगवान बुद्ध के परम उपासक को दान करता हूँ, कृपया वे इसे ग्रहण करें। इसके साथ ही उन्होंने अश्रु धारा बहाते हुए उस आधे आँवले को मोगलिपुत्त तिस्स के हाथों में दे दिया।

मोगलिपुत्त तिस्स ने आँवले को ग्रहण किया और उसे भगवान बुद्ध के चरणों पर भोगादि के लिए रख दिया। परन्तु अभी कुछ ही पल बीते थे कि भगवान बुद्ध की अष्टधातु से बनी प्रतिमा साकार हो उठी और उसके होंठ हिल उठे—

"सम्राट अशोक···तुम्हारे त्याग, तप और प्रेम से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुमने मेरे उपदेशों और शिक्षाओं को विश्व के विभिन्न देशों में फैलाकर जो मानवता का संदेश भेजा है, वह युग-युगान्तर तक नहीं भूला जा सकेगा। तुम्हारे इस त्याग, तप, परिश्रम और जनता के प्रति प्रेम के साथ ही मानवता धर्म के प्रवर्तक के रूप में तुम्हारा नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा और आने वाला इतिहास सदियों तक तुम्हें चक्रवर्ती सम्राट की उपाधि से सुशोभित करता रहेगा।"

इसी के साथ ही सम्राट अशोक को आशीर्वाद देते हुए प्रतिमा पूर्व अवस्था में आ गई।

तिस्स : (अश्रु पूरित नेत्रों से) धन्य हो सम्राट, तुम्हारे कार्यों से आज मुझे भी भगवान बुद्ध के दर्शन प्राप्त हो गए। इसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ।

अशोक : गुरु महाराज, ऐसा अनर्थ मत करें। मुझे जो कुछ भी हासिल हुआ है, आपके कारण प्राप्त हुआ है, अतः इसका सारा श्रेय आपको ही जाता है।

तिस्स : धन्य है, राजन् आप, जिसने राजा और संन्यासी के रूप में एक साथ दो पदों को सुशोभित किया। निश्चय ही आप चक्रवर्ती सम्राट हैं।

दृश्य परिवर्तन

[इधर कई दिनों से सम्राट अशोक का स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता जा रहा था। कई बड़े चिकित्सकों एवं वैद्यों ने उनकी चिकित्सा की परन्तु कोई लाभ दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सम्राट अशोक का अन्त समय निकट आ गया है। आज सम्राट अशोक का स्वास्थ्य काफी बिगड़ उठा था। वह भगवान बुद्ध की विशाल प्रतिमा के निकट लेटे हुए थे। उनके निकट परिवार के सदस्यगण बैठे हुए थे, जबकि मोगलिपुत्त तिस्स और महेन्द्र उनके दायें-बायें बैठे हुए थे। सेनापति जयदत्त और अर्थमंत्री विक्रमसिंह एक ओर खड़े हुए थे।]

अशोक : गुरु महाराज···मेरा अन्तिम समय निकट आ गया है···वह देखो···भगवान बुद्ध मुझे स्वयं लेने के लिए आए हैं · बेटा महेन्द्र, जाते-जाते मेरी एक ही विनती है।

महेन्द्र : पिताश्री, आप ऐसा मत बोलें···भगवान बुद्ध से मेरी यही प्रार्थना है कि वह मेरी उम्र···।

अशोक : नही बेटा···ऐसा मत बोलो···अभी तुम्हें बहुत कुछ करना है···भगवान बुद्ध के लिए···उनकी शिक्षाओं और उपदेशो के लिए तुम्हें बहुत बड़ी कुर्बानी देनी है ···बेटा, अब मैं थक चुका हूँ···मेरा शरीर निष्क्रिय व जर्जर हो चुका है···एक जिन्दा लाश बनकर जीने से तो भगवान बुद्ध की शरण मे जाना ज्यादा उपयुक्त होगा।

मोगलिपुत्त : नही सम्राट ··मैं ऐसा कभी नही होने दूंगा···आपसे ज्यादा तो मेरा शरीर जर्जर हो चुका है · मात्र हड्डियों का ढांचा·· कब तक इस निर्जीव शरीर और बेजान हड्डियो का बोझ ढोता रहूँगा सम्राट···अतः पहले मैं भगवान बुद्ध की शरणं गच्छामि मे जाऊँगा।

अशोक : नहीं महाराज ··आपको ऐसा नहीं करना चाहिए···भले ही आपका शरीर मात्र हड्डियों का ढांचा बनकर रह गया है···लेकिन इन हड्डियों मे से जो ज्ञान का प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है, उसे मैं स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ···गुरु महाराज, आप मुझे वचन दीजिए कि जब तक आप जीवित रहेंगे, तब तक मेरे पुत्र महेन्द्र को अपनी छत्रछाया में रखकर, उसे बौद्ध धर्म की शिक्षाओं एवं उपदेशो की प्रेरणा देते रहेंगे।

मोगलिपुत्त : राजन, आप बिलकुल निश्चिंत रहें। महेन्द्र मेरा सच्चा शिष्य ही नही, बल्कि मेरा पुत्र भी है।

अशोक : धन्यवाद···हाँ विक्रमसिंह···।

विक्रमसिंह : जी महाराज ··।

अशोक : विक्रमसिंह, अब मैं एक लम्बे सफर पर जा रहा हूँ, जहाँ से वापस लौटना सम्भव नही है। अतः अब तुम मेरी वसीयत लिख दो।

विक्रमसिंह : महाराज, आप बेकार परेशान हो रहे हैं, आपको कुछ ही होगा।

अशोक : यह तो आने वाला क्षण बताएगा विक्रमसिंह···मेरा एक-एक पल कीमती है ···अतः तुम तत्काल वसीयत लिख दो···।

विक्रमसिंह : जैसी आज्ञा महाराज···।

अशोक : हाँ···तो विक्रमसिंह लिखो—

"मैं सम्राट अशोक अपने सभी राज्यों, चल एवं अचल सम्पदा को बौद्ध धर्म को दान करता हूँ। मेरे राजकोष मे मौजूद सम्पूर्ण राशि बौद्ध धर्म के प्रचार एव प्रसार के लिए गुरु मोगलिपुत्त तिस्स एवं महेन्द्र को दे दी जाए। इसके साथ ही सम्राट अशोक अपने उत्तराधिकारी संप्रति को देश का शासक घोषित करते हुए यह आदेश देता है कि वह मोगलिपुत्त तिस्स एवं महेन्द्र के परामर्श एवं भगवान बुद्ध की शिक्षाओं एव उपदेशों के आधार पर ही शासन-व्यवस्था का सचालन करते हुए जनहित के कार्यों में रुचि ले।"

इसके बाद सम्राट अशोक ने वसीयतनामे पर हस्ताक्षर किए और इसके साथ ही उन्होने सदा-सदा के लिए आँखें मूँद ली और उनके प्राण-पखेरू उड गए।

□□